Hindi / English / Gujarati

अगस्त्य संहिता

रामोपासना का प्राचीनतम आगमशास्त्र

महाकाव्य

आमुख

'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का महत्त्वपूर्ण एवं प्राचीन वैष्णवागम-शास्त्रीय ग्रन्थ है। इसका उल्लेख हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' से लेकर आधुनिक काल तक के शास्त्रीय ग्रन्थों में हुआ है। हेमाद्रि (13वीं शती) ने 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' में; माधवाचार्य (14वीं शती) ने 'कालमाधव' में; मिथिला के महेश ठाकुर (16वीं शती) ने 'तिथितत्त्वचिन्तामणि' में तथा कमलाकर भट्ट (17वीं शती) ने 'निर्णयसिन्धु' में रामनवमी-तिथि के निर्धारण के प्रसंग में इसके सुसंगत श्लोकों को उद्‌धृत किया है। मिथिला के प्रसिद्ध आगमाचार्य देवनाथ ठाकुर ने 1564 ई. में 'मन्त्रकौमुदी' की रचना की, जिसमें उन्होंने पाँच स्थलों पर आगमशास्त्र के विभिन्न सिद्धान्तों और विधियों के प्रमाण के रूप में 'अगस्त्य-संहिता' को उद्धृत किया है। हेमाद्रि के 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' में इसके कम से कम 32 श्लोक उद्धृत किये गये हैं।

किन्तु आधुनिक काल में 'अगस्त्य-संहिता' की सर्वाधिक चर्चा रामानन्दाचार्य के चरित-लेखन के सन्दर्भ में हुई है। हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने इस ग्रन्थ को उद्धृत करते हुए रामानन्दाचार्य का काल प्रामाणिक स्रोत के आधार पर निर्धारित करने का दावा किया है। किन्तु शोध के उपरान्त पाया गया कि मूल 'अगस्त्य-संहिता में रामानन्दाचार्य की कोई चर्चा नहीं है। यह चर्चा हो भी नहीं सकती है; क्योंकि 'अगस्त्य-संहिता' रामानन्दाचार्य से बहुत पहले की शास्त्रीय रचना है।

'दलित-देवो भव' पुस्तक में रामानन्दाचार्य की जीवनी लिखने के सन्दर्भ में मूल 'अगस्त्य संहिता' के अन्वेषण की आवश्यकता पड़ी। अनेक विद्वानों द्वारा लिखी हुई रामानन्द-जीवनी में यह पढ़ने को मिला था कि 'अगस्त्य-संहिता' के आधार पर रामानन्दाचार्य का जन्म सन् 1299 ई० में हुआ था। इसके समर्थन में 'अगस्त्य-संहिता' के ये श्लोक भी उद्‌धृत किये जाते रहे हैं-

ख'नभो'वेद'वेद'प्रमिते वर्षे गते कलौ।
माघकृष्णस्य सप्तम्यां शुभधर्मप्रवर्तके।।
सप्तदण्डोद्गते सूर्ये सिद्धयोगयुजि प्रभुः।
नक्षत्रे त्वाष्ट्रदैवत्ये कुम्भलग्ने शुभग्रहे।।
आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भास्करः।
रामानन्द इति ख्यातो लोकोद्धरणकारणः।।

अर्थात् कलियुग के 4400 वर्ष बीत जाने पर माघ कृष्ण पक्ष की सप्तमी तिथि के शुभ दिन में सूर्य भगवान् के सात दण्ड चढ़ने पर सिद्ध योग-युक्त चित्रा नक्षत्र तथा कुम्भ लग्न और सभी ग्रहों के शुभ स्थान में होने पर दूसरे सूर्य के समान महायोगी रामानन्द का आविर्भाव हुआ, जो लोगों का उद्धार करनेवाले थे।

पूरे रामानन्द सम्प्रदाय में भी स्वामीजी का जन्म इसी दिन माना जाता है। अत: इसकी प्रामाणिकता में सन्देह का कोई अवकाश नहीं था। किन्तु बहुत-से समीक्षकों की यह टिप्पणी जब पढ़ने को मिलती थी कि 1299 ई० में जन्मे रामानन्दचार्य कबीर और रैदास के गुरु कैसे हो सकते थे, जो क्रमश: 1518 और 1527 ई० तक जीवित रहे। इस तर्क में भी दम दीखता था। पूरी मध्यकालीन परम्परा कबीर और रैदास को रामानन्द का शिष्य मानती रही है; अत: इन दो 'सत्यों' के बीच सामंजस्य बैठाने के लिए मूल 'अगस्त्य-संहिता' का अन्वेषण प्रारम्भ हुआ और प्रस्तुत प्रकाशन का बीज-वपन हुआ।

इस मूल 'अगस्त्य-संहिता' में 32 अध्याय हैं और पुष्पिका में ग्रन्थ-समाप्ति की घोषणा है। किन्तु किसी-किसी पाण्डुलिपि में 33वाँ अध्याय भी है, जिसमें सभी देवों की एकत्र की पूजा की पद्धति है। अयोध्या के प्रसिद्ध सन्त बलभद्र दास ने 'वैष्णवमताब्ज-भास्कर' एवं 'रामार्चन-पद्धति' की प्रस्तावना 'प्रस्तुत प्रसंग' में अगस्त्य-संहिता की चर्चा की है और इसमें 33 अध्याय बतलाये हैं। हैन्स बेकर की पुस्तक 'अयोध्या' में भी 33वें अध्याय का उल्लेख है। किन्तु अधिकतर प्रकाशित पुस्तकों एवं पाण्डुलिपियों में यह 32 अध्याओं का ही ग्रन्थ बतलाया गया है; अत: उतने को ही मूल ग्रन्थ में प्रकाशित किया गया है। पाठकों की जिज्ञासा-शान्ति के लिए 33वें सर्ग के कुछ श्लोक, जो हैन्स बेकर की पुस्तक 'अयोध्या' में उद्धृत हैं, भूमिका में संकलित किये गये हैं।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में ' अगस्त्य-संहिता' की अनेक पूर्ण-अपूर्ण पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं; उनमें से एक पाण्डुलिपि 'अगस्त्य-संहिता' के 41वें अध्याय की बतलायी गयी है; स्पष्टतः यह किसी परवर्ती कवि की रचना है।

इस 'अगस्त्य-संहिता' में किसी विद्वान् ने 5 अध्यायों का प्रक्षेप जोड़ा है, जिसे 'अगस्त्य-संहिता' के उत्तर-खण्ड में 131वें से 135वें अध्याय का बतलाया गया है। इसे पहले भविष्योत्तर-खण्ड का बतलाया गया था। किन्तु 'अगस्त्य-संहिता' में भविष्य या भविष्योत्तर-खण्ड है या नहीं, यह विवेच्य है। वस्तुतः यह ग्रन्थ खण्डों में विभक्त है ही नहीं। इसमें 32 या अधिकतम 33 अध्याय हैं। फिर 131 से 135 अध्याय कहाँ से टपक पड़े? और बीच के अध्याय कहाँ लुप्त हो गये? बलभद्र दास ने लिखा है कि जिसने पाँच अध्यायों का यह क्षेपक जोड़ा है, उसने 'अगस्त्य-संहिता' का दर्शन भी नहीं किया था। मैं भी इससे सहमत हूँ। उसे इतना ही ज्ञात था कि यह संहिता अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद के रूप में है; क्योंकि 'अगस्त्य-संहिता' को 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' के नाम से भी जाना जाता था। सचमुच, प्रक्षेपक को 'अगस्त्य-संहिता' का दर्शन हुआ होता, तो वह प्रक्षिप्त अंश को 33वें अध्याय से प्रारम्भ करता!

किन्तु इस अंश का प्रक्षेपक कौन है? क्या यह गुजरात-राजस्थान की कारयित्री प्रतिमा की परिणति है? या पं० रामनारायण दास हैं, जिन्होंने 1898 ई० में 'अगस्त्य-संहिता' का प्रकाशन लखनऊ से किया था और 1906 ई० में 'रामानन्द जन्मोत्सव कथा' के नाम से पुस्तक का सम्पादन किया था, जिसमें 'वैश्वानर संहिता' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साहष्टकम्' भी समाविष्ट थे। इस पुस्तक में पण्डित रामनारायण दास ने लिखा था कि यह 'रामानन्दजन्मोत्सव कथा' 'अगस्त्य-संहिता' के भविष्य खण्ड में 131-135 अध्यायों में वर्णित है। इस पुस्तक को डाकोर, गुजरात के वैष्णवरामदासजी ने मुंबई से 1906 ई. में छपवाया। प्रसिद्ध इतिहासकार डी.आर. भण्डारकार ने अपनी पुस्तक 'वैष्णविज्म, शैविज्म एण्ड माइनर रिलीजिअस सिस्टम्स' में पहली बार यह लिखा कि उन्हें रामानन्दाचार्य के जन्म की तिथि प्रामाणिक स्रोत से प्राप्त हो गयी है और इस स्रोत का नाम 'अगस्त्य-संहिता' बतलाया। तबसे इस देश के अधिकतर लेखकों एवं समीक्षकों ने मूल स्रोत की जाँच किये बिना रामानन्दाचार्य का जीवन-वृत्त 'अगस्त्य-संहिता' के फर्जी अंश के आधार पर प्रस्तुत किया है। किन्तु पं. रामनारायण दास इस फर्जी अंश के प्रक्षेपक नहीं हो सकते; क्योंकि उन्हें यदि यह अंश जोड़ना होता, तो 1898 ई. में ही इसका सम्पादन करते समय जोड़ देते। किन्तु 1898 ई. में उनके द्वारा सम्पादित 'अगस्त्य संहिता' में कोई प्रक्षेप

नहीं है। 1903 ई. में जब अयोध्या के ही दूसरे प्रसिद्ध सन्त रूपकलाजी ने नाभादास के 'भक्तमाल' का सम्पादन कर उसपर तिलक टीका लिखी, जब उन्होंने इस तथ्य का उल्लेख किया कि रामानन्दाचार्य की जीवनी 'अगस्त्य-संहिता' के भविष्योत्तर खण्ड में मिलती है और यह वृत्तान्त उन्होंने काशी की कुंजगली में हजारीलाल गणेश प्रसाद के घर में पढ़ा था और यह पोथी 1878 ई. में सूर्यप्रभाकर छापखाने में छपी थी। रूपकलाजी ने रामानन्दाचार्य की जीवनी में जो श्लोक उद्धृत किये गये हैं, वे 'अगस्त्य-संहिता' के प्रक्षिप्त अंश के ही हैं और उसका हिन्दी अनुवाद भी श्री सीताशरण महाराज ने रामरसरंगमणिजी द्वारा कराकर 'श्रीरामानन्द-यशावली' के नाम से छपवाया था। अत: 'अगस्त्य-संहिता' में यह प्रक्षेप 1876 ई. में जुड़ चुका था। अत: इसके प्रक्षेपक रामनारायण दास नहीं हो सकते।

सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर पता चलता है कि 'रामानन्दजन्मोत्सव कथा' (अगस्त्य-संहिता के प्रक्षिप्त अंश), 'वैश्वानर संहिता' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साष्टकम्' के लेखक एक ही विद्वान् प्रतीत होते हैं; क्योंकि तीनों की भाषा एवं भाव में साम्य है। तीनों रचनाओं में रामानन्दाचार्य के प्रति असीम श्रद्धा का भाव है और तीनों रचनाएँ एक ही पुस्तक में छपी हैं। पहली रचना यानी 'अगस्त्य-संहिता' का तथाकथित भविष्य खण्ड 1878 ई. में छप चुका था और 'रामानन्दजन्मोत्साहाष्टकम्' की रचना 1880 ई. (1937 वि) में हुई थी, यह इस अष्टक के 10वें श्लोक में उल्लिखित है। इस श्लोक में रचयिता का नाम भी पण्डित श्रीरामचरण दिया हुआ है। इसमें भी रामानन्दाचार्य के जन्म की वही तिथि दी हुई है; बल्कि इसमें संवत् 1356 वि. मास माघ, पक्ष कृष्ण, तिथि सप्तमी के अलावे भावोत्साह में दिन भी गुरुवार दिया गया है, 'अगस्त्य-संहिता' के प्रक्षिप्त अंश में वर्ष, मास, पक्ष और तिथि का उल्लेख किया गया है; किन्तु दिवस का उल्लेख नहीं है। अष्टक में दिवस भी है और इसकी गणना करने से आचार्य की जन्म-तिथि गलत निकलती है। किन्तु उपर्युक्त सभी तथ्यों के आलोक में यह प्रबल सम्भावना है कि 1880 ई. 'श्रीरामानन्द-भवोत्साहाष्टकम्' के रचनाकार पण्डित श्री रामचरण ने ही अगस्त्य-संहिता में भविष्य-खण्ड के नाम पर पाँच अध्याय 1878 ई. में या इसके पूर्व जोड़े? अब पण्डित श्रीरामचरण कौन हैं? पण्डित श्रीरामचरण नामक कोई विद्वान् अभी ज्ञात नहीं हुआ हैं, किन्तु अयोध्या में जानकीघाट की गुरु-परम्परा में रामचरण दास नामक एक सन्त मिलते हैं। इनके गुरु का नाम रघुनाथ प्रसाद था, जो जानकीघाट के महन्त थे। सं. 1388 वि. (1531 ई.) में माघ शुक्ल नवमी को रैवासे से अपने गुरु के पास अयोध्या आये थे।

रामचरणजी द्वारा विरचित ग्रन्थों के नाम 'सीताराम-नवरत्न-संग्रह', 'अष्ट-भाग', 'रस-मालिका' आदि हैं। ये रसिक सम्प्रदाय के महात्मा थे और अयोध्या में रामभक्ति में शृंगार का प्रचार करनेवाले प्रथम सन्त थे। अत: यह प्रश्न उठता है कि क्या रसिक सम्प्रदाय के महात्मा 'श्रीरामानन्द-जन्मोत्सव-कथा' और 'श्रीरामानन्दभवोत्साहाष्टकम्' जैसे ग्रन्थों का रचनाकार हो सकते हैं? क्या महन्त रामचरण दास 1880 ई. तक जीवित थे? इन प्रश्नों के उत्तर तथा अन्य किसी पण्डित श्रीरामचरण की पहचान पर इसका उत्तर निर्भर करता है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट है कि 'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का प्राचीन ग्रन्थ है; जबकि 'अगस्त्य-संहिता' के तथाकथित भविष्य-खण्ड के अध्याय 131-35 में वर्णित रामानन्द जन्मोत्सव-कथा एक प्रक्षिप्त अंश है, जिसमें रामानन्दाचार्य, सन्त कबीर एवं सन्त रैदास की जन्मतिथियाँ गलत रूप से प्रस्तुत हैं। मूल 'अगस्त्य-संहिता' रामोपासना का ऐसा प्रामाणिक धर्मग्रन्थ है, जिसको 12वीं सदी से लगातार इस देश के धर्मशास्त्रियों ने रामार्चना, विशेषकर रामनवमी के सन्दर्भ में उद्धृत किया है। प्राचीन काल में 'रामतापनीयोपनिषद्', बुधकौशिक-विरचित 'रामरक्षास्तोत्र' एवं 'अगस्त्य-संहिता' की गणना रामोपासना के प्रमुख ग्रन्थों में की जाती है।

इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ 'अगस्त्य-संहिता' का सम्पादन एवं हिन्दी-अनुवाद महावीर मन्दिर के मूर्द्धन्य विद्वान् पं. भवनाथ झा ने किया है। संस्कृत भाषा, साहित्य, व्याकरण एवं अन्य शास्त्रों पर भवनाथजी की जो पकड़ है, वह प्रशंसनीय है। पूरे देश में इनकी टक्कर के विद्वान् बहुत कम मिलेंगे। अत: सम्पादन एवं अनुवाद की प्रामाणिकता में कोई संशय नहीं रह जाता। महावीर मन्दिर प्रकाशन महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का प्रकाशन बहुत कम मूल्य पर करता रहा है, उसी कड़ी में 'अगस्त्य-संहिता' का यह प्रकाशन आपके समक्ष प्रस्तुत है। आशा है कि इसको पढ़ने के बाद पाठक अब इस भ्रान्ति में नहीं पड़ेंगे कि रामानन्दाचार्य का जन्म 1299 ई. में हुआ था। मैंने 'दलित-देवो भव' में संक्षेप में और शीघ्र प्रकाश्य पुस्तक 'युग प्रवर्तक रामानन्द' में यह सिद्ध किया है कि रामानन्दाचार्य 1470 ई. तक अवश्य जीवित थे; अत: यदि उनका जन्म वर्ष 1356 वि.सं. नहीं मानकर 1356 ई. मान लिया जाये, तो उनका काल 1356 से 1470 ई. होगा और तब कबीर एवं रैदास को उनके शिष्य मानने की जो सर्वसम्मत मध्यकालीन परम्परा रही है, उसमें उत्पन्न आशंकाओं का निराकरण हो जायेगा।

पटना

श्रीकृष्णजन्माष्टमी, 2066 वि. किशोर कुणाल

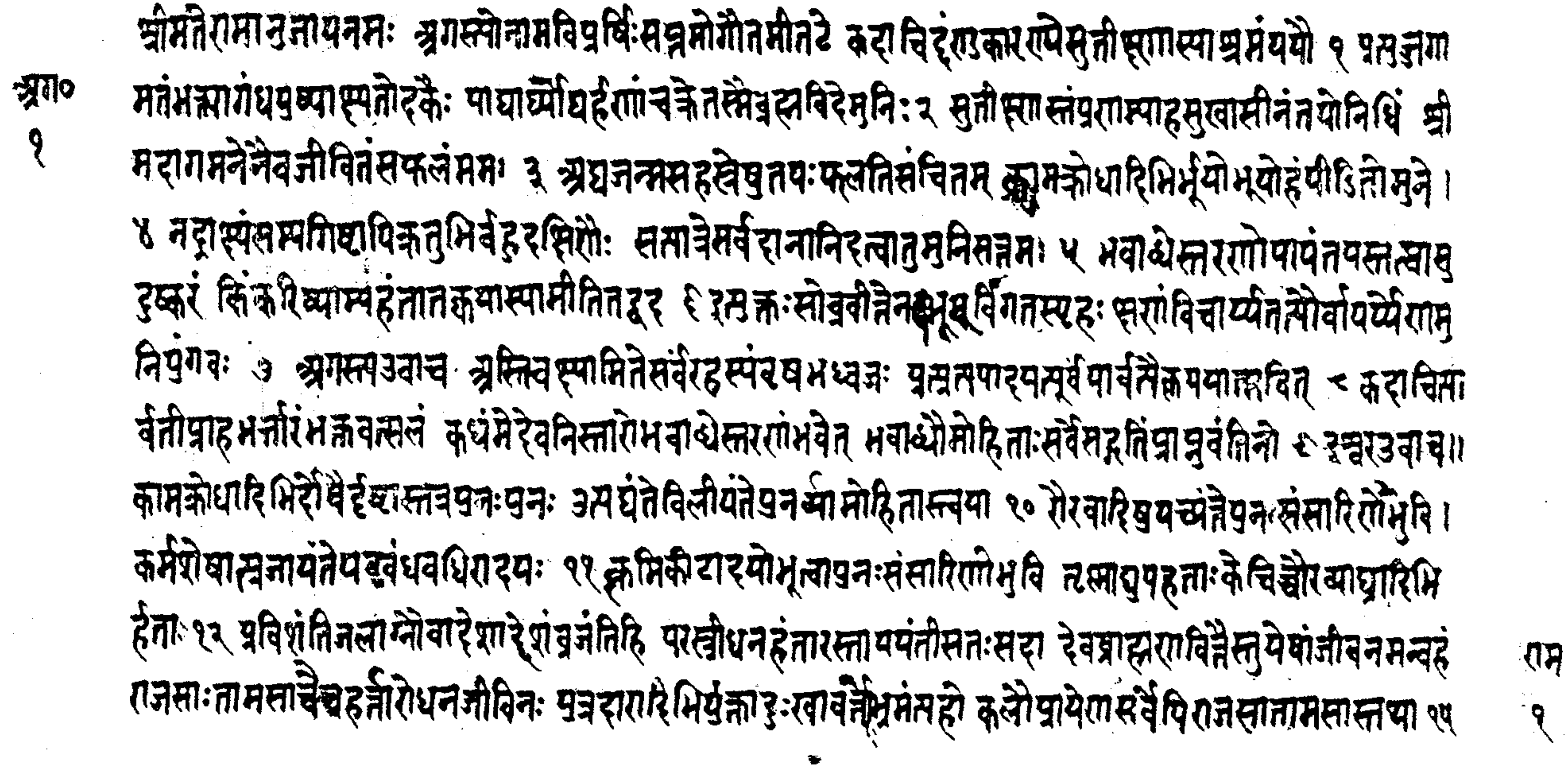

अगा०
१

श्रीमते रामानुजाय नमः अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सप्तमो गौतमीतटे कदाचिद् दण्डकारण्ये सुतीक्ष्णस्याश्रमं ययौ १ प्रत्युद्गम्य
मतं भक्त्या गंधपुष्पाक्षतोदकैः पाद्यार्घ्याद्यर्हणां चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे मुनिः २ सुतीक्ष्णस्तं प्रणम्याह सुखासीनं तपोनिधिं श्री
मदागमनेनैव जीवितं सफलं मम ३ अद्य जन्मसहस्रेषु तपः फलति संचितम् कामक्रोधादिभिर्भूयो भूयोऽहं पीडितो मुने ।
४ न दृष्टः स्वल्पमपि ह्यापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः समाने मर्त्यदानानि रत्वातु मुनिसत्तम ५ भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्त्वाचु
दुष्करं किं करिष्याम्यहं तात कथयस्वामीति तद्वद ६ इत्युक्तः सोऽब्रवीत्तेन [illegible] विगतस्पृहः स्मरां विचार्य्य [illegible] मुनि
निपुंगवः ७ अगस्त्य उवाच अस्ति विष्णुमिते सर्वं रहस्यं [illegible] पार्वत्यै [illegible] ८ कदाचित्पा
र्वती प्राह भर्तारं भक्तवत्सलं कथं मे देव निस्तारो भवाब्धेस्तरणं भवेत् भवाब्धौ मोहिताः सर्वे [illegible] ९ ईश्वर उवाच॥
कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दह्यन्ते च पुनः पुनः उत्पद्यन्ते विलीयन्ते पुनर्मायामोहितास्त्वया १० रौरवादिषु पच्यन्ते पुनः संसारिणो भुवि ।
कर्मशेषात्प्रजायन्ते पशुबंधवधादयः ११ कृमिकीटादयो भूत्वा पुनः संसारिणो भुवि तस्मादुपहताः केचिच्चोरव्याघ्रादिभि
र्हता १२ प्रविशन्ति जलाग्नौ वा देशाद्देशं व्रजन्ति हि परस्त्रीधनहर्तारस्तापयन्ति सतः सदा देवब्राह्मणवित्तैस्तु येषां जीवनमन्वहं
राजसाः तामसाश्चैव हर्तारो धनजीविनः पुत्रदारादिभिर्युक्ता दुःखार्ते भ्रमन्ति हो कलौ प्रायेण सर्वेऽपि राजसास्तामसास्तथा १४

राम
१

पाण्डुलिपि 'क' का प्रथम पृष्ठ

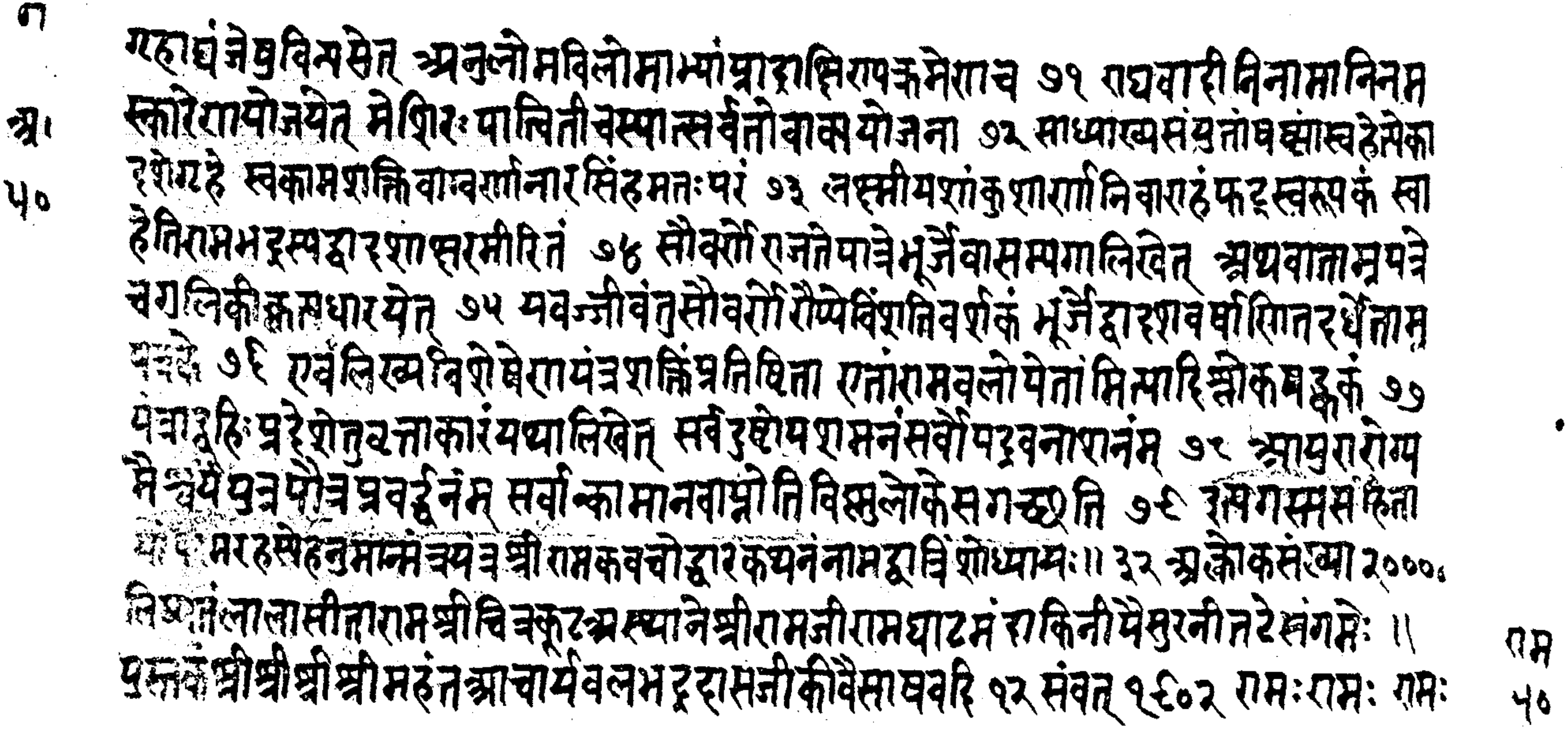

८ श्री। ५०

गहाधंजेपुविमसेत् अनुलोमविलोमाभ्यां प्राद्गाभिरापक्रमेराच ७१ राघवारी निनामानिनम
स्कारेरापोजयेत् मेशिरः पात्विती चस्मात्सर्वतो वाक्ययोजना ७२ साध्याख्यसंयुतां पद्मांस्वहेसेका
दृशेगहे स्वकामशक्तिवाग्वर्णानारसिंहमतः परं ७३ लक्ष्मीयशांकुशार्णानि वाराहं फट्स्वरूपकं सा
हेति रामभद्रस्यद्वारशास्त्रमीरितं ७४ सौवर्णे राजते पात्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत् अथवाताम्रपत्रे
चगलिकी क्रमधारयेत् ७५ मवज्जीवं तु सौवर्णे रौप्ये विंशति वर्शकं भूर्जे द्वारशवर्षाणि तरधं ताम्र
पत्रके ७६ एवं लिख्य विशेषेरा यंत्रशक्तिं प्रतिष्ठिता एतां रामवलोपेतां मित्यादि श्लोकमद्रकं ७७
पंचाङ्गुलिः प्रदेशे तु रक्ताकारं यथालिखेत् सर्वदुष्टोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ७८ आयुरारोग्य
मैश्वर्यं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् सर्वान्कामानवाप्नोति विष्णुलोके स गच्छति ७९ इति श्रीअगस्त्यसंहिता
यां मरहस्ये हनुमन्मंत्र्यत्र श्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोध्यायः ।। ३२ श्लोकसंख्या २०००
लिखतं लालासीताराम श्रीचित्रकूटस्थाने श्रीरामजीरामघाट मंदाकिनी मैसुरनी तरे संगमेः ।। राम
पुस्तकं श्रीश्रीश्रीश्री महंत आचार्य वलभद्रदासजी की वैसाखवदि १२ संवत् १९०२ रामः रामः रामः ५०

पाण्डुलिपि 'क' का अन्तिम पृष्ठ

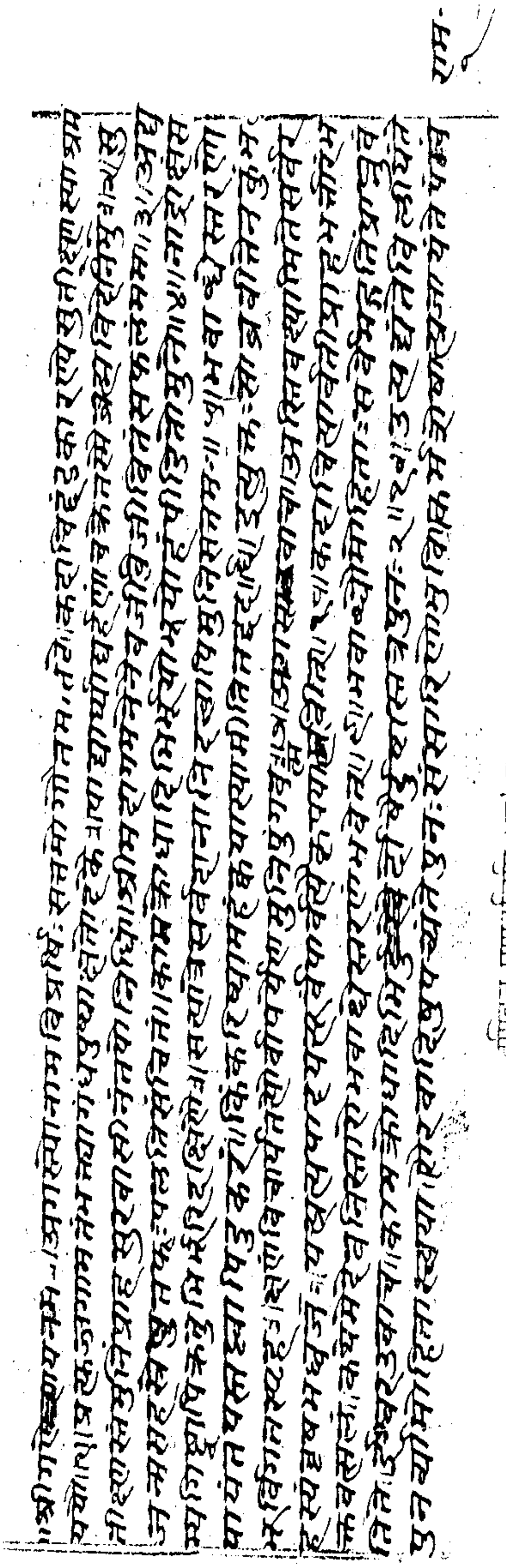

खण्डित पाण्डुलिपि 'ख' का प्रथम पृष्ठ

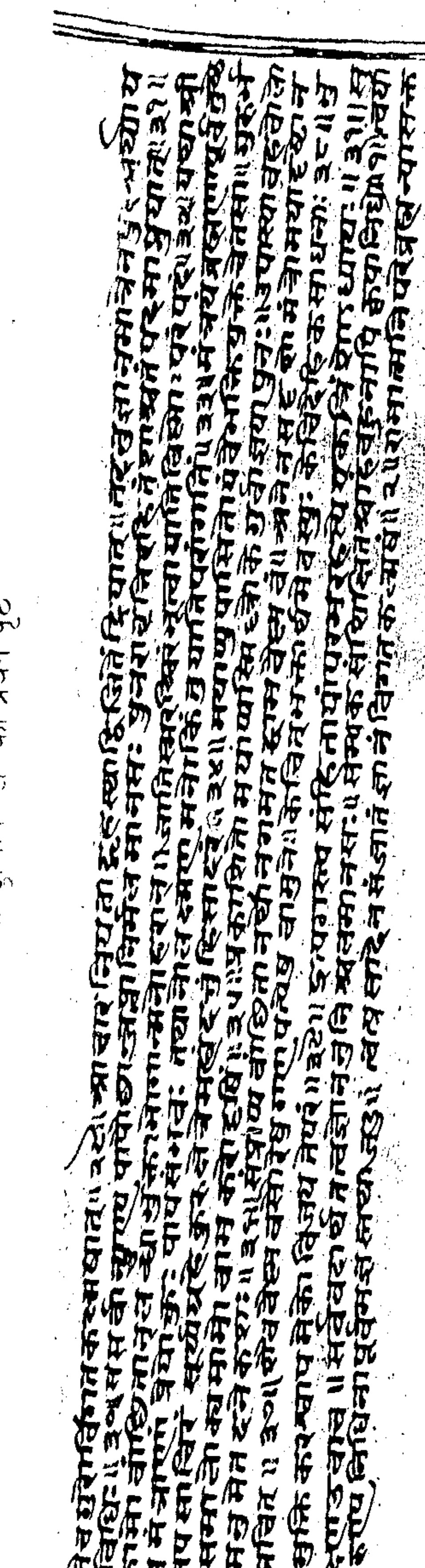

खण्डित पाण्डुलिपि 'ग' के 31वें अध्याय का अन्तिम पृष्ठ

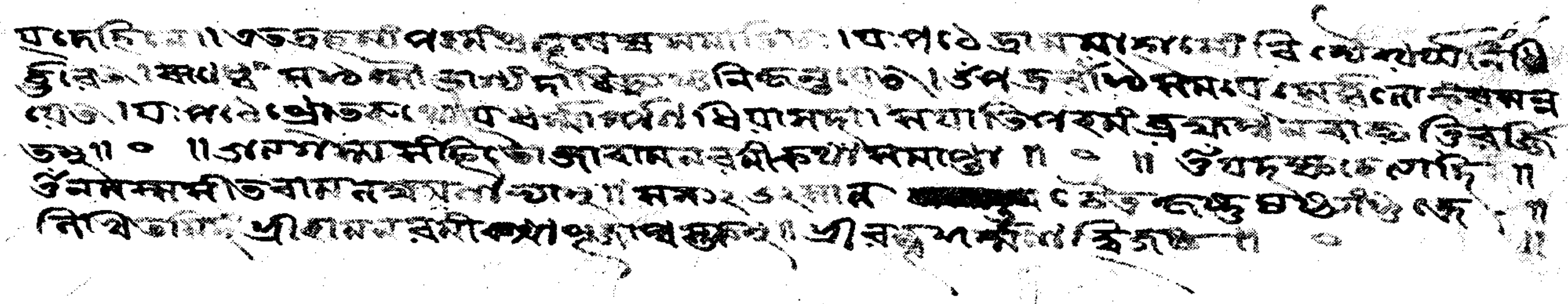

अ स्त्य-संहिता से उक्त 'रामनवमीव्रतकथा' की पाण्डुलिपि 'अ' का प्रथम पृष्ठ

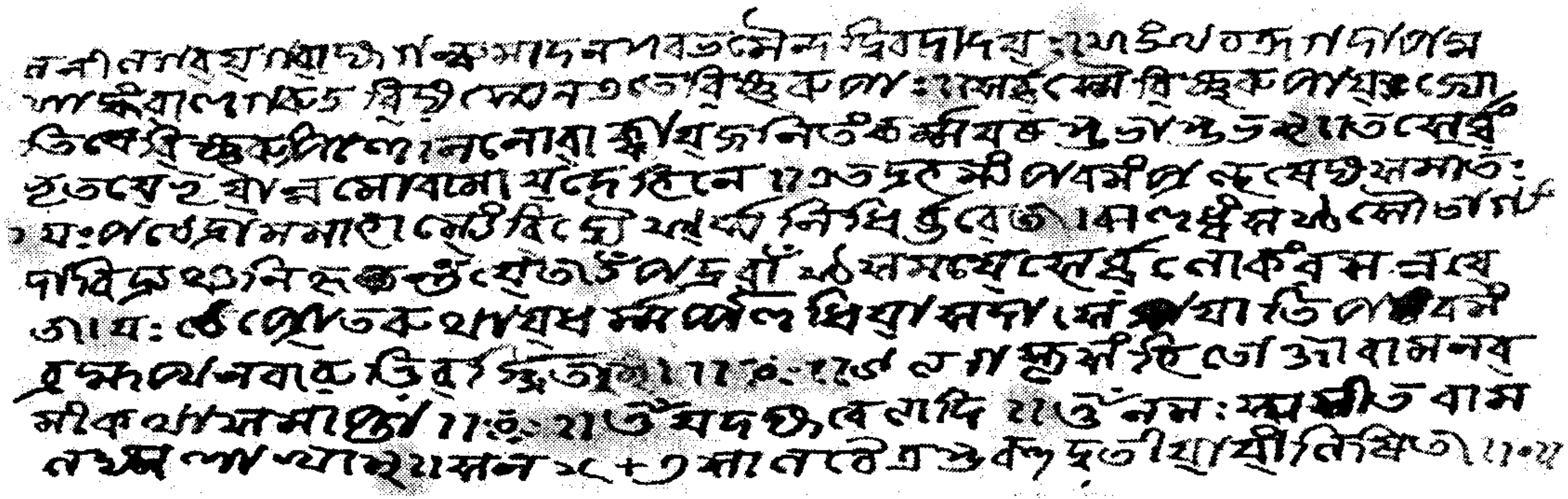

अगस्त्य-संहिता से उक्त 'रामनवमीव्रतकथा' की पाण्डुलिपि 'आ' का प्रथम पृष्ठ

प्रस्तावना

भारतीय परम्परा में वैदिक पद्धति यज्ञ प्रधान है, जिसमें देवताओं के निमित्त अग्नि में आहुति देकर उन देवों की उपासना होती है। इन यज्ञों का विवरण हमें ब्राह्मण-ग्रन्थों एवं श्रौत-सूत्रों में मिलता है। परवर्ती काल में पूजन की एक दूसरी परम्परा आरम्भ हुई, जिसमें देवताओं की पूजा अतिथि-पूजा की शैली में होने लगी। यह उपासना की आगम-पद्धति कहलायी। 'बौधायन-गृह्यसूत्र' में दुर्गापूजन, नवग्रहपूजन आदि की जो पद्धति है, वह आगम की पद्धति है, जिसमें आवाहन, पाद्य, अर्घ्य, पुष्पाञ्जलि आदि विधियाँ हैं। 'महाभारत' में भी इस पद्धति का उल्लेख उपलब्ध होता है, अतः इस आगम पद्धति कौ कम से कम ईशा पूर्व द्वितीय शताब्दी तक प्राचीन माना जा सकता है।

प्राचीन काल में इस आगम-पद्धति की पाँच शाखाओं का उल्लेख विभिन्न ग्रन्थों में मिलता है। ये शाखायें थीं- सौर, गाणपत्य, शैव, शाक्त एवं पाञ्चरात्र। इनमें पाञ्चरात्र पद्धति वैष्णव उपासना पद्धति है, जिसके विकास में दक्षिण के आलवार वैष्णव सन्तों का पर्याप्त योगदान रहा है।

सभी आगमों की परम्परा की एक मुख्य विशेषता रही है कि इसमें सामाजिक समानता का पर्याप्त पोषण हुआ है। वैदिक उपासना पद्धति में आयी जटिलता एवं कट्टरता के विरुद्ध आगम की परम्परा सामाजिक समरसता, लौकिकता एवं सरलता के कारण समाज में व्यापक प्रसिद्धि पा सकी। अतिथि-पूजन की विधि किसी भी भारतीय के लिए प्रायः न तो जटिल प्रक्रिया थी और न ही अबोधगम्य थी। आगम पद्धति इस सरलता का पोषक रही और जन साधारण ने अतिथि की तरह देवपूजन कर देवता को अधिक सन्निकट पाया। वैदिक ऋचाओं की तरह इसके मन्त्रों के उच्चारण में पाण्डित्य और संस्कृत व्याकरण के ज्ञान की अपेक्षा थी, न ही मध्यकाल में भी कोई जातीय प्रतिबन्ध था।

जयन्तभट्ट (नवम शती उत्तरार्द्ध) ने 'आगम-डम्बर' प्रहसन में पाञ्चरात्र के सम्बन्ध में जो लिखा है, उससे यह अर्थ निकलता है कि इस परम्परा के उपासक ब्राह्मणेतर थे और उन्हें समाज में ब्राह्मण के समान सम्मान प्राप्त था। वे पाञ्चरात्र आगम के ग्रन्थों का पारायण करते थे और उनके प्रति वैदिक संहिताओं के समान आदर की भावना रखते थे। जिस प्रकार वैदिक संहिताओं में एक भी शब्द का हेरफेर या आगे-पीछे करना अक्षम्य माना गया है, उसी प्रकार पाञ्चरात्र के ग्रन्थों के लिए भी वे ध्यान रखते थे। जयन्त भट्ट की इस रचना में आगम के विभिन्न सम्प्रदायों तथा वैदिक सम्प्रदाय की विशेषताओं का हास्यपरक वर्णन किया गया है। सभी सम्प्रदाय के अनुयायी आपसे में लड़ते हैं, नोंकझोंक करते है, अपने वर्चस्व के लिए दूसरे सम्प्रदाय पर छींटाकशी करते हैं, किन्तु अन्त में जयन्त भट्ट ने अपने न्यायशास्त्र के पाण्डित्य का उपयोग करते हुए सबके बीच समन्वय करने का प्रयास किया है। इसी क्रम में आगम-डम्बर का प्रसिद्ध श्लोक है—

एकः शिवः पशुपतिः कपिलोऽथ विष्णुः
संकर्षणो जिनमुनिः सुगतो मनुर्वा।
संज्ञाः परं पृथगिमास्तनवोऽपि काम-
मव्याकृते तु परमात्मनि नास्ति कोऽपि भेदः।। 4।57

इस 'आगम-डम्बर' के चतुर्थ अंक में वैदिक ऋत्विक् बेचैन होकर कहते हैं कि कानों में बर्छी की तरह मुझे यह बात लग रही है।

ऋत्विक्— **किं क्रियते? किन्त्विदमधिकं मे कर्णशल्यम्।**

उपाध्यायः— **किमिव?**

ऋत्विक्— **यदमी पाञ्चरात्रिकाः भागवताः ब्राह्मणवद् व्यवहरन्ति। ब्राह्मणसमाजमनुप्रविश्य निर्विशङ्कमभिवादय इति जल्पन्ते। विशिष्टस्वरवर्णानुपूर्वीकृतया वेदपाठमनुसरन्त इव पञ्चरात्रग्रन्थमधीयते। ब्राह्मणाः स्म इत्यात्मानं व्यपदिशन्ति व्यपदेशयन्ति च। शैवादयस्तु न चातुर्वर्ण्यमध्यपतिताः, श्रुतिस्मृतिविहितमाश्रममवजहतः शासनान्तरपरिग्रहेणान्यथा वर्तन्ते। एते पुनराजन्मन आसन्ततः ब्राह्मणा एव वयमिति ब्रुबाणास्तथैव चातुराश्रम्यमनुकुर्वन्तीति महद् दुःखम्।**

अर्थात् ये पांचरात्र वाले वैष्णव ब्राह्मण के समान व्यवहार करते हैं। ब्राह्मणों के समाज के बीच जाकर कहते हैं कि 'मुझे विना किसी भय के अभिवादन करो। विशेष प्रकार से स्वरों के साथ वर्णों को यथास्थान रखते हुए पाञ्चरात्र के ग्रन्थों का

पाठ करते हैं, जैसे वेदपाठ का अनुसरण कर रहे हों। हमलोग ब्राह्मण हैं' यह अपने बारे में उपदेश करते हैं और दूसरे से भी कराते हैं। शैव आदि आगमवाले तो खैर चातुर्वर्ण्य के भीतर आते ही नहीं, वेद और स्मृतियों में वर्णित आश्रम का त्याग कर अपने बनाये हुए दूसरे ही नियमों का पालन करते हैं। किन्तु ये (पांचरात्रवाले) कहते हैं कि मैं जन्म से ब्राह्मण हूँ तथा मेरी सन्तति भी ब्राह्मण रहेंगे। इस प्रकार कहते हुए उसी रूप में बोलते हुए चारों आश्रमों का अनुकरण करते हैं।"

एक ऋत्विक् का आक्रोशपूर्ण कथन होने के कारण इसकी शैली व्यंग्यात्मक है, किन्तु इससे पांचरात्र आगम में ब्राह्मणेतर साधकों का प्रवेश तथा समाज में उनका सम्मान स्पष्ट प्रतीत है। इसीलिए वे कट्टर वैदिकों के लिए कर्णशल्य बने हुए हैं।

जयन्त भट्ट का यह कथन इसलिए भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इसमें पांचरात्र आगम के अनेक ग्रन्थों का भी संकेत किया गया है, जिनका पाठ वे अनुयायी किया करते थे।

बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना से प्रकाशित 'पांचरात्रागम' ग्रन्थ में डा. राघवप्रसाद चौधरी ने 'नारायण-संहिता' का हवाला देते हुए पांचरात्र की तीन प्रकार की संहिताओं की सूची दी है। इस सूची में 21 सात्विक संहिताएँ, 33 राजस संहिताएँ तथा 33 तामस संहिताएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य संहिताओं का भी संकेत है।

आधुनिक विद्वानों में डा. एच डेनियल स्मिथ ने 'वैष्णव आइकोनोग्राफी' नामक पुस्तक में कुल 35 संहिता-ग्रन्थों की सूची दी है, जिनका संकलन उन्होंने किया था। ये संहिताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) अगस्त्य-संहिता	(2) अनिरुद्ध-संहिता	(3) अहिर्बुध्न्य-संहिता
(4) ईश्वर-संहिता	(5) कपिंजल-संहिता	(6) काश्यप-संहिता
(7) गरुड़-संहिता	(8) जयाख्य-संहिता	(9) नारदीय-संहिता
(10) परम-संहिता	(11) पराशर-संहिता	(12) पाद्म-संहिता
(13) पारमेश्वर-संहिता	(14) पुरुषोत्तम-संहिता	(15) पौष्कर-संहिता
(16) बृहद् ब्रह्म-संहिता	(17) भार्गव-तन्त्र	(18) मार्कण्डेय-संहिता
(19) मार्कण्डेय-संहिता 2	(20) लक्ष्मी-संहिता	(21) वायु-संहिता
(22) वाशिष्ठ-संहिता	(23) विश्वामित्र-संहिता	(24) विष्णुतत्त्व-संहिता
(25) विष्णुतन्त्र-संहिता	(26) विष्णुतिलक-संहिता	(27) विष्णु-संहिता
(28) विष्वक्सेन-संहिता	(29) विहगेन्द्र-संहिता	(30) शाण्डिल्य-संहिता
(31) शेष-संहिता	(32) श्रीप्रश्न-संहिता	(33) सनत्कुमार-संहिता
(34) सात्वत-संहिता 2	(35) हयशीर्ष-संहिता	

इन संहिता-ग्रन्थों में 'अगस्त्य-संहिता' एवं ईश्वर-संहिता के दो पाठों का उल्लेख डा. स्मिथ ने किया है।

अगस्त्य-संहिता का प्राचीन ग्रन्थों में उल्लेख

धर्मशास्त्र की परम्परा में कई निबन्धकारों ने इस 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया है। हेमाद्रि (1260-1270 ई0) ने भी चतुर्वर्ग-चिन्तामणि के 'व्रत प्रकरण' में इसका उल्लेख किया है, जिसे कमलाकर भट्ट ने 'निर्णय-सिन्धु' में **'हेमाद्रौ अगस्तिसंहितायां'** कहकर उद्धृत किया है। हेमाद्रि का काल ज्ञात है। ये देवगिरि के यादववंशीय राजा महादेव (1260-70 ई.) के सर्वश्रीकरण-प्रभु, यानी सभी अभिलेखों के प्रभारी थे। महादेव के शासनकाल में ही 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' की रचना हुई थी।

'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' के श्राद्धकाण्ड के आरम्भ में उन्होंने अपने आश्रयदाता नृपति का वर्णन विस्तार से किया है, जिसके आधार पर ग्रन्थ के सम्पादक प्रो. विश्वनाथ शास्त्री ने हेमाद्रि का पद्यबद्ध परिचय इस प्रकार दिया है–

विध्वस्ताखिलवैरिणा किल महादेवस्य पृथ्वीपतेः
राज्यक्षीरसमुद्रवर्द्धनशशी हेमाद्रिसूरिः परः।
येन श्रीकरणाधिपत्यपदवीमासाद्य विद्यामपि
न्यस्ता श्रीश्च सरस्वती च विदुषां गेहेषु देहेषु च।।10।।

कमलाकर भट्ट कृत 'निर्णयसिन्धु' में 'चतुर्वर्ग-चिन्तामणि' से उद्धृत श्लोक परिशिष्ट 1 में ग्रन्थान्त में एकत्रित हैं। ये श्लोक 'अगस्त्य-संहिता' के विभिन्न अध्यायों में विद्यमान हैं। जिनका संदर्भ-संकेत भी वहीं दिया गया है।

'कालमाधव' माधवाचार्य की प्रामाणिक रचना मानी जाती है। इसका रचना-काल 1336-1350 ई. माना जाता है। इसमें भी रामनवमी निर्णय के क्रम में 'अगस्त्य संहिता' का उल्लेख हुआ है–

इहागस्त्यः
चैत्रमासे नवम्यां तु जातो रामः स्वयं हरिः।
पुनर्वस्वृक्षसंयुक्ता सा च पूर्वाह्णगामिनी।।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहात्मिका।
सैव मध्याह्नयोगेन सर्वकर्मफलप्रदा।।

(चतुर्थ प्रकरण : नवमी निर्णय)

रामोपासना की परम्परा में 'अध्यात्म-रामायण' का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें भी 'अगस्त्य संहिता' का उल्लेख हुआ है। इसके किष्किन्धाकाण्ड के चतुर्थ अध्याय में श्रीराम के मुख से लक्ष्मण को क्रियायोग अर्थात् रामोपासना का कर्मकाण्ड सुनाने की कथा है। इस सम्पूर्ण अध्याय में संक्षेप में पूजा-विधान का वर्णन किया गया है। इस पूजा-विधान पर 'अगस्त्य-संहिता की पद्धति' का पूर्ण प्रभाव है। इसके अतिरिक्त होमविधि के क्रम में कुण्डनिर्माण की विधि का उल्लेख न कर अगस्त्य-प्रोक्त मार्ग का उल्लेख कर दिया गया है। यहाँ कहा गया है कि आगमशास्त्र के ज्ञाता अगस्त्य मुनि द्वारा प्रतिपादित पद्धति से कुण्ड का निर्माण कर मूल मन्त्र से या पुरुषसूक्त से हवन करें–

अगस्त्येनोक्तमार्गेण कुण्डेनागमवित्तमः।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण पुंसूक्तेनाथवा बुधः।।31।।

अगस्त्य संहिता में 18वें अध्याय में कुण्ड निर्माण विधि विस्तार से उल्लिखित है।

'काव्यप्रकाश' के चर्चित प्रदीप-टीकाकार म.म. गोविन्द ठाकुर के पंचम पुत्र महामहोपाध्याय तर्कपञ्चानन आगमाचार्य देवनाथ ठक्कुर ने 1564 ई0 में अपनी 75 वर्ष की अवस्था में 'मन्त्रकौमुदी' नामक आगम के सिद्धान्त ग्रन्थ की रचना की। इसमें कुल 37 प्रकरण हैं, जिनमें आगम-कर्मकाण्ड के विविध विषयों का सविस्तर उल्लेख है। इस ग्रन्थ में पाँच स्थलों पर 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया गया है-

(1) इसके 'मण्डलविचार' नामक सप्तम प्रकरण के अन्त में पुरश्चरण के लक्षण पर विचार करते हुए पंचाङ्ग उपासना को पुरश्चरण मानकर प्रमाण के रूप में 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख किया है-

एतत् कण्ठरवेणैव प्राह चागस्त्यसंहिता।
पञ्चाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते।।

अर्थात् अगस्त्य संहिता भी मुक्तकण्ठ से कहती है कि भक्तिपूर्वक पंचाङ्ग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। 'अगस्त्य-संहिता' 16।51 में भी इन्हीं शब्दों में पुरश्चरण को परिभाषित किया गया है।

(2) 22वें प्रकरण में अर्घ्यादिस्थापन की विधि का उल्लेख करते हुए आवरण-पूजा का विस्तृत विवेचन न कर अगस्त्य-संहिता में उल्लिखित आवरण-पूजा को अपनाने का निर्देश किया है-

शेषं वक्तव्यमार्गेण विदध्यादविरोधिनम्।
अगस्त्यसंहितायान्तु प्रोक्तमावरणार्चनम्।।29।।

(3) 24वें प्रकरण में होम-विधान में देवनाथ ठक्कुर का मत है कि नैमित्तिक कर्म में ही होम करना चाहिए, नित्यकर्म में नहीं। यह मिथिला की परम्परा है, अतः वहाँ पूजन आदि कर्म में हवन नहीं किया जाता है। किन्तु उन्होंने 'अगस्त्य-संहिता' के उस मत का भी उल्लेख किया है, जिसमें नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों कर्मों में होम का विधान किया गया है-

संहितायामगस्त्यस्य समस्तविधिशेषतः।
नित्ये नैमित्तिके काम्येऽप्येतदग्निमुखं मतम्।।175।।

वर्तमान अगस्त्य-संहिता के चतुर्दश अध्याय में 66वें श्लोक में उपर्युक्त श्लोक का उत्तरार्द्ध इसी रूप में उपलब्ध है।

(4) इसी प्रकार सानत्कुमारीय होमविधि का विवेचन करते हुए 24वें प्रकरण में प्रतिदिन जप की संख्या का निर्धारण करते हुए अगस्त्य-संहिता के मत का उल्लेख किया गया है, जिसके अनुसार छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ बार जप प्रतिदिन करना चाहिए-

षट्सहस्त्रं सहस्त्रं वा शतमष्टोत्तरं जपेत्।
अगस्त्य-संहितायामप्येष शेषिको विधिः।।44।।

वर्तमान अगस्त्य-संहिता के षोडश अध्याय के तीसरे श्लोक में पुरश्चरण-विधान के क्रम में भी यहीं बात कही गयी है–

षट्सहस्त्रं सहस्त्रं वा शतं वाष्टोत्तरं शुचिः।।3।

(5) 'मन्त्रकौमुदी' के अन्तिम प्रकरण में म.म. देवनाथ ठाकुर ने उन प्राचीन ग्रन्थों का उल्लेख किया है जिनका अध्ययन करके वे प्रस्तुत ग्रन्थ को लिखने में प्रवृत्त हुए। इनमें 'प्रपञ्चसार', 'शारदा-तिलक', 'सारसमुच्चय', 'दीपिका', 'पूजाप्रदीप', 'श्रीरामार्चनचन्द्रिका', 'तन्त्रमुक्तावली', 'सनत्कुमार-तन्त्र', 'नारदीय-तन्त्र' आदि के साथ 'अगस्त्य-संहिता' का भी उल्लेख किया है-

तूर्णायागं सोमशम्भुमतं चागस्त्यसंहिताम्।
संहितां वैष्णवीं तद्वत् तत्त्वसागरसंहिताम्।।5।।

इस प्रकार म.म. देवनाथ ठाकुर ने 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख जिन विषयों के सन्दर्भ में किया है वे इस संहिता में उपलब्ध हैं।

16वीं शती में मिथिला के महेश ठाकुर ने भी 'अगस्त्य-संहिता' का उल्लेख रामनवमी-प्रकरण में ही किया है—

चैत्रशुक्लनवमी रामनवमी, सा च मध्याह्नयोगिनी ग्राह्या। इसके प्रमाण में उन्होंने 'अगस्त्य-संहिता' को उद्धृत करते हुए लिखा है कि—

चैत्रशुक्ले तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।
सैव मध्याह्नयोगेन महापुण्यतमा भवेत्।
इत्यगस्त्यसंहितोक्तेश्च इति मत्कृतस्मृतिरत्नाकरे।

(तिथितत्त्वचिन्तामणि)

महेश ठाकुर ने इसके अतिरिक्त **नवमी चाष्टमीविद्धा त्याज्या विष्णुपरायणैः।** इस पंक्ति को भी अगस्त्य-संहिता से उद्धृत माना है। प्रस्तुत 'अगस्त्य संहिता' में यह पंक्ति 28वें अध्याय के 13वें श्लोक का पूर्वार्द्ध है, जहाँ **रामपरायणैः** पाठान्तर है। इसके अतिरिक्त महेश ठाकुर ने निम्नलिखित श्लोकों को भी अगस्त्य-संहितोक्त मानकर उद्धृत किया है—

उपोषणं जागरणं पितॄनुद्दिश्य तर्प्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभिः।।
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम्।
अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्।।
पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः।।

17वीं शती में अनन्तदेव ने भी 'स्मृति-कौस्तुभ' में इसी रामनवमी-निर्णय के प्रसंग में अगस्त्य-संहिता का उल्लेख किया है—

अगस्तिसंहितायां-
चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ।
मेषे पूषणि संप्राप्ते लग्ने कर्कटकाह्वये।
आविरासीत्स कलया कौसल्यायां परः पुमान्।
तस्मिन्दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतं सदा।
तत्र जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि।
प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु संध्याद्याः कालिकाः क्रियाः।
संपूज्य विधिवद्रामं भक्त्या वित्तानुसारतः।

ब्राह्मणान्भोजयेद्धुत्वा दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
गोभूतिलहिरण्याद्यैर्वस्त्रालंकरणैस्तथा ।
रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत्परया मुदा।
एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्।
अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बहून्यपि।
भस्मीकृत्वा व्रजत्येव तद्विष्णोः परमं पदम्।
सर्वेषामप्ययं धर्मो भुक्तिमुक्त्येकसाधनम्। इति।

ये सभी उद्धरण इस 'अगस्त्य-संहिता' में उपलब्ध हैं।

आधुनिक काल के विख्यात आगमविद् सरयू प्रसाद द्विवेदी (विक्रम संवत् 1892 से 1963) ने अपने ग्रन्थ 'आगम रहस्य' में भी 'अगस्त्य-संहिता' का पर्याप्त उल्लेख किया है। यह ग्रन्थ राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से ग्रन्थाङ्क 88 के रूप में प्रकाशित है।

इस ग्रन्थ में आचार्य ने त्रयोदश पटल में पुरश्चरण प्रकरण में अगस्त्य-संहिता से निम्नलिखित स्थल को उद्धृत किया है—

अगस्त्य-संहितायाम्

अथ वक्ष्ये महादेवि पौरश्चरणिकं विधिम्।
विना येन न सिद्धिः स्यान्मत्रो वर्षशतैरपि।।1।।

यह श्लोक किंचित् पाठान्तर से इस ग्रन्थ के षोडश अध्याय के आरम्भ में है।

अगस्त्य-संहिता की प्राचीनता पर विचार

उपनिषदों में आगमशास्त्रीय 'रामरहस्योपनिषद्' तथा रामतापिनीयोपनिषद् वैष्णवागम में महत्त्वपूर्ण है। इसका रचनाकाल निर्धारित नहीं है, किन्तु इसका उल्लेख मुक्तिकोपनिषद् में अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषदों में किया गया है। सामान्यतः यह अवधारणा रही है कि आदि शंकराचार्य ने जिन उपनिषद्-ग्रन्थों पर शांकर-भाष्य लिखा है, उसके अतिरिक्त उपनिषद् परवर्ती काल के हैं। किन्तु, शंकराचार्य ने उपनिषद् भाष्य में अनेक ऐसे उपनिषदों को उद्धृत किया है, जो आगम की परम्परा में हैं और मुक्तिकोपनिषद् में उल्लिखित 108 उपनिषदों की सूची में हैं।

1. 'श्वेताश्वतरोपनिषद्-भाष्य' में के आरम्भ में आत्मज्ञान के माहात्म्य वर्णन प्रसंग में 'नृसिंहपूर्वतापिनीयोपनिषद्' से **तमेवं विद्वानमृत इह भवति** (नृसिंह पूर्व. 1/6)

2. 'कर्म भी मोक्ष प्राप्ति का साधन है' इस का खण्डन करते हुए 'कैवल्योपनिषद्' तृतीय वल्ली से **"न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः"** उद्धृत किया गया है।

3. इसी प्रसंग में आगे 'योगशिखोपनिषद्' को अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषद् मानते हुए शंकराचार्य ने लिखा है-

तथा चाथर्वणे विशुद्ध्यपेक्षमात्मज्ञानं दर्शयति-
जन्मान्तर सहस्रेषु यदा क्षीणास्तु किल्विषाः।
तदा पश्यन्ति योगेने संसारोच्छेदनं महत्।।

4. प्रथमाध्याय के सोलहवीं गाथा पर भाष्य में कौषीतकि उपनिषद् से **'एष ह्येव साधुकर्म कारयति'** (318) उद्धत किया है।

इस प्रकार, 'नृसिंहतापिनीयोपनिषद्', 'योगशिखोपनिषद्', 'कौषीतकि-उपनिषद्' तथा अन्य कुछ अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषदों की रचना शंकराचार्य से पूर्व भी हो चुकी थी। 'रामतापिनीयोपनिपद्' भी अथर्ववेद से सम्बद्ध उपनिषद् है, अतः प्रथम दृष्ट्या ही इन्हें शंकराचार्य से परवर्ती मानना उचित नहीं है। इनेक काल निर्धारण के सम्बन्ध में शोध अपेक्षित है, किन्तु कालनिर्धारण करते समय उपरिलिखित तथ्यों को ध्यान में रखना होगा।

'रामतापिनीयोपनिषद्' में दो स्थलों पर 'अगस्त्य-संहिता' सप्तम अध्याय के श्लोक किंचित् शब्दान्तर से उपलब्ध हैं। प्रथम स्थान पर भगवान् शंकर द्वारा श्रीराम के मन्त्र का जप करने और इसके कारण काशी के अविमुक्त क्षेत्र कहलाने का उल्लेख हुआ है। यहाँ ऊपर बायीं ओर रामतापिनीयोपनिषद् के श्लोक हैं तथा नीचे दाहिनी ओर 'अगस्त्य-संहिता' के संगत श्लोक संख्या के साथ दिये जा रहे हैं।

अथ तं प्रत्युवाच।
श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः।।1।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

नियतः सोऽपि तत्रैव जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरशतं भक्त्या ध्यानहोमार्चनादिभिः।।16।।–'अगस्त्य-संहिता'

ततः प्रसन्नो भगवाञ्छीरामः प्राह शंकरम्।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर।।2।। इति।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

ततः प्रसन्नो भगवान् रामः प्राह त्रिलोचनम्।

वृणीष्व पदमिष्टं ते देवानामपि दुर्ल्लभम्।।17।। –'अगस्त्य-संहिता'

अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वरः पप्रच्छ।

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।

म्रियेत देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।3।। इति।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

गंगायां च तटे वापि यत्र कुत्रापि वा पुनः।

म्रियन्ते ये प्रभो देव मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।25।। –'अगस्त्य-संहिता'

अथ स होवाच श्रीरामः।।

क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।

कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।4।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

क्षेत्रे तु तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।

कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।29।।–'अगस्त्य-संहिता'

अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।

अहं संनिहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।5।।

क्षेत्रेऽस्मिन्योऽर्चयेद्भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।

ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः।।6।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन शंकर।

अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।31।। –'अगस्त्य-संहिता'

त्वत्ते वा ब्रह्मणो वापि ये लभन्ते षडक्षरम्।

जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मुक्ता मां प्राप्नुवन्ति ते।।7।।–'रामतापनीयोपनिषद्'

त्वन्नो वा ब्रह्मणो वापि लभते च षडक्षरम्।

जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मृता मां प्राप्नुवन्ति ते।।30।। –'अगस्त्य-संहिता'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।

उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।8।।

इति श्रीरामचन्द्रेणोक्तम्।। –'रामतापनीयोपनिषद्'

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।

उपदेक्ष्यसि[1] मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।32।। –'अगस्त्य-संहिता'

द्वितीय स्थान पर रामतापिनीयोपनिषद् में रामोपासना की फलश्रुति के क्रम में '**भवन्ति चात्र श्लोकाः**' के द्वारा वे श्लोक कहे गये हैं, जो अगस्त्य-संहिता में भी उपलब्ध हैं। ये सभी श्लोक ग्रन्थ के परिशिष्ट 2 में 'अगस्त्य-संहिता' के सन्दर्भ संकेत के साथ दिये गये हैं।

यहाँ स्पष्ट है कि 'रामतापिनीयोपनिषद्' में किसी पूर्ववर्ती ग्रन्थ से उद्धृत ये श्लोक हैं। जब तक हमें 'रामतापिनीयोपनिषद्' का रचनाकाल स्पष्ट नहीं हो जाता, तबतक हमें कम से कम इतना मानने में आपत्ति नहीं होनी चाहिए कि 'अगस्त्य-संहिता' से ये श्लोक 'रामतापिनीयोपनिषद्' में उद्धृत किये गये हैं और 'अगस्त्य-संहिता' 'रामतापिनीयोपनिषद्' से पूर्व की रचना है।

हेन्स बेकर ने 'अयोध्या' पुस्तक में 'रामतापिनीयोपनिषद्' का रचनाकाल नवम शताब्दी माने जाने का उल्लेख किया है, किन्तु उन्होंने इस पर अपनी कोई टिप्पणी नहीं की है।

अगस्त्य-संहिता' ग्रन्थ की उपलब्धता

हेन्स बेकर ने 'अयोध्या' पुस्तक में 'अगस्त्य-संहिता'का पर्याप्त उल्लेख किया है तथा इसमें वर्णित रामोपासना की विधि का भी संगत उद्धरण के साथ उल्लेख किया है। हेन्स बेकर ने इसी ग्रन्थ मे लिखा है कि उनका यह सम्पूर्ण उल्लेख 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' पुस्तक से लिया गया है, जिसका प्रकाशन रामनारायण दास के सम्पादन में लखनऊ से 1898 ई. में हुआ था। हेन्स बेकर ने 'अगस्त्य-संहिता' की 10 अन्य पाण्डुलिपियों का भी उल्लेख होने की सूचना दी है, किन्तु उन पाण्डुलिपियों की विषयवस्तु के प्रसंग में वे मौन हैं। प्रयास करने के बाद भी इसकी एक भी प्रति हमें उपलब्ध नहीं हो सकी।

'अगस्त्य-संहिता' का एक संस्करण कलकत्ता के हितवादी पुस्तकालय से 1916 साल (1909 ई.) में श्रीकमलकृष्ण स्मृतितीर्थ के सम्पादन में बंगला लिपि में बंगला अनुवाद के साथ हुआ। इसके प्रकाशक श्रीमनोरंजन वन्द्योपाध्याय हैं तथा यह कलकत्ता के '10 नं. कलूटोला स्ट्रीट, हितवादी प्रेस, श्रीविनोदबिहारी चक्रवर्ती द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित हुआ था। इसके सम्पादक महोदय ने सूचना दी है कि उन्हें एक पाण्डुलिपि एसियाटिक सोसायटी से, दूसरी पाण्डुलिपि संस्कृत कालेज कलकत्ता से मिली थी तथा दो अन्य पाण्डुलिपियाँ उन्हें अपने गाँव से मिली थी। इन चार पाण्डुलिपियों के आधार पर 'अगस्त्य-संहिता' का यह महत्त्वपूर्ण सम्पादन है। वर्तमान प्रकाशन में इस पुस्तक का उपयोग हमने आधार-ग्रन्थ 'घ.' के रूप में किया है।

विक्रम संवत् 2042 अर्थात् 1985 ई. में हरिद्वार से प. महावीर प्रसाद मिश्र के सम्पादन में 'अगस्त्य-संहिता' के 11 अध्यायों का प्रकाशन हिन्दी अनुवाद

के साथ हुआ। भूमिका में सम्पादक महोदय ने सूचना दी है कि उनके पास 32 अध्यायों की पाण्डुलिपि है, किन्तु अर्थभाव के कारण वे तत्काल 11 अध्याय ही प्रकाशित कर रहे हैं। यह प्रति भी मेरे पास उपलब्ध नहीं है।

इन प्रकाशित कृतियों के अतिरिक्त 'अगस्त्य-संहिता; की अनेक पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा के पुस्तकालय में इसकी एक पाण्डुलिपि उपलब्ध है, जिसकी परिग्रहण संख्या 2429 (1858) है। इसमें भी 32 अध्याय हैं। इसका आरम्भ 'श्रीरामो जयति' से हुआ है। देवनागरी लिपि में लिखी इस पाण्डुलिपि में यद्यपि लेखनकाल नहीं दिया गया है, किन्तु पाण्डुलिपि के विशेषज्ञों की दृष्टि में यह कम से कम 200वर्ष प्राचीन होनी चाहिए।

एक अन्य पाण्डुलिपि डी. ए. वी. कालेज, चंडीगढ़ में भी उपलब्ध होने की सूचना है।

इस प्रकार अगस्त-संहिता की कई पाण्डुलिपियाँ हैं, जिनमें केवल 32 अध्याय हैं, तथा ग्रन्थ को पूर्ण माना गया है।

सन् 1356 से 1371 के बीच विजयनगर साम्राज्य के संस्थापक बुक्का ने तुर्कों के विरुद्ध लड़ाई लड़ने के लिए अपने भाई हरिहर के पुत्र कुमार कम्पन को अभियान पर भेजा था। कुमार कम्पन की सेना के एक भाग का नेतृत्व भारद्वाज-गोत्रीय एक ब्राह्मण गोपनारायण ने किया था। कांचीपुरम् के एक शिलालेख के अनुसार इसी गोपनारायण ने श्रीरंगम् के मन्दिर का भी जीर्णोद्धार कराया था। कहा जाता है कि इस गोपनारायण ने 'अगस्त्य-संहिता' पर एक व्याख्या लिखी थी, किन्तु 'मानसतरंगिणी' नामक वेबसाइट के लेखक ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि मैंने इस व्याख्या की पाण्डुलिपि का अवलोकन नहीं किया है–

He also composed a commentary on the Agastya-Samhita but I have not been able to examine this manuscript to further comment on the issue.

वर्तमान सम्पादन

इस सम्पादन में हमने कलकत्ता से प्रकाशित संस्करण का उपयोग करते हुए सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में उपलब्ध देवनागरी लिपि की पाण्डुलिपि से उसका मिलान किया है। सरस्वती भवन की यह पाण्डुलिपि कई अर्थों में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह चित्रकूट में गंगा और

पैसुरनी नदी के संगम पर किसी मन्दिर में लिखा गया है, जो रामोपासना का एक प्रसिद्ध स्थल है। इस पाण्डुलिपि की परम्परा की प्रामाणिकता असंदिग्ध है।

इस ग्रन्थ के सम्पादन के क्रम में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के कुलपति महोदय के प्रति हम आभार प्रकट करते हैं, जिन्होंने हमें अनुमति देते हुए पाण्डुलिपियों की छायाप्रति उपलब्ध करायी है। इसके साथ ही प्राच्यविद्या के विद्वान् श्री ब्रह्मानन्द चतुर्वेदीजी ने कठिन परिश्रम कर सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्पर्क कर उनसे अनुमति लेकर हमें सरस्वती भवन पुस्तकालय से इस पाण्डुलिपि की छायाप्रति उपलब्ध करायी है, जिसके लिए हम उनके प्रति आभारी है। साथ ही, सरस्वती भवन के अधिकारी भी धन्यवाद के पात्र हैं, जिन्होंने पाण्डुलिपि की प्रति मिलान करने के लिए श्री चतुर्वेदीजी को उपलब्ध कराकर इस कार्य में हमें सारस्वत सहयोग किया है।

इन पाण्डुलिपियों तथा आधार-ग्रन्थ का विवरण इस प्रकार है—

पाण्डुलिपि 'क'

पाण्डुलिपि संख्या— 72223

प्रवेश संख्या— 106918

स्थान— सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विषय प्रविष्टि— पुरोहिती (पौरोहित्य?)

आकार – 11 X 5.5 इंच

लिखित स्थान— 9 X 4 इंच

प्रति पत्र पंक्तिसंख्या— 12

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या -- 45-47

स्थिति— पूर्ण, पत्रसंख्या 5) ।(31वाँ अध्याय अनुपलब्ध)

लिपिकाल— वैशाख कृष्ण द्वादशी संवत् 1902 अर्थात् 4 मई 1845 ई.।

लिपिकार— लाला सीतार म।

स्थान— चित्रकूट, गंगा एव परसुरनी नदी के संगम पर।

पुस्तकी के अधिकारी— श्री श्री श्री श्री महन्त बलभद्र दास।

आरम्भ— श्रीमते रामानु ाय नमः। अगस्त्यो नाम वि र्षिः सत्तमो गौतमीतटे। कदाचिद्दण्डकारण्ये सुत क्ष्णस्याश्रमं ययौ।।1। प्रत्युज्जगाम तं भक्त्या गंधपुष्पाक्षतोदकैः।पाद्याघ ्यर्हणां चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे ि निः।।2।

अन्त— आयुरारोग्यमैश्वर्य त्रपौत्रप्रवर्द्धनम्। सर्वान् क ानवाप्नोति विष्णुलोके स

गच्छति। इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये हनुमान्मन्त्रयंत्रश्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोध्यायः। 32 अश्लोकसंख्या 2000 लिखतं लालासीताराम श्रीचित्रकूटअस्थाने श्रीरामजीघाटमंदाकिनीपैसुरनीतटे संगमे।। पुस्तकं श्रीश्रीश्रीश्री महंत आचार्य वलभद्रदासजी की वैसाष वदि 12 संवत् 1902 रामः रामः रामः।

इस पाण्डुलिपि के अनेक अध्यायों में श्लोक संख्या सन्देहास्पद है। उदाहरण के लिए पंचम अध्याय के प्रथम श्लोक में संख्या नहीं है तथा द्वितीय श्लोक को ही प्रथम श्लोक माना गया है। आगे भी सर्वत्र श्लोक संख्या नहीं है। कई श्लोकों के बाद जब संख्या दी जाती है, तबवह संख्या कहीं कम पड़ जाती है, तो कहीं अधिक हो जाती है। जहाँ संख्या अधिक हो जाती है, वह स्थल अधिक विचारणीय हो जाता है, क्योंकि वह आदर्श मातृका से प्रतिलिपि करते समय कुछ पंक्तियाँ छूट जाने की स्थिति का द्योतक है। इसमें 31वाँ अध्याय सम्पूर्ण खण्डित है। लिपिकार ने 'एकत्रिंशोऽध्यायः' प्रारम्भ कर 32वाँ अध्याय लिखना प्रारम्भ कर दिया है।

पाण्डुलिपि में अशुद्धियों की भरमार है। अनुस्वार, विसर्ग, रेफ, उकार, एकार, ऐकार आदि मात्राएँ टूट गयी हैं। ये मात्राएँ जीरॉक्स कापी होते समय भी गायब हो सकती हैं, ऐसा मानकर हमने ऐसे स्थलों को सम्पादित पुस्तक की पाद-टिप्पणी में यथास्थिति दिखाने के लिए नहीं लिया है। ऐसे स्थलों पर अन्य पाण्डुलिपियों तथा बंगाल से प्रकाशित प्रति का उपयोग कर पाठोद्धार किया गया है, किन्तु इस पाण्डुलिपि के पाठ एवं उसकी मूल भावना को सुरक्षित रखा गया है।

इतना करने के बाद भी चित्रकूट के घाट पर एक महन्त के उपयोग हेतु लिखित होने के कारण परम्परा और पाठ की दृष्टि से सरस्वती भवन की यह पाण्डुलिपि महत्त्वपूर्ण है। वर्तमान सम्पादन इस पाण्डुलिपि के पाठ का प्रतिनिधित्व करता है।

पाण्डुलिपि 'ख'

सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में सुरक्षित यह अगस्त्य-संहिता की अपूर्ण पाण्डुलिपि है। इसमें पत्र-संख्या 1 से 8 तक लगातार है तथा एक अन्य 11वाँ पत्र उपलब्ध है। इस प्रकार इस पाण्डुलिपि में आरम्भ से षष्ठ अध्याय के चतुर्थ श्लोक के पूर्वार्द्ध तक तथा सप्तम अध्याय के तृतीय श्लोक के तृतीय चरण से अष्टम अध्याय के प्रथम श्लोक के द्वितीय चरण तक उपलब्ध है।

पाण्डुलिपि में लिपिकाल, स्थान तथा लिपिकार का नाम अनुपलब्ध है, किन्तु लिपि की दृष्टि से यह अर्वाचीन प्रतीत होती है। इस पाण्डुलिपि का काल 20वीं शती का पूर्वार्द्ध माना जा सकता है। लिपि अत्यन्त स्पष्ट है तथा लिपिकार संस्कृत भाषा के अभिज्ञ प्रतीत होते हैं। फलतः शुद्धता की दृष्टि से यह पाण्डुलिपि महत्त्वपूर्ण है। इसे हमने पाण्डुलिपि संख्या 'ख' के रूप में अभिहित कर पाठान्तर आदि का संकेत किया है। इस पाण्डुलिपि का विवरण निम्न प्रकार से है–

पाण्डुलिपि संख्या– 14971

प्रवेश संख्या– 49653

स्थान– सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विषय प्रविष्टि– पुराणेतिहास

आकार – 24 X 11 से.मी.

लिखित स्थान– 19 X 9 से.मी.

प्रति पत्र पंक्तिसंख्या– 11

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 37

आरम्भ– श्री गणेशाय नमः। अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सत्तमो गौतमीतटे।

स्थिति– अपूर्ण, पत्रसंख्या 1-8 तथा 11

पाण्डुलिपि 'ग'

सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय में सुरक्षित यह अगस्त्य-संहिता की अन्य अपूर्ण पाण्डुलिपि है। इसमें पत्रसंख्या 39 तथा 47 से 65 तक उपलब्ध है। अन्त भी खण्डित है। इसमें 19वें अध्याय के 28वें श्लोक से 41वें श्लोक तक तथा 23वें अध्याय के 29वें श्लोक से 32वें अध्याय के 36वें श्लोक तक उपलब्ध है। लिपिकाल का उल्लेख नहीं है, किन्तु लिपि की दृष्टि से पाण्डुलिपि प्राचीन प्रतीत होती है। इसका लिपिकाल 19वीं शती का पूर्वार्द्ध या उसे भी प्राचीनतर अनुमानित है।

यह भी पाण्डुलिपि 'क' की तरह अशुद्धियों से भरी हुई है। यहाँ तक कि 'स' एवं 'श' में भी व्यत्यय है तथा कठिन सन्धि के स्थल पर तो सर्वत्र अशुद्धि है। लिपिकार संस्कृत से अनभिज्ञ प्रतीत होते हैं। फिर भी अध्याय संख्या 31 इसमें पूर्णतः उपलब्ध है, जो पाण्डुलिपि 'क' में लिपिकार के भ्रम से खण्डित है।

इस पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है–

पाण्डुलिपि संख्या– 14673

प्रवेश संख्या– 21161

स्थान– सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

विषय प्रविष्टि– पुराणेतिहास

आकार – 28 X 15 से.मी.

लिखित स्थान– 20 X 7.5 से.मी.

प्रति पत्र पंक्तिसंख्या– 10

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 40

आरम्भ– न स्पृशतो रामोपासनपूर्वकं।। यदा रामोहमित्येवं चिन्तयेदप्यनन्यधी ।।28।।

स्थिति– अपूर्ण, पत्रसंख्या 39 तथा 47-65 तक।

आधार-ग्रन्थ 'घ'

प्रस्तुत सम्पादन के क्रम में पाठोद्धार एवं पाठान्तर के आदि के निर्देश के लिए हमने बंगाल से प्रकाशित पुस्तक का उपयोग किया है, जिसे 'घ' के रूप में रखा है। इस ग्रन्थ में 32 अध्याय हैं, किन्तु 32 वें अध्याय के अन्त में पाण्डुलिपि 'क' की अपेक्षा कम श्लोक हैं। इसमें भी कतिपय स्थलों पर पाठोद्धार अपूर्ण है। उन स्थलों पर अन्य पाण्डुलिपियों से मिलान करने पर अर्थ स्पष्ट हो जाते हैं। साथ ही, पाण्डुलिपि 'क', एवं 'ग' की अपेक्षा पाठ भेद अधिक है। ऐसा प्रतीत होता है कि दोनों पाठों का अलग-अगल विकास हुआ है, जिसपर स्थानीय प्रभाव है। इसके सम्पादक एवं अनुवादक प. कमलकृष्ण स्मृतितीर्थ ने संक्षेप में अनुवाद कर इसकी विषयवस्तु को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

अगस्त्य के नाम पर अनेक रचनाएँ

महामुनि अगस्त्य वैदिक ऋषि है। बृहद्देवताकार शौनक ने लिखा है कि अगस्त्य की बहन ब्रह्मवादिनी थीं। वे स्वयं भी ऋग्वेद के अनेक सूक्तों के द्रष्टा हैं। रामायण में अरण्यकाण्ड में अगस्त्य की विस्तृत कथा आयी है, जिसमें आतापी राक्षस को निगल जाने की कथा है। युद्धकाण्ड में भी रावण के साथ युद्ध करने के क्रम में श्रीराम की बैचैनी दिखाई पड़ने पर अगस्त्य मुनि आकर उन्हें सूर्योपासना का उपदेश करते हैं, जो 'आदित्यहृदय' के नाम से विख्यात है। राज्याभिषेक के बाद भी अगस्त्य की चर्चा उत्तरकाण्ड में आई है।

अगस्त्य समुद्र को शोषित करनेवाले ऋषि के रूप में पौराणिक साहित्य में चर्चित हैं। अगस्त्य की स्तुति में एक प्रसिद्ध मन्त्र है–

आतापी भक्षियो ये वातापी च महाबलः।
समुद्रः शोषितो येन स मेऽगस्त्यः प्रसीदतु।।

ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्तकाल के बाद में जब आगम, तन्त्र एवं अन्य प्रकार के चमत्कारपूर्ण जादू-टोना का बोलबाला समाज में बढ़ा, तब इस प्रकार के चमत्कारपूर्ण कार्यों के प्रवर्तक तथा विज्ञानी ऋषि के रूप में अगस्त्य चर्चित रहे। न केवल भारत में अपितु इन्डोनेशिया में भी नवम शताब्दी में अगस्त्य की मूर्तियाँ स्थापित की गयी थीं। प्रम्बनान, जाबा, इन्डोनेशिया के पुरातात्त्विक संग्रहालय में महामुनि अगस्त्य की एक प्रतिमा भगवान् शिव के साथ है, जो प्रम्बनान के चण्डी-शिव मन्दिर में स्थापित थी। इन मन्दिर का निर्माण काल 9वीं शती है। इस चित्र में वाम भाग में स्थित अगस्त्य की इस प्रतिमा में उन्हें त्रिशूल तथा जपमाला के साथ दिखलाया गया है। यज्ञोपवीत, तुन्दिल उदर तथा बलिष्ठ काया की यह प्रतिमा अगस्त्य की पहचान है।

अगस्त्य के नाम पर विभिन्न प्रकार की रचनाएँ उपलब्ध हैं। प्रो. कुप्पुस्वामी शास्त्री, पी. पी. सुब्रह्मण्यम् शास्त्री, सी. कुन्हन राजा, वी. राघवन्, ई. पी. राधाकृष्णन् आदि के सम्पादन में मद्रास विश्वविद्यालय से 1937 ई. में प्रकाशित 'न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम' में अगस्त्य के नाम पर निम्नलिखित रचनाओं की पाण्डुलिपि पाये जाने का उल्लेख किया गया है–

अगस्तिकल्प– तन्त्रशास्त्र
अगस्त्य-कल्प– शिल्पशास्त्र का ग्रन्थ है।
अगस्त्य-कल्प– रामोपासना का आगमशास्त्रीय ग्रन्थ है। जिसका उल्लेख रामार्चन-

ग्रन्थ में आधार-ग्रन्थ के रूप में हुआ है। कहा नहीं जा सकता है कि यह अगस्त्य-संहिता है या इससे भिन्न ग्रन्थ है।

अगस्त्यकल्प– बरौदा ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीच्यूट में एक पाण्डुलिपि है, जिसकी पुष्पिका इस प्रकार है– इत्यगस्त्यप्रोक्तमेधादक्षिणामूर्तिकल्पः।

अगस्त्य-गीता– वाराह पुराण एक अन्तर्गत पशुपालोपाख्यान (अध्याय 51-67) अगस्त्यगीता के नाम से उल्लिखित है।

अगस्त्य-निघण्टु– यह शब्दकोश है।

अगस्त्य-व्याकरण– तमिलभाषा का व्याकरण-ग्रन्थ।

अगस्त्य-व्याकरणनिघण्टु

अगस्त्य-व्याकरणोक्तशब्दसंग्रहनिघण्टु।

अगस्त्य-श्रीरामसंवाद

अगस्त्य-संपात– तन्त्र।

अगस्त्य-संवाद– तन्त्र।

अगस्त्य-संहिता– इसे अगस्त्य-सुतीक्ष्ण-संवाद से भिन्न रचना मानी गयी है।

यदुनाथ कृत 'आगम-कल्पलता', उमानन्दनाथ कृत 'नित्योत्सव-निबन्ध', भास्करानन्दनाथ कृत 'ललितार्चनचन्द्रिका', 'शाक्तानन्दतरंगिणी', तथा 'तन्त्रसार' में एक अगस्त्य-संहिता की चर्चा है, जिसे शाक्ततन्त्र की रचना मानी गयी है। इस ग्रन्थ से 'गायत्री-कवच' को उद्धृत किया गया है।

अगस्ति-रामायण

अगस्ति संहिता

अगस्तिमत– इसका दूसरा नाम अगस्तीया-रत्नपरीक्षा है। Luis Ftom महोदय ने अपने ग्रन्थ Les Lapidaires Indiens में अन्य रत्न-सम्बन्धी संस्कृत पाठों के साथ इसका सम्पादन तथा फ्रेंच में अनुवाद किया था, जो 1896 ई. में पेरिस मे प्रकाशित हुआ।

अगस्तीश्वराष्टक– यह एक स्तोत्र है, ज़ो अद्‌यार पुस्तकालय में उपलब्ध है।

अगस्त्य-गृह्यसूत्र– आपस्तम्ब संहिता में जिन 18 गृह्यसूत्रों का उल्लेख है, उनमें अगस्त्य के नाम यह इस गृह्यसूत्र का उल्लेख हुआ है।

अगस्त्य-पटल–

अगस्त्य-प्रकाश-संहिता-

अगस्त्य-वास्तुशास्त्र-

अगस्त्यविद्या- मन्त्र । अद्‌यार पुस्तकालय बुलेटिन भाग 2, पृष्ठ 230

अगस्त्य-स्मृति-

अगस्त्य-संहिता– यहाँ सम्पादकों ने टिप्पणी की है कि अनेक प्रकार की अगस्त्य-संहिताएँ हैं।

अगस्त्य-सूत्र– इसका दूसरा नाम शक्ति-सूत्र है।

अगस्त्याष्टक–

अगस्त्य-दशावतारस्तोत्र–

अगस्त्य-द्वैध-निर्णय–

अगस्त्य-ब्रह्मवैवर्त-पुराण

अगस्त्य-शक्तितन्त्र– इस ग्रन्थ में विद्युत् एवं विद्युत् से चलने वाले यन्त्रों का विवरण है।

इस प्रकार अगस्त्य के नाम से अनेक रचनाओं का उल्लेख यह स्पष्ट करता है कि विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों ने ज्ञान-विज्ञान, धर्मशास्त्र, उपासना, तन्त्र, मन्त्र, व्याकरण, स्तोत्र आदि विषयों पर रचना कर अगस्त्य के नाम से प्रचारित किया।

आज भी विभिन्न वेबसाइटों पर विद्वानों ने 'अगस्त्य-संहिता' के नाम से अनेक ऐसे तथ्यों का प्रकाशन किया है, जिसे 'अगस्त्य-संहिता', से कोई सम्बन्ध नहीं है। दावा किया जा रहा है कि 'अगस्त्य-संहिता' में सूखी बैटरी बनाने की विधि लिखी हुई है, जिसमें ताँबा और जस्ता का उपयोग कर ऊर्जा उत्पन्न होती है। Chronicles of Hindustan शीर्षक के अन्तर्गत Ancient Indian Approach to Science में वेबसाइट पर जो तथ्य उद्घाटित किया गये है, उसे यहाँ उद्धृत किया जा रहा है। यह लेख चिन्मय युवा केन्द्र के द्वारा 2006ई. में वेबसाइट पर प्रकाशित किया गया था। इस लेख के पक्ष एवं विपक्ष में अनेक विद्वानों ने पत्राचार किया है–

We Beat the World at Batteries

An interesting procedure, that gives proof for the usage and preparation of the battery cell is recorded in Agastya Samhita. The following lines illustrate the electrical cell.

Place copper plates in an earthern pot, cover it with copper sulphate and Moistened saw dust. Spread zinc powder and cover it with mercury. Due to Chemical reaction, +ve and –ve electricity is produced. He further says that this water is decomposed in to Oxygen and Hydrogen. - Agastya Samhita

Interestingly the battery, in the procedure as explained, in the previous text is prepared and the same was tested and proved practical. When a cell was prepared according to Agastya Samhita and measured, it gives open circuit voltage as 1.138 volts, and short circuit current as 23 mA.

ऐसा ही एक तथ्य प्रकाशित किया गया है कि अगस्त्य-संहिता में विमान बनाने की विधि वर्णित है–

Ancient Sanskrit literature is full of descriptions of flying machines - Vimanas. From the many documents found it is evident that the scientist-sages Agastya and Bharadwaja had developed the lore of aircraft construction. The "Agastya Samhita" gives us Agastya's descriptions of two types of aeroplanes. The first is a "chchatra" (umbrella or balloon) to be filled with hydrogen. The process of extracting hydrogen from water is described in elaborate detail and the use of electricity in achieving this is clearly stated. This was stated to be a primitive type of plane, useful only for escaping from a fort when the enemy had set fire to the jungle all around. Hence the name "Agniyana". The second type of aircraft mentioned is somewhat on the lines of the parachute. It could be opened and shut by operating chords

इसी प्रकार डा. एम. एन. दत्त द्वारा अंग्रेजी में अनूदित तथा न्यू भारतीय बुक कॉरपोरेशन, से 2007 में प्रकाशित गरुड़महापुराण की भूमिका में सम्पादक एस. जैन ने लिखा है कि अगस्त्य-संहिता में रत्न-विज्ञान के तथ्य मिलते हैं। उन्ही के शब्दों में–

According to M.N. Dutt the book comprises three Samhitas viz. the Agastya Samhita, the Brhaspati Samhita (Nitisara) and the Dhanvantari Samhita. Each one of those Samhitas would give it a permanent value, and accord to it an undyeing fame among the works of practical ethics or applied medicine. The Agastya Samhita deals with the formation, crystallisation and distgisestive. Traits of the different precious gems and enumerates the names of the countries from which our forefathers used to collect these gems. The cutting, polishing, setting

and apprecising etc. of several kind of gems and diamond, as they were practiced in ancient India, cannot but be interesting to artists and lay men, and the scientific traders unbedded in the highly poetic accounts of these original gems.

इसी प्रकार 'अगस्त्य-संहिता' में विद्युत् उत्पादन एवं विद्युत् संचालित उपकरणों के उल्लेख होने की भी धूम मची है। THE MAGICIAN'S DICTIONARY, An Apocalyptic Cyclopaedia of Advanced M/magic(k)al Arts and Alternate Meanings, Second Edition 1996 में वैदिक देवता वरुण के सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख करते हुए कहा गया है –

VARUNA

One of the Vedic deities, the God of Water — symbolizes "the Waters of Space." In the *Agastya Samhita* are instructions for building a dry-cell battery. Liquid energy, called *Mitra Varuna* ("Friendly Water God") is produced. Water can thereby be divided into Prana-vayu and Udana-vayu. Vayu means "air." Thus the Ancient Hindus correctly analyzed water as the mixture of two gases. Prana is the life principle (so must correspond to oxygen, which is essential to life) and Udana means "upward breathing" (so must correspond to hydrogen, which is the lightest element).

इस प्रकार के उल्लेखों का अवलोकन करने से प्रतीत होता है कि 'न्यू कैटेलोगस कैटेलोगोरम' में प्रदत्त सूची में अगस्त्य के नाम पर जिन विभिन्न कालों में विभिन्न विद्वानों द्वारा रचित विविध रचनाओं का उल्लेख हुआ है, उनकी अनुपलब्धता की स्थिति में सभी तथ्य 'अगस्त्य-संहिता' से ही उद्धृत मान लिए गये, क्योंकि रामोपासना के कर्मकाण्ड के रूप में यह संहिता अत्यन्त प्रचलित थी।

इन्हीं परवर्ती प्रक्षेपों की शृंखला में 'अगस्त्य-संहिता' का भविष्य-खण्ड भी है। इसे 'रामानन्दजन्मोत्सवकथा' के नाम से अनेक बार प्रकाशित किया गया है। मेरे पास रामानन्दाचार्य की 700वीं जयन्ती के अवसर पर रामानन्दाचार्य पीठ अहमदाबाद से प्रकाशित 'स्मारिका' उपलब्ध है, जिसमें यह अंश हिन्दी अनुवाद एवं पद्यमय भूमिका के साथ प्रकाशित किया गया है। इसके 131वें अध्याय की पुष्पिका इस प्रकार है– **इति श्रीमदगस्त्य-संहितायां भविष्यखण्डे ऽगस्त्यसुतीक्ष्णसम्वादे श्रीरामानन्दाचार्यावतारे पक्रमे श्रीरामनारदसम्प्रश्नोत्तरं नामैकत्रिंशदुत्तर**

शततमोऽध्यायः। सम्पूर्ण कथा भविष्यकालिक कथन के रूप में पौराणिक शैली में लिखी गयी है। प्रथम 131 वें अध्याय में रामानन्दाचार्य के अवतार का उपक्रम वर्णित है। दूसरे 132वें अध्याय में सभी द्वादश शिष्यों के साथ आचार्यजी के अवतार-ग्रहण का वर्णन है, जिसमें जन्मतिथि देने के क्रम में संवत्, मास, पक्ष, तिथि एवं वार इन पाँच अंगों में से एक अंग प्रत्येक सन्त की जन्मतिथि में अनुल्लिखित है। तीसरे 133वें अध्याय में रामानन्दाचार्य की जयन्ती के अवसर पर कृत्यों का वर्णन है, जिसमें कहा गया है कि षट्कोण पर मध्य में आचार्य रामानन्द को स्थापित कर उसके बाहर वृत्त बनाकर पुनः द्वादश दल लिखकर सभी द्वादश शिष्यों को स्थापित कर षोडशोपचार से उस यन्त्र की पूजा करें। चौथे 134वें अध्याय में रामानन्दाचार्य के दिग्विजय का वर्णन है तथा पाँचवें 135वें अध्याय में आचार्यजी के अष्टोत्तरशतनाम से पूजन का वर्णन है। ये सभी पाँच अध्याय महामुनि अगस्त्य एवं सुतीक्ष्ण के संवाद के रूप में वर्णित है। सम्पूर्ण अंश में रामानन्दाचार्य को देवस्वरूप माना गया है, जो अपने आपमें रामानन्दाचार्यजी के जन्म एवं इस अंश के रचनाकाल के मध्य सुदीर्घ कालान्तर का द्योतक है। इस सम्पूर्ण अंश को इतिहास कहा गया है, जबकि यहाँ इतिहास का कोई तत्त्व नहीं है। सबसे बड़ी ऐतिहासिक भ्रान्ति है कि जब 'अगस्त्य-संहिता' हेमाद्रि के समय में विद्यमान थी, तब इसमें हेमाद्रि के परवर्ती रामानन्द और उनके शिष्यों का उल्लेख होने के कारण यह स्पष्ट है कि इस खंण्ड की रचना परवर्ती काल में हुई है और चूँकि 'अगस्त्य-संहिता' बहुचर्चित थी, प्रामाणिक मानी जाती थी, रामोपासना की परम्परा में आदरणीय थी, यहाँ तक कि वेद की तरह इस संहिता का भी स्वतःप्रामाण्य परम्परा में मान्य था, अतः इस छद्म इतिहास को अगस्त्य-संहिता के साथ जोड़ने का प्रयास किया गया, ताकि उस प्रक्षेप पर कोई ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचन करने का साहस न कर सके। अब जबकि मूल 'अगस्त्य-संहिता' पाठकों के हाथों में है, तब ऐसे छद्म-प्रक्षेपों का प्रकरण समाप्त हो जाना चाहिए।

'अगस्त्य-संहिता' में परवर्ती प्रक्षेप

ऊपर हमने ऐसी रचनाओं का उल्लेख किया है, जिनका सम्बन्ध अगस्त्य-संहिता के प्रतिपाद्य विषय से नहीं रहा। इनके साथ ही ऐसी कुछ रचनाएँ भी परवर्ती काल में लिखी गयी, जो विषयवस्तु की दृष्टि से कर्मकाण्ड अथवा उपासना से सम्बद्ध होने के आधार पर 'अगस्त्य-संहिता' से सम्बद्ध थी। इन रचनाओं का विवेचन 'अगस्त्य-संहिता' के वर्तमान संपादन के स्वरूप से है, अतः इन रचनाओं की स्थिति का विवेचन यहाँ आवश्यक हो जाता है।

हेन्स बेकर ने अपनी पुस्तक 'अयोध्या' में अगस्त्य-संहिता से अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है तथा इस आधार पर रामोपासना की प्रक्रिया का विशद विवेचन किया है, इस क्रम में उन्होंने 33वें अध्याय से भी अनेक श्लोकों को उद्धृत किया है। हेन्स बेकर ने चूँकि रामनारायण दास द्वारा सम्पादित एवं 1998 ई. में लखनऊ से प्रकाशित 'अगस्त्य-सुतीक्ष्ण संवाद' ग्रन्थ का उपयोग किया है, अतः हेन्स बेकर द्वारा उद्धृत 33वाँ अध्याय रामनारायण दास द्वारा सम्पादित 'अगस्त्य-संहिता' का मूल भाग माना जा सकता है, किन्तु इस 33वें अध्याय का विवेचन इस दृष्टि से आवश्यक है कि यह ग्रन्थ का मूल अंश है या परवर्ती प्रक्षेप है।

इस विषय पर विचार करने से पूर्व इस 33वें अध्याय के कुछ श्लोक यहाँ उद्धृत किये जाते हैं, जिन्हें हेन्स-बेकर ने संकलित किया है—

ॐ नमो भगवते श्रीरामाय परमात्मने।
सर्वभूतान्तरस्थाय ससीताय नमो नमः।।42।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय व्यापिने।
सर्ववेदान्तवेद्याय ससीताय नमो नमः।।43।।
ॐ नमो भगवते श्री विष्णवे परमात्मने।
परात्पराय रामाय ससीताय नमो नमः।।44।।
ॐ नमो भगवते श्रीरघुनाथाय शार्ङ्गिणे।
चिन्मयानन्दरूपाय ससीताय नमो नमः।।45।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामकृष्णाय चक्रिणे।
विशुद्धज्ञानदेहाय ससीताय नमो नमः।।46।।
ॐ नमो भगवते श्रीवासुदेवाय विष्णवे।
पूर्णानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः।।47।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामभद्राय वेधसे।
सर्वलोकशरण्याय ससीताय नमो नमः।।48।।
ॐ नमो भगवते श्रीरामायामिततेजसे।
ब्रह्मानन्दैकरूपाय ससीताय नमो नमः।।49।।
विशुद्धज्ञानदेहाय रघुनाथाय विष्णवे।
अन्तःकरणसंशुद्धिं देहि मे रघुवल्लभ।।50।।

नमो नारायणानन्त श्रीराम करुणानिधे।
मामुद्धर जगन्नाथ घोरसंसारसागरात्।।51।।
रामचन्द्र महीपाल शरणत्राणतत्पर।
त्राहि मां सर्वलोकेश तापत्रयमहार्णवात्।।52।।
श्रीकृष्ण श्रीधर श्रीश श्रीराम श्रीनिधे हरे।
श्रीनाथ श्रीमहाविष्णो श्रीनृसिंह कृपानिधे।।53।।
गर्भजन्मजराव्याधिघरसंसारसागरात् ।
मामुद्धर जगन्नाथ कृष्ण विष्णो जनार्दन।।54।।

इन श्लोकों की शैली, भाषा तथा कथ्य के आधार पर स्पष्ट है कि ये परवर्ती पाठ हैं, जो 'अगस्त्य-संहिता' के मूल अंश के आधार पर पौरोहित्य कर्म में सुविधा के लिए रचे गये प्रक्षेप हैं। इसी 33वें अध्याय से हेन्स बेकर ने अनेक ऐसे मन्त्रों का भी उल्लेख किया है, जो 18वें अध्याय में भी हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण 33वाँ अध्याय 'अगस्त्य-संहिता' का व्यावहारिक अध्याय है, जो कर्मकाण्ड कराने में सुविधा की दृष्टि से बाद में किसी पुरोहित के द्वारा रचे गचे हैं।

इसी प्रकार 'अगस्त्य-संहिता' से ली गयी 'रामनवमी व्रत कथा' 'अगस्त्य-संहिता' के दाय के रूप में उपलब्ध है। रामनवमी व्रत कथा की दो पाण्डुलिपियाँ मेरे अधिकार में हैं।दोनों उत्तर मिथिला की प्राचीन लिपि मिथिलाक्षर अथवा तिरहुता में हैं। दोनों में की पुष्पिका में **इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीकथा समाप्ता** का उल्लेख है। दोनों में पूजा पद्धति में पर्याप्त भिन्नता है, किन्तु कथा पाठान्तर होने के बाद भी एक है। इन दोनों पाण्डुलिपियों के आधार पर रामनवमी व्रत कथा का सम्पादन कर यहाँ परिशिष्ट 3 के रूप में प्रकाशित है। इन दोनों पाण्डुलिपियों का विवरण क्रमशः इस प्रकार है–

पाण्डुलिपि 'अ'

नाम – रामनवमीव्रतकथा
प्राप्ति-स्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुबनी
स्वत्व – पं. भवनाथ झा
आधार – हस्तनिर्मित वसहा कागज।
आकार – 28 से. मी. लम्वाई एवं 9.5 से. मी. चौड़ाई।
लिखित स्थान – 23 से. मी. लम्वाई एवं 5.5 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 7

पृष्ठ सं. - 12

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 8

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 44-45

लिपि – मिथिलाक्षर या तिरहुता

लिपिकार – वच्चू शर्मा

लिपिकाल – सन् 1262 साल (अर्थात् 1854-55 ई.)।

आरम्भ – अथ रामनवमीपूजाविधिः।सुवर्णप्रतिमां कारयित्वा मृण्मयं वा प्रातः कृतनित्यक्रियः---।

अन्त– इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीव्रतकथा समाप्ता। ॐ यदक्षरेत्यादि। ॐ नममस्ससीतरामलक्ष्मणाभ्याम्। सन् 1262 साल चैत्रकृष्णषष्ठ्यां शुक्रे। लिखितमिदं श्रीरामनवमीकथापूजापुस्तकम्। श्री बच्चूशर्म्मणे द्विजः।(?)

पाण्डुलिपि 'आ'

नाम रामनवमीव्रतकथा

प्राप्ति-स्थान – हटाढ़ रुपौली, झंझारपुर, मधुवनी

स्वत्व – पं. भवनाथ झा

आधार – ब्रिटिशकालीन कागज।

आकार – 22 से. मी. लम्वाई एवं 9 से. मी. चौड़ाई।

लिखित स्थान – 16.5 से. मी. लम्वाई एवं 6 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 16

पृष्ठ सं. - 30

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 7

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 26-29

लिपि – मिथिलाक्षर या तिरहुता

लिपिकार – अज्ञात

लिपिकाल – सन् 1287 साल (अर्थात् 1879-80 ई.)।

आरम्भ – राम 1 प्र : सु. सीता 1 प्रः सु.।

अन्त– इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीव्रतकथा समाप्ता। ॐ यदक्षरेत्यादि। ॐ नममस्ससीतरामलक्ष्मणाभ्याम्। सन् 1287 साल चैत्रशुक्लद्वितीयायां लिखित्।(?)

इसी प्रकार सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के सरस्वती भवन पुस्तकालय में अगस्त्य-संहिता के नाम से एक अपूर्ण पाण्डुलिपि सुरक्षित है, जिसमें एकतालीसवाँ अध्याय पूर्ण है।

इस पाण्डुलिपि का विवरण इस प्रकार है–।

नाम अगस्त्य-संहिता

प्राप्ति-स्थान – सरस्वती भवन पुस्तकालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी।

प्रवेश संख्या – 104571

विषय – पुराणेतिहास

आधार – कागज।

आकार – 5.5 इंच लम्बाई एवं 4.5 से. मी. चौड़ाई।

पत्र सं. – 11

पत्रांक – 31-41

पृष्ठ सं. - 22

प्रति पृष्ठ पंक्ति सं.- 8

प्रति पंक्ति अक्षर संख्या – 21-23

लिपि – देवनागरी

लिपिकार – अज्ञात

लिपिकाल – अज्ञात

आरम्भ – १श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः।श्रुतिरुवाच।

अन्त– श्रीअगस्त्यसंहितायामेकचत्वारिंशोध्यायः।

यद्यपि इस पाण्डुलिपि पत्रांक 31 से आरम्भ है, अतः प्रथम दृष्ट्या खण्डित प्रतीत होती है और अपेक्षा की जाती है कि इसके पूर्व और परवर्ती पृष्ठ कभी थे किन्तु वे नष्ट हो गये हैं। किन्तु गहन विवेचन करने पर यह पाण्डुलिपि स्वतन्त्र एवं पूर्ण प्रतीत होती है। इस अध्याय के आरम्भ में **१श्रीरामचन्द्राभ्यां नमः** है तथा यह पंक्ति पत्र के ऊपरी भाग से आरम्भ है, अर्थात् इसके पूर्व 40वें अध्याय का अन्त नहीं हुआ है। संख्या 1 भी इस बात का संकेत करती है कि लिपिकार ने पाण्डुलिपि का आरम्भ यहीं से स्वतन्त्र रूप में किया है, न कि विशाल ग्रन्थ के साथ अविच्छिन्न रूप में। पाण्डुलिपि का अन्त पृष्ठ के आधे भाग पर हुआ है, जिसके बाद पृष्ठ रिक्त है। यदि इसके बाद भी 42 अध्याय होता तो पाण्डुलिपि लेखन की शैली के अनुरूप उसी स्थान से लेखन आरम्भ होता अथवा इसी 41वें

अध्याय से यदि अगस्त्य-संहिता का अन्त रहता तो अन्त में ग्रन्थ समाप्ति की पुष्पिका रहती, नमस्क्रियात्मक या आशीर्वादात्मक मंगलाचरण होता। साथ ही पत्रांक दुबारा लिखा गया है। पत्र संख्या 35 की वर्द्धित छाया यहाँ प्रमाण के लिए प्रस्तुत है–

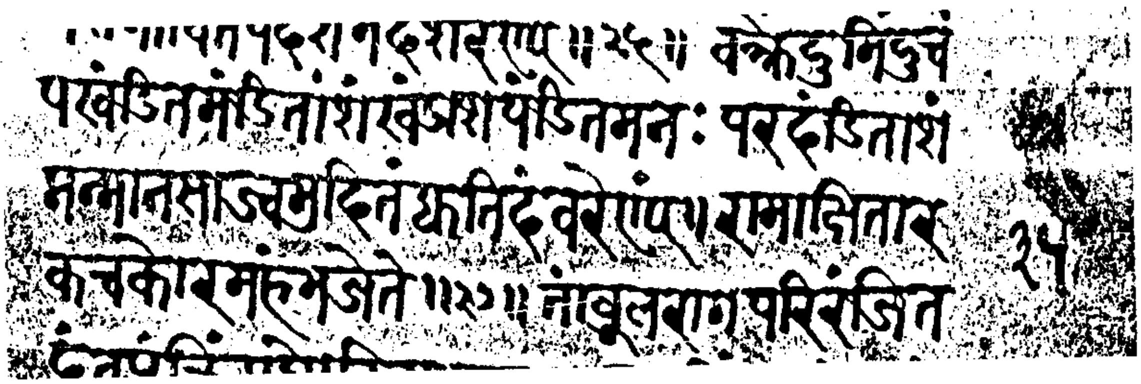
।।२८।। वक्त्रेन्दुमिन्दुपं
पखंडितमंडितांशं खंअशपंडितमनः परदंडितांशं
मत्मानसाज्यमदितं क्षनिदं वरेण्यं रमाश्रितार
कचकोरमहं भजेते ।।२९।। तांबूलराग परिरंजित ३५

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि उक्त पाण्डुलिपि पूर्ण एवं स्वतन्त्र है तथा पाण्डुलिपियों के बंडल में इसके साथ इसी लिपिकार की दूसरी पाण्डुलिपि रहने के कारण बाद में किसी ने भ्रमवशात् लगातार पत्रांक डाल दिया है।

इस अध्याय में सीताजी की स्तुति है, जो काव्यात्मकता की दृष्टि से इतनी उच्च कोटि की रचना है कि इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत न रखकर विशुद्ध भक्ति-काव्य की कोटि में रखना अपेक्षित होगा।

आचार्य बलदेव उपाध्याय ने 'वैष्णव सम्प्रदायों का साहित्य एवं सिद्धान्त' ग्रन्थ में इस अंश का विवेचन 'जानकी-स्तवराज' के नाम से किया है तथा इसे रामोपासना की परम्परा में रसिक-सम्प्रदाय का स्वतन्त्र एवं मान्य ग्रन्थ माना है। आचार्यजी ने उक्त ग्रन्थ में 'जानकी-स्तवराज' के जिस 49वें श्लोक को उद्धृत किया है, वह वर्तमान पाण्डुलिपि में 54वें श्लोक के रूप में उपलब्ध है।

यद्यपि यहाँ भी इसे आगमशास्त्र के अन्तर्गत सम्मिलित करने का अथक प्रयास किया गया है और सम्पूर्ण स्तुति को श्रुति, संकर्षण के संवाद के रूप में योजित कर शिव के मुख से यह स्तुति करायी गयी है। इस स्तुति में सीता के पादादिकेशान्तवर्णन है। पादादिकेशान्तवर्ण के द्वारा स्तुति की परम्परा भक्ति-काव्यों में प्रसिद्ध रही है। आदि शंकराचार्य द्वारा विरचित विष्णुपादादिकेशान्त वर्णन स्तोत्र है। अतः इसे परवर्ती कवि की रचना मानना उचित होगा।

'अगस्त्य-संहिता का प्रतिपाद्य विषय

'अगस्त्य-संहिता' आगम शास्त्र की परम्परा में रामोपासना का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। इसमें रामोपासना के कर्मकाण्ड का विस्तार से प्रतिपादन है, जिसे गृहस्थों के लिए भोग एवं मोक्ष दोनों का प्रदाता कहा गया है। कर्मकाण्ड के अन्तर्गत षोडशोपचार, पंचोपचार, एकादशोपचार पूजा विधि का वर्णन किया गया है। इस कर्मकाण्ड के अन्तर्गत नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य, तीनों में हवन-कर्म को अनिवार्य माना गया है। यह 'अगस्त्य-संहिता' की परम्परा की विशेषता है। इस ग्रन्थ में गार्हस्थ्य-धर्म को भी महिमा-मण्डित किया गया है तथा सांसारिक भोग को मोक्ष का बाधक न मानकर मोक्ष का साधक माना गया है, बशर्ते कि भोग, भोग्य और भोक्ता तीनों के रूप में श्रीराम को स्थापित कर भोग किया जाये और देवता के प्रति पूर्ण समर्पण की भावना विकसित रहे। इस सम्पूर्ण समर्पण तथा अनन्या भक्ति की महिमा 'अगस्त्य-संहिता' में सर्वत्र गायी गयी है। इस संहिता में केवल 'भक्त्या' शब्द का प्रयोग 33 स्थलों पर मिलता है, जो कर्मकाण्ड में भी भक्ति की सहभागिता को व्यक्त करता है।

इस कर्मकाण्ड को जहाँ गृहस्थों के लिए अनिवार्य बतलाया गया है, वहाँ यतियों, संन्यासियों के लिए इसे हेय मानते हुए कहा गया है कि यतिगण किसी भी साधन से पूजा न करें, क्योंकि ये साधन हिंसा के बिना सम्भव नहीं हैं और यतियों के लिए अहिंसा परम धर्म है। यतियों के लिए योग-पद्धति का विवरण दिया गया है, जिसके माध्यम से अष्टाङ्ग योग का पालन करते हुए योगी ब्रह्मस्वरूप श्रीराम में विलीन होकर मुक्त जाते हैं। योग-मार्ग का पालन गृहस्थों के लिए असम्भव मानकर गृहस्थों को इस पथ पर नहीं चलने का सुझाव देते हुए कहा गया है कि यति धर्म में यदि आसक्ति पाप का कारण होता है, तो गार्हस्थ्य-धर्म में अनासक्ति भी पाप है। यदि गृहस्थ हैं, तो सांसारिक विषयों से अनासक्ति नहीं दिखाएँ और यदि वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण यति-धर्म में प्रवृत्त हैं, तो आसक्ति न रखें। दोनों ही स्थितियाँ पाप के कारण हैं।

गृहस्थों के लिए केवल ज्ञान को भी श्रेयस्कर नहीं बतलाया गया है। केवल ज्ञान हो जाने से, जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान हो जाने से गृहस्थ को न तो मुक्ति मिल सकती है न ही इस संसार में सुख मिल सकता है। अतः गृहस्थ को निष्काम भाव से दान, जप, हवन, पूजन, भजन कीर्तन आदि करते हुए जीव और ब्रह्म की एकता का ज्ञान करना चाहिए।

अगस्त्य-संहिता उपासना का शास्त्रीय-ग्रन्थ है, अतः इसमें कर्म के भी निष्काम और सकाम कर्म के भेदों का सांगोपांग विवेचन किया गया है। यहाँ तक कि मारण, मोहन, वशीकरण, उच्चाटन, भ्रामण आदि लौकिक सिद्धियों के लिए भी श्रीराम के मन्त्र का प्रयोग करने की विधि विस्तार से बतलायी गयी है। किन्तु उस स्थल के अन्त में स्पष्ट हिदायत दे दी गयी है कि इन कर्मों के करने से मोक्ष दूर होता चला जायेगा और वे साधक भूत, प्रेत और पिशाच की योनियों में चले जायेंगे। पुनर्जन्म लेकर बार-बार कीट आदि रूप में सांसारिक कष्ट भोगेंगे। अतः साधक को चाहिए कि वे ऐसे सकाम कर्म से विरत रहें।

अपनी उन्नति के लिए सकाम कर्म को भी बुरा नहीं माना गया है। सांसारिक सुख प्राप्त करने के लिए सकाम कर्म करने में बुराई नहीं है, किन्तु इसमें भी दोष दिखाया गया है कि इससे मोक्ष मिलने में बाधा मिलेगी, क्योंकि एक कार्य के दो फल की प्राप्ति नहीं हो सकती है। अन्ततः निष्काम कर्म की श्रेष्ठता हर तरह से यहँ प्रतिपादित है, जिससे ईश्वर की कृपा पाकर साधक भोग और मोक्ष दोनों का अधिकारी हो जाता है।

यहाँ प्रत्येक अध्याय में वर्णित विषय-वस्तु संक्षिप्त रूप से प्रदर्शित किया जा रहा है—

प्रथम अध्याय

अगस्त्य-संहिता का प्रारम्भ महामुनि अगस्त्य और सुतीक्ष्ण के वार्तालाप की भूमिका से हुआ है। दण्डकारण्य में नर्मदा के तट पर सुतीक्ष्ण का आश्रम था। एक दिन वहाँ अगस्त्य का आगमन हुआ, तो अतिथि सत्कार के बाद सुतीक्ष्ण ने पूछा कि मैंने अपने जीवन में कई यज्ञ किए, प्रभूत दक्षिणा दी, दान दिया, फिर तपस्या भी की, किन्तु अब भी मैं काम, क्रोध आदि से पीड़ित हूँ। अब मुझे ऐसा उपाय बतलाएँ, जिससे मैं इस संसार के सागर को पार कर सकूँ।

इस प्रश्न के उत्तर के रूप में महामुनि अगस्त्य ने शिव और पार्वती की एक कथा सुनायी, जिसमें पार्वती द्वारा इसी प्रश्न पर भगवान् शिव ने संसार के सागर को पार करने का उपाय बतलाया था। यहाँ शिव सर्वप्रथम संसार की विभीषिका का वर्णन करते हैं कि माया से ग्रस्त मनुष्य कैसे बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेते हैं और फिर अपकर्म कर पुनः रौरव नरक में जा गिरते हैं। अथवा, कुछ लोग वशीकरण, आकर्षण आदि तान्त्रिक क्रियाओं को करते हुए वर्णाश्रम धर्म का विचार न कर मांस, रक्त, मदिरा का अर्पण कर कर्मकाण्ड सम्पन्न करते

हैं, वे भूत, प्रेत, पिशाच या ब्रह्मराक्षस की योनि में जन्म लेते हैं। भगवान् शिव की उक्ति पर सहमत होती हुई देवी पार्वती जब कहतीं हैं कि इस धर्म से किसी का भी उपकार नहीं होनेवाला है, तब शिव पार्वती के साथ परिहास करते हुए पूर्वपक्ष के रूप में कहते हैं कि मैं तीनों लोकों का अन्तक हूँ, इसलिए हिंसा मुझे प्रिय है, मुझे जो मांस अर्पित करते हैं वे मेरे प्रिय हैं।' बहुत परिहास हो जाने पर अन्त में भगवान् सिद्धान्त प्रकट करते हैं कि सच तो यह है कि हिंसकों के लिए इस संसार को पार करना असम्भव है।'

द्वितीय अध्याय

पार्वती द्वारा मुक्ति का उपाय पूछने पर भगवान् परमेश्वर के वास्तविक स्वरूप की व्याख्या करते हैं और आश्रम के अनुसार उपासना पर जोर देते हुए उस परमेश्वर का ध्यान करने का उपदेश करते हैं। यज्ञ, वेदाध्ययन, अतिथि पूजन, गुरुशिष्य परम्परा का पालन, दान आदि गृहस्थों और ब्रह्मचारियों के लिए करणीय है।

तृतीय अध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में पार्वती सबके लिए परमेश्वर की उपासना के मार्ग की जिज्ञासा करतीं है। इसके उत्तर में भगवान् शंकर परमेश्वर के द्वारा अवतार लेने का वर्णन कर रामावतार की विस्तृत चर्चा करते हैं। भगवान् श्रीराम स्वयं नारायण के अवतार हैं, श्रीसीता लक्ष्मीस्वरूपा हैं और शेषावतार लक्ष्मण हैं, शंख और चक्र के अवतार भरत और शत्रुघ्न हैं तथा वानर सभी देव के अवतार हैं। ऐसे श्रीराम की आराधना के अनेक मार्ग हैं। कुछ लोग पंचाग्नि व्रत, चान्द्रायण उपवास आदि से आराधना करते हैं तो कोई 'राम', 'राम' जप कर अमरत्व प्राप्त करते हैं। कुछ लोग गार्हस्थ धर्म का पालन करते हुए भगवान् की सेवा कर उन्हें प्रसन्न करते हैं। इस अध्याय में उपासना की अनेक विधियाँ वर्णित हैं।

चतुर्थ अध्याय

पार्वती द्वारा जिज्ञासा करने पर भगवान् शिव हिरण्यगर्भ-सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ एक कथा है कि एकबार जब ब्रह्मा ने तीन सौ करोड़ वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या की, तब स्वयं भगवान् विष्णु प्रकट हुए। ब्रह्माजी भाव-विह्वल होकर उनकी स्तुति की। प्रसन्न होकर भगवान् ने ब्रह्माजी से वर

माँगने के लिए कहा तो ब्रह्माजी ने दुर्भाग्य और दरिद्रता से ग्रस्त प्रजा के उद्धार का उपाय पूछा। साथ ही ब्रह्मा ने पूछा कि मनुष्यों और भक्तों के लिए कौन उपाय है, जिससे उन्हें शरीर के अन्त होने पर शान्ति मिले। इसपर भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा को षडक्षर मन्त्र 'ॐ रामाय नमः' का सांगोपांग उपदेश किया।

पंचम अध्याय

इस षडक्षर मन्त्र के प्रथम उपदेशक ब्रह्मा हुए। सुतीक्ष्ण के प्रश्न पर अगस्त्य ने आगे की कथा बतलायी कि ब्रह्मा द्वारा उपदिष्ट इस मन्त्र से जब पार्वती भी उपासना करने लगीं, तब उनके मन में ज्ञान का उदय हुआ और पुनर्जन्म के विना भगवान् शंकर को संसार के विनाश की आशंका होने लगी। तब उन्होंने पार्वती को गार्हस्थ धर्म का पालन करते हुए पूजा सामग्रियों से प्रतिदिन श्रीराम की आराधना का उपदेश किया और कहा कि गृहस्थ केवल ज्ञान से इस संसार में और परलोक में कल्याण नहीं प्राप्त कर सकता है उसे दान, होम आदि भी करना चाहिए। आसक्त परिव्राजक और विरक्त गृहस्थ दोनों कुम्भीपाक नरक प्राप्त करते हैं, उन्हें मुक्ति नहीं मिलती है। अतः जो गृहस्थ हैं वे पुष्प, चन्दन, अक्षत, नैवेद्य आदि से सगुण राम की उपासना करें। किन्तु इस विधि से वानप्रस्थी और यति को उपासना नहीं करनी चाहिए, क्योंकि पूजा के साधन हिंसा का त्याग कर प्राप्त नहीं किया जा सकता है। यदि वानप्रस्थी और यती गृहस्थों की तरह इन साधनों से पूजा करते हैं, तो वे 'आरूढपतित' कहलायेंगे।

षष्ठ अध्याय

इस अध्याय से अगस्त्य और सुतीक्ष्ण की वार्ता के रूप में तुलसी-माहात्म्य का विस्तृत वर्णन है, जिसमें तुलसी वृक्ष का दल, मंजरी, काष्ठ आदि प्रत्येक अंग का आध्यात्मिक महत्त्व बतलाया गया है तथा तुलसी-माला धारण करने का विधान किया गया है। तुलसी वृक्ष लगाने से भी भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति वर्णित है।

सप्तम अध्याय

यहाँ अगस्त्य मुनि एक कथा कहते है कि एकबार भगवान् शंकर देवी पार्वती के साथ वाराणसी में निवास करने लगे तो सभी देवता वहीं आकर जम गये। अब भगवान् शिव को चिन्ता हुई कि ये देवगण तो मेरी उपासना करते हैं, इन्हें मैं मुक्ति कैसे प्रदान करूँ। इसी समय ब्रह्माजी वहाँ पधारे तो भगवान् ने यही जिज्ञासा उनसे की। तब ब्रह्मा ने उन्हें भी षडक्षर मन्त्रराज का उपदेश

दिया। भगवान् शिव सौ मन्वन्तर तक इस मन्त्र का जप करते रहे। तब श्रीराम प्रसन्न होकर प्रकट हुए। भगवान् शिव ने अपनी चिन्ता उनके सामने रखी तो श्रीराम की कृपा से वहाँ बसनेवाले सभी लोग मुक्त होकर श्रीराम स्वरूप विष्णु में विलीन हो गये। पुनः भक्तवत्सल भगवान् शिव ने कहा कि इस संसार में कहीं भी किसी प्रकार जो मृत्यु को प्राप्त करते हैं, उन्हें कैसे मुक्ति मिलेगी? इसपर भगवान् श्रीराम ने इस षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य कहा कि ब्रह्मा से या आपसे (शिव से) इस मन्त्र को जो ग्रहण कर जप करेंगे या मुमूर्षु के दक्षिण कर्ण में यदि मन्त्र का उपदेश करेंगे तो, मुक्ति मिल जाएगी। उसी दिन से वारणसी मुक्तिक्षेत्र कहलाने लगी।

अष्टम अध्याय

सुतीक्ष्ण ने पूछा कि इस मन्त्रराज का सर्वप्रथम उपदेश किसने किया तथा कैसे यह पृथ्वी पर प्रतिष्ठित हुआ। अगस्त्य ने कहा कि ब्रह्मा ने सर्वप्रथम अपने पुत्र वसिष्ठ को यह मन्त्र दिया। वसिष्ठ ने वेदव्यास को तथा वेदव्यास ने अपने शिष्य शौनक को सबसे पहले देकर अन्य शिष्यों को भी दिया। उस शौनक से मैंने (अगस्त्य ने) यह मन्त्र लिया और मैं इसे सांगोपांग आपको सुना रहा हूँ।

इसी अध्याय में गुरु का लक्षण बतलाते हुए कहा गया है कि देवों के उपासक, शान्त चित्तवाले, सांसारिक विषयों से विरक्त, अध्यात्म को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेवाले, वेद, शास्त्र आदि के ज्ञानी, उद्धार और संहार दोनों करने में समर्थ, ब्राह्मणश्रेष्ठ, तन्त्रज्ञ, यन्त्र एवं मन्त्र के ज्ञाता, धर्म और रहस्य के ज्ञाता, पुरश्चरण करनेवाले, सिद्धपुरुष, जिन्हें मन्त्र सिद्ध हों तथा जो प्रयोगों का ज्ञान रखते हों, तपस्वी और सत्यवादी गृहस्थ गुरु कहलाते हैं।

शिष्य का भी लक्षण विस्तार मे यहाँ वर्णित है कि चाण्डाल पर्यन्त सभी व्यक्ति यहाँ अधिकारी हैं। धर्म में आस्था रखनेवाले, गुरु के भक्त, श्रद्धा के साथ सीखने की इच्छा रखनेवाले, स्त्रियों के प्रति काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दु:खों को देखते हुए वैराग्य रखनेवाले, सभी प्रकार से संसार को पार करने की इच्छा रखनेवाले, ब्राह्मण, धर्म और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले, निष्काम शिष्य होते हैं। अथवा मन, वचन, कर्म, एवं धर्म से गुरु की नित्य सेवा करने वाले, क्षत्रिय, एवं वैश्य शिष्य होते हैं। अपने वर्ण और आश्रम के लिए कथित धर्म के अनुसार कर्म करनेवाले, सदा पवित्र रहनेवाले, पवित्र नियमों का पालन करनेवाले द्विजों की सेवा करनेवाले, धार्मिक, शूद्र शिष्य होते हैं। पतिव्रता स्त्रियाँ चाहे वे प्रतिलोम विवाह से या अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो, वे भी शिष्या हो सकतीं हैं।

अन्त में इस षडक्षर में ॐ, श्रीं, ऐं, क्लीं आदि अन्य बीज लगाकर विभिन्न प्रकार के सकाम प्रयोगों का विवेचन किया गया है। मन्त्र के प्रकार तथा कलशस्थापन-पूर्वक दीक्षा की विधि का संक्षिप्त संकेत है।

नवम अध्याय

इस अध्याय में श्रीराम के यन्त्र का विस्तृत विवेचन है तथा मालामन्त्रोद्धार वर्णित है। यहाँ मालामन्त्र इस प्रकार है- **ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।** इसे चिन्तामणि-मंत्र भी कहा गया है। इस मालामन्त्र तथा 'श्रीं सीतायै नमः' इस सीता मन्त्र से विलसित यन्त्र पर श्रीराम की पूजा कर के उसे धारण करने से दारिद्र्य-दुःखनाश, सन्तान-प्राप्ति, ऐश्वर्य, विद्या, रोगशान्ति आदि अनेक सांसारिक उद्देश्यों की प्राप्ति कही गयी है। दूसरे द्वारा किए गये अभिचार को रोकने में इसे 'वज्रपञ्जर' की संज्ञा दी गयी है।

दशम अध्याय

इस अध्याय में श्रीराम की सांगोपांग-अर्चना की विधि का वर्णन है। इसके अनुसार श्रीराम के द्वार, पीठ पर स्थित अंग तथा परिवार देवताओं में गणेश, सूर्य, शिव, क्षेत्रपाल, धात्री, ब्रह्मा, गंगा, यमुना, कुलदेवता, शंख. पद्म, निधि, वास्तोष्पति, लक्ष्मी, गुरु सरस्वती, आधारशक्ति, कूर्म, नागाधिपति, पृथ्वी, क्षीरसागर, धर्म, ज्ञान, वैराग्य, विमला, उत्कार्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या, ईशाना, वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरूद्ध, हनुमान्, सुग्रीव, भरत विशीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न, जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, सुमन्त, वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गोतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि, नारद, नल, नील, गवय गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि आदि देवों की पूजा करनी चाहिए, क्योंकि इनके प्रसन्न होने पर ही श्रीराम और श्रीसीता का प्रसाद प्राप्त हो सकेगा।

इस अध्याय में एक नारदीय स्तोत्र है, जिसमें इन सभी देवों के प्रति नमस्कार अर्पित किया गया है। इस स्तोत्र को प्रातःकाल पाठ करने से भोग और मोक्ष दोनों की सिद्धि बतलायी गयी है। यहाँ इन देवों की पूजा पंचोपचार, एकादशोपचार या षोडशोपचार से करने का संकेत किया गया है।

एकादश अध्याय

इस अध्याय में सकाम पूजन का प्रायोगिक विवरण है कि यजमान स्नानादि से शरीर की बाह्यशुद्धि कर मातृका-न्यास से अन्तःशुद्धि करें। तब पूजा की सामग्रियों को स्वच्छ कर शंख आदि की पूजा करें। तब वैष्णवन्यास, केशवादिन्यास कर तत्त्वन्यास एवं मूर्तिपंजर-न्यास करें। इस प्रकार षडंग न्यास सम्पन्न कर बाह्य पूजा की तैयारी करें। यहाँ वेदी, अष्टदलकमल, तोरण आदि की निर्माण-विधि वर्णित है। यहाँ कहा गया है कि पुण्यमयी स्त्रियों और गृहस्थों के घिरे हुए स्थान में गायन, वादन और नृत्य के साथ यह आराधना करें। पूजा में प्रयुक्त सामग्रियों का स्थान निर्धारण तथा उनकी आकृति का विवेचन यहाँ किया गया है। इसी क्रम में भूतशुद्धि, हस्तशोधन, पादशोधन आदि की दूसरी परिभाषा भी दी गयी है। जैसे पूजा के लिए पत्र-पुत्र को भक्तिपूर्वक उठाना कर-शोधन है। श्रीराम की कथा का श्रवण और उनके उत्सवों का दर्शन कर्ण एवं नेत्र की शुद्धि है।

द्वादशाध्याय

इस अध्याय में मातृका-न्यास का क्रम बतलाया गया है। 'अ' से 'ह' तक के 52 वर्ण को अनुस्वार के साथ शरीर के प्रत्येक अंग में नियोजित करना मातृकान्यास है। इसी में केशवकीर्त्यादि न्यास भी वर्णित है। साधक अपने शरीर में बीजाक्षरों और देवताओं को व्यस्त कर देवत्व प्राप्त कर लेता है तथा उसका यह पांचभौतिक शरीर पवित्र हो जाता है। इस सम्पूर्ण अध्याय में शरीर के विभिन्न न्यासों का निरूपण किया गया है।

त्रयोदशाध्याय

इस अध्याय में पूजा के पात्रों को यथास्थान रखकर शंखपात्र में सामान्यार्घ्य-स्थापन की विधि प्रारम्भ में बतलायी गयी है कि शंख को आधार पर रखकर सूर्य, चन्द्र और अग्नि के बीज मन्त्र से तीनों मण्डलों की पूजा कर के शंख जल में अंकुश मुद्रा से तीर्थों का आवाहन कर, शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा, गरुड़मुद्रा, सुरभिमुद्रा आदि का प्रदर्शन कर देव का अभिषेक करें और उसी जल से यजमान अपने शरीर एवं अन्य सामग्रियों को पवित्र करें। आगे पाद्य, अर्घ्य, आचमन आदि की स्थापना, स्नपन, धूप, दीप नैवेद्य आदि का विस्तृत वर्णन है।

चतुर्दशाध्याय

इस अध्याय में हवन-विधि का विस्तृत वर्णन किया गया है, जिसमें विभिन्न प्रकार एवं परिमाण के कुण्डों का निर्माण, मेखला की संख्या, लम्बाई,

चौड़ाई एवं प्रकार का वर्णन है। जप की संख्या के आधार पर कुण्ड का परिमाण निर्धारित किया गया है। हवन के अन्य उपकरण जैसे स्रुव एवं स्रुक् के लक्षण, परिमाण एवं संक्षेप हवन में उसके अनुकल्प के रूप में पीपल का पत्ता बतलाया गया है। इसके बाद कुण्ड के वायुकोण में चावल के पीठा से अष्टदल-कमल का लेखन कर उसके विभिन्न दलों को विभिन्न वर्ण से बनाकर उसपर श्रीराम की अर्चना का विधान किया गया है। पुनः अग्निस्थापन की विधि अग्न्यानयन, प्रोक्षण उपसारण, परिस्तरण आदि वर्णित है, किन्तु अपनी शाखा के गृह्यसूत्र में उल्लिखित विधियों का आलम्बन करने की अनुशंसा सर्वत्र की गयी है। अग्नि के संस्कार गर्भाधान से विवाह पर्यन्त कर के उस अग्नि में वैष्णव-चरु बनाने का वर्णन है। उस चरु से अंग सहित सीताराम को हवि समर्पित कर के विनायकादि अंग देवताओं को भी आहुति देने का विधान किया गया है। अन्त में ब्रह्म-दक्षिणा, मार्जन, ब्राह्मण भोजन, चरुप्राशन आदि क्रियाएँ भी उल्लिखित हैं। अध्याय के अन्त में एक महत्त्वपूर्ण निर्देश है कि नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों प्रकार के कर्मों में हवन किया जाना चाहिए।

पंचदशाध्याय

इस अध्याय में श्रीराम की उपासना के क्रम में अनेक प्रकार के सकाम हवनों की विधि का वर्णन किया गया है। इसमें कामना भेद से हविष्य सामग्री में अन्तर बतलाया गया है। जैसे-

बिल्व-पुष्प	-	ऐश्वर्य
पलाश-पुष्प	-	मेधा, ज्ञान

चंदन के जल से सुगन्धित जूही फूल के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से राजवशीकरण सिद्ध होता है। दूर्वा या गुरुच के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से रोगनाश और दीर्घायु की बात कही गयी है। इस अध्याय में इस प्रकार के अनेक प्रयोग हैं, जिनसे वशीकरण, उत्तम स्त्री की प्राप्ति, जगद्वशीकरण, सुख, समृद्धि आदि की प्राप्ति होने की बात कही गयी है। अध्यायान्त में सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है कि सकाम भाव से जो उपासना करते हैं, उन्हें उसी कामना की सिद्धि होती है, उन्हें मुक्ति नहीं मिलती; क्योंकि एक कर्म के दो फल नहीं हो सकते। फिर अन्त में निर्देश करते हैं कि श्रीराम का षडक्षर मन्त्र मुक्ति देनेवाला है। इसका प्रयोग मारणादि कर्म में नहीं करना चाहिए; क्योंकि विद्वान् तुच्छ खरगोश पर ब्रह्मास्त्र नहीं चलाया करते हैं।

षोडशाध्याय

इस अध्याय में षडक्षर मन्त्र के पुरश्चरण की विधि का वर्णन किया गया है। इस मन्त्र के प्रतिदिन जप में छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ संख्या बतलायी गयी है। इस अध्याय के अनुसार पुरश्चरण के पाँच अंग हैं- पूजन, नित्य जप, तर्पण, होम एवं ब्राह्मण-भोजन। गुरु से प्राप्त मन्त्र की यह पंचागोपासना पुरश्चरण कहलाती है। इस अध्याय में पुरश्चरण कर्त्ता के लिए हविष्यान्न भोजन तथा वर्ज्य पदार्थों का उल्लेख है; पुरश्चरण किस स्थान पर किया जाना चाहिए, इसका भी वर्णन है। यहाँ सम्पूर्ण आचार-संहिता का उल्लेख किया गया है, किन्तु अन्त में प्रतिपादित किया गया है कि निष्काम भाव से इस पुरश्चरण को करने से ईश्वर के साथ साक्षात्कार होगा। गृहस्थों के लिए ब्राह्मण भोजन अनिवार्य बतलाया गया है, किन्तु अशक्त गृहस्थ एवं अन्य प्रकार के साधक भी जपसंख्या को द्विगुणित कर इसकी क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। इसी प्रकार, हवन, पूजा अथवा तर्पण में भी अशक्त रहने पर उतनी संख्या में जप कर क्षतिपूर्ति कर सकते हैं। अन्त में, इस पुरश्चरण से भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति कही गयी है।

सप्तदशाध्याय

इस अध्याय में शिष्य की दीक्षा के अन्तर्गत अभिषेक की विधि का वर्णन है। इसके आरम्भ दीक्षा के लिए शुभ मुहूर्तों का विधान तथा अपनी शाखा के गृह्यसूक्त के अनुसार नान्दीमुख-श्राद्ध, स्वस्तिवाचन आदि का विधान किया है। सूर्यग्रहण के दिन किसी भी मुहूर्त को देखने की आवश्यकता नहीं है। शिष्य कलश की स्थापना कर ब्राह्मणों का वरण करें और वैदिक तथा पौराणिक मन्त्रों से सुन्दर सूक्तों को सुनते हुए विष्णु की पूजा करें। गुरु भी भूतशुद्धि, न्यास आदि के साथ विष्णु-पूजन कर रात्रि में जागरण, कथालाप आदि करते हुए छह हजार मन्त्र जप करते हुए रात्रि व्यतीत करें। दूसरे दिन पुनः भूतशुद्धि, न्यास, पूजन, जप आदि सम्पन्न कर हवन करें। पूर्णाहुति के बाद शिष्य को प्राणायाम कराकर सुरास्त्वां0 इत्यादि मन्त्र से कलश के जल से अभिषेक करावें। तब शिष्य को नवीन वस्त्र, चन्दन, आभूषण आदि से सज्जित कर षडंगन्यास करें। फिर शिष्य के मस्तक पर हाथ रखकर 108 बार मन्त्र का जप करें। तब गुरु हाथ में जल लेकर उसे शिष्य के हाथों में डाले और मन्त्र दें। शिष्य को विभवानुसार गुरु एवं उनके पुत्र, पत्नी आदि को वस्त्र, आभूषण भोजन आदि देना चाहिए। गुरु को प्रसन्न कर उन्हें विदा कर शिष्य स्वयं भोजन करे और अपने परिजनों को भोजन कराये। उसके बाद प्रतिदिन शिष्य प्रातः, मध्याह्न एवं सन्ध्या में जप करे।

इसी अध्याय में रामगायत्री का मन्त्रोद्धार तथा पुरश्चरण-विधि वर्णित है। इस रामगायत्री के आदि में अनेक बीज मन्त्र लगाकर काम्य प्रयोगों का भी उल्लेख यहाँ किया गया है तथा तर्पण-विधि की वर्णित है।

अष्टादशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में श्रीराम की पूजा-सामग्रियों का लक्षण बतलाया गया है। जो पुष्प दूसरे देवता को नहीं चढाया गया हो, पवित्र, सुगन्धित, श्वेत अथवा पीत वर्ण का हो, कीड़े आदि न लगे हों वे पुष्प श्रीराम की पूजा में विहित है। सदावर्त नामक, शंख, जिसकी पीठ तथा मध्य भाग में कमल-नाल का चिह्न हो, शुभ्र जल से पूर्ण हो, पूजन में प्रशस्त है। पाद्य, अर्घ्य आदि के पात्र ताम्बा अथवा सुवर्ण का बना होना चाहिए। ये पूजा-साधन तीन प्रकार के होते हैं- उत्तम मध्यम एवं अधम। पूजा कर्म के वैशिष्ट्य से देश एवं काल के अनुसार शक्ति तथा औचित्य के अनुसार ऐसे साधनों का व्यवहार करें, जिन्हें लोक में निन्दित नही माना जाता हो।

आगे पूजन विधि के क्रम में विभिन्न मुद्राओं-आवाहनी, स्थापनी, सन्निधीकरणी आदि का वर्णन है। दोनों हाथों के अंगूठे को ऊपर की ओर खड़ा कर मुट्ठी बाँध लेने से संनिधीकरणी मुद्रा बनतीं है। इसी मुद्रा में यदि दोनों अंगूठे अन्दर दबे हों तो संनिरोधनी मुद्रा कहलाती है। इसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, पद्म, धेनु, कौस्तुभ, श्रीवत्स, वनमाला, योनि आदि दश मुद्राओं के लक्षण दिये गये हैं, जो देवार्चन में प्रशस्त हैं।

आगे यजमान के बैठने के भी आसनों का वर्णन किया गया है- स्वस्तिक, वज्र, वीर, पद्म, योग, गोमुख आदि। इन आसनों के लक्षण यहाँ वर्णित हैं। अध्याय के अन्त में निर्देश है कि जो विष्णुभक्त न हों, उन्हें ये सब रहस्य कहना नहीं चाहिए।

एकोनविंशाध्यायः

इस अध्याय के आरम्भ में श्रीराम के षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य बतलाया गया है। हे सुतीक्ष्ण! गाणपत्य, शैव, सौर, शाक्त एवं वैष्णव मन्त्रों में श्रीराम का मन्त्र श्रेष्ठ है। श्रीराम के भी अन्य मन्त्रों की अपेक्षा यह षडक्षर मन्त्र अनायास फल देनेवाला है, अतः इसे मन्त्रराज कहा गया है। इसके जप और पुरश्चरण से ब्रह्म-हत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं, भूत प्रेत, पिशाच, ग्रह और राक्षस सब भाग

इसी अध्याय में रामगायत्री का मन्त्रोद्धार तथा पुरश्चरण-विधि वर्णित है। इस रामगायत्री के आदि में अनेक बीज मन्त्र लगाकर काम्य प्रयोगों का भी उल्लेख यहाँ किया गया है तथा तर्पण-विधि की वर्णित है।

अष्टादशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में श्रीराम की पूजा-सामग्रियों का लक्षण बतलाया गया है। जो पुष्प दूसरे देवता को नहीं चढाया गया हो, पवित्र, सुगन्धित, श्वेत अथवा पीत वर्ण का हो, कीड़े आदि न लगे हों वे पुष्प श्रीराम की पूजा में विहित है। सदावर्त नामक, शंख, जिसकी पीठ तथा मध्य भाग में कमल-नाल का चिह्न हो, शुभ्र जल से पूर्ण हो, पूजन में प्रशस्त है। पाद्य, अर्घ्य आदि के पात्र ताम्बा अथवा सुवर्ण का बना होना चाहिए। ये पूजा-साधन तीन प्रकार के होते हैं- उत्तम मध्यम एवं अधम। पूजा कर्म के वैशिष्ट्य से देश एवं काल के अनुसार शक्ति तथा औचित्य के अनुसार ऐसे साधनों का व्यवहार करें, जिन्हें लोक में निन्दित नही माना जाता हो।

आगे पूजन विधि के क्रम में विभिन्न मुद्राओं-आवाहनी, स्थापनी, सन्निधीकरणी आदि का वर्णन है। दोनों हाथों के अंगूठे को ऊपर की ओर खड़ा कर मुट्ठी बाँध लेने से संनिधीकरणी मुद्रा बनतीं है। इसी मुद्रा में यदि दोनों अंगूठे अन्दर दबे हों तो संनिरोधनी मुद्रा कहलाती है। इसी प्रकार शंख, चक्र, गदा, पद्म, धेनु, कौस्तुभ, श्रीवत्स, वनमाला, योनि आदि दश मुद्राओं के लक्षण दिये गये हैं, जो देवार्चन में प्रशस्त हैं।

आगे यजमान के बैठने के भी आसनों का वर्णन किया गया है- स्वस्तिक, वज्र, वीर, पद्म, योग, गोमुख आदि। इन आसनों के लक्षण यहाँ वर्णित हैं। अध्याय के अन्त में निर्देश है कि जो विष्णुभक्त न हों, उन्हें ये सब रहस्य कहना नहीं चाहिए।

एकोनविंशाध्यायः

इस अध्याय के आरम्भ में श्रीराम के षडक्षर मन्त्र का माहात्म्य बतलाया गया है। हे सुतीक्ष्ण! गाणपत्य, शैव, सौर, शाक्त एवं वैष्णव मन्त्रों में श्रीराम का मन्त्र श्रेष्ठ है। श्रीराम के भी अन्य मन्त्रों की अपेक्षा यह षडक्षर मन्त्र अनायास फल देनेवाला है, अतः इसे मन्त्रराज कहा गया है। इसके जप और पुरश्चरण से ब्रह्म-हत्यादि पाप नष्ट हो जाते हैं, भूत प्रेत, पिशाच, ग्रह और राक्षस सब भाग

लगता है, उसे मात्रा कहते हैं। पैंतालीस मात्रा का प्राणायाम उत्तम, तीस मात्रा का मध्यम और पन्द्रह मात्रा का अधम होता है। सभी शुभ एवं अशुभ कर्मो के आरम्भ और अन्त में प्राणायाम करना चाहिए। चार सौ प्राणायाम करने से सैकड़ो महापाप मिट जाते हैं। प्राणायाम के विना किए गये सभी निष्फल होते हैं।

आगे योग के शेष अंगों का वर्णन है। इस प्रकार आठो अंगों को पूरा कर योगी सूर्यमण्डल का भेदन कर परमगति को प्राप्त करते हैं।

कर्म योग अथवा ज्ञान योग अथवा दोनों से सगुण अथवा निर्गुण राम की आराधना कर योग के नियमों का पालन करता हुआ साधक भोग और मोक्ष प्राप्त करते हैं। 'कर्मयोग अथवा ज्ञानयोग मैं कल से आरम्भ करूँगा' यह सोचनेवाला तो स्वयं अपनी आँखों में धूल झोंकता है। मानव शरीर में स्थित इन्द्रियाँ विष्ठा के बीच रहनेवाले कीड़े से भी अधिक अपवित्र हैं। जो अपने शरीर पर विश्वास करते हैं, वे मूर्ख हैं। ईश्वर ने केवल दु:ख का अनुभव करने के लिए इस शरीर का निर्माण किया है। सकाम कर्म करने से पुनर्जन्म अवश्यम्भावी है अतः सिद्धान्त यही है कि फल प्राप्ति की कामना से कोई कर्म न करें।

एकविंशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में पूर्व पक्ष के रूप में कर्म को भी मुक्ति का साधन मानते हुए उसकी साधकता बतलायी गयी है, किन्तु कर्म को साधन मानने पर क्या क्या विषमताएँ होती हैं उनका उल्लेख करते हुए कर्म की साधकता का खण्डन किया गया है और अन्त में सिद्धान्त के रूप में कहा गया है कि ज्ञान के विना मुक्ति का दूसरा साधन नहीं है इस ज्ञान के साथ अष्टांग योग का मार्ग अपना कर योगी मुक्त हो जाता है। हृदय में स्थित श्रीराम सर्वत्र प्रकाशित होते हैं, जो शरीर के विनष्ट होने पर स्वयं अवशिष्ट रहते हैं। वस्तुतः ऐसे श्रीराम से ऊपर कुछ भी नहीं है। यह ज्ञान और अष्टांग योग का समन्वय वैराग्य और यतित्व के विना दुर्लभः है, अतः शास्त्रानुसार स्वीकृत यतित्व का आचरण करते हुए हर प्रकार से ब्रह्म-कैवल्य का अभ्यास करना चाहिए।

द्वाविंशाध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में सुतीक्ष्ण का प्रश्न है कि योग क्या है और किस उपाय से चित्त को जीता जा सकता है। इसपर अगस्त्य कहते हैं कि जिस प्रयत्न से शरीर के अन्तः में वायु का निरोध होता है उसी प्रयत्न से मन भी निरुद्ध होकर आत्मलीन हो जाता है। प्राणवायु और अपानवायु समान कर चित्त को

आत्मा में स्थित कराकर द्वादशार चक्र से निःसृत अमृत को पाकर योगी अमरत्व प्राप्त कर लेता है।

इस सिद्धान्त कथन के बाद इस अध्याय में शरीर की उत्पत्ति की प्रक्रिया का वर्णन किया गया है, जो आयुर्वेद शास्त्र में उत्पत्ति-स्थान का विषय है। सर्वप्रथम प्राणियों के चार प्रकार हैं- उद्भिज, अण्डज, स्वेदज तथा जरायुज। उनके अतिरिक्त तृण, वृक्ष आदि भी पंचमहाभूतों से ही निर्मित हैं। अपने भाग्य दुर्बल होने पर जरायुज शरीर प्राप्त करते हैं। स्त्री और पुरुष के ग्राम्यधर्म से शुक्र और शोणित के सम्मेलन से इनके शरीर का निर्माण होता है। यह गर्भ में प्रविष्ट होकर वायु, जल और अग्नि के प्रभाव से गीला होता है, उबलता है और धीरे धीरे बढ़ता हुआ दशवें मास में जन्म लेकर रोने लगता है। मनुष्य का यह शरीर विष्ठा और मूत्र से लिपटा हुआ अत्यन्त घृणित है। इस शरीर में ईडा, पिंगला, सुषुम्णा, गान्धारी, हस्तजिह्वा, अलंबुषा आदि नाडियाँ होती हैं। पचास हजार शिराएँ हैं, दस जल के स्थान हैं, रस के नौ स्थान हैं, जिनमें पुरुष में सात ही होते हैं। रक्त के आठ, मूत्र के पाँच, वसा के चार, मेद के दो और मज्ञा एवं रेत के एक स्थान होते हैं। शरीर में दश वायु का संचार होता है- प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकल, देवल एवं धनञ्जय। जब शिशु का जन्म होता है, तो सर्वत्र दुःख ही भोगना पड़ता है।

इस अध्याय का यह शरीरोत्पत्ति-वर्णन मानव शरीर के प्रति आसक्ति से विमुख करने के उद्देश्य से किया गया है।

त्रयोविंशाध्याय

इस अध्याय में ब्रह्मविद्या का निरूपण किया गया है। प्रारम्भ में अगस्त्य परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहते हैं कि अद्वैत, आनन्दमय, चैतन्य, शुद्ध एक मात्र ईश्वर हैं, जो बाहर और भीतर प्रकाशित हैं। चैतन्य स्वरूप में परमात्मा स्थावर और जंगम प्राणियों में निश्चित रूप से स्थित है। उस परमात्मा को प्राणी जान नहीं पाते हैं, जिसके लिए अविद्या जिम्मेदार है। वह ज्ञानियों के मन में भी परदा की तरह है। इस अविद्या के कारण ही प्राणियों में सुख और दुःख की अनुभूति होती है। इस अविद्या का नाश होने पर साधक चैतन्य स्वरूप परमात्मा का साक्षात् दर्शन कर लेता है।

यह स्थिति प्राणायाम से होती है। इसके लिए आधार-चक्र पर श्रीराम का ध्यान कर पूरक क्रिया के योग से बाह्य स्थित चैतन्य को भीतर लेकर कुम्भक कर शरीर के पूर्वोक्त दश प्रकार के वायु को एकीकृत करें। इन वायुओं को दृढ़

बाँधकर एक मुहूर्त के आधे समय अर्थात् 24 मिनट तक स्थिर रहकर मुख खोलें। आगे के चरण में इस रुद्ध वायु से एक एक कर ग्रन्थियों का भेदन करें। भ्रूमध्य में स्थित द्विदल कमल से अमृत की टपकती हुई धारा का पान कर उसी धारा में समस्त असत् को प्रवाहित कर साधक अमर हो जाता है। जब पाँचवीं ग्रन्थि का भी भेदन सम्पन्न हो जाता है, तब शब्दब्रह्म से साक्षात्कार होने पर सर्वज्ञता आ जाती है। आगे मूलाधार में स्थित वायु को सुषुम्णा नाडी के द्वारा ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश करायें। इससे यह जन्म सफल हो जाता है और मुक्ति मिल जाती है। हे योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! यह सब संन्यास से होता है। यहीं मुक्ति का मार्ग है, जो सभी दर्शनों में कहा गया है।

श्रीराम सत्य हैं, परब्रह्म हैं, राम से ऊपर कुछ भी नहीं है। यह रहस्य अगस्त्य-संहित में कही गयी है। यह 'अगस्त्य-संहिता' अध्यात्म मार्ग की दीपशिखा है। जिसके घर में यह पुस्तक पूजित है, वे सद्यः अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं, आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र-पौत्र प्रपौत्र आदि की वृद्धि होती है।

चतुर्विंशाध्याय

अध्याय के आरम्भ में अगस्त्य-संहिता में उक्त मार्ग को परम मार्ग मानते हुए श्रीराम के माहात्म्य का वर्णन है। श्रीराम परम ज्योतिःस्वरूप हैं, इस संसार के विस्तार की आत्मा हैं। वसिष्ठ, वामदेव, नारद आदि ऋषियों ने वेद, स्मृति, पुराण आदि का अवलोकन कर यह निश्चय किया है कि श्रीराम यज्ञ स्वरूप हैं, जिससे स्थावर और जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई है। श्रीराम के मन्त्र शब्द प्रकाश स्वरूप है और श्रीराम से ही इसकी भी उत्पत्ति हुई है, अतः इन मन्त्रों के जप से भोग और मोक्ष दोनों मिल जाते हैं।

इस अध्याय में श्रीराम के अनेक मन्त्रों का निर्देश किया गया है। जिनमें एकाक्षर मन्त्र 'राम्', द्व्यक्षर मन्त्र 'राम', षड़क्षर मन्त्र ॐ रामाय नमः, क्लीं रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः आदि विवेचित हैं। आगे 'राम' पद के साथ 'चन्द्र' एवं 'भद्र' जोड़कर भी ह्रीं, श्रीं, क्लीं ॐ ये बीज पर्याय से लगाकर अनेक प्रकार के मन्त्र होते हैं। इन मन्त्रों के ऋषि, ब्रह्मा, शिव और अगस्त्य हैं, छन्द गायत्री है, देवता श्रीराम हैं, आदि और अन्त के बीज शक्तियाँ हैं तथा भोग और मोक्ष प्रयोजन हैं। इन मन्त्रों में से किसी एक का न्यास सभी अंगों में करना चाहिए। इसके बाद हृदय रूपी कमल के समान आँखोंवाले परात्पर पुरुष श्रीराम का ध्यान कर मानस-पूजा कर एकान्त में जप करें। श्रीसीताराम की विलासमयी युगलमूर्ति का ध्यान कर साधक भोग और मोक्ष पाते हैं। आगे जप, होम, अर्चना आदि

करें। श्रीराम के मन्त्र उन्हीं के स्वरूप हैं, जिनका स्मरण और कीर्तन करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, सभी पापमुक्त हो जाते हैं। इसलिए सदगुरु के उपदेश से मण्डल में श्रीराम के मन्त्र का अनुष्ठान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।

पंचविंशाध्याय

इस अध्याय में षडक्षर मन्त्र के अतिरिक्त जो श्रीराम के मन्त्र हैं, उनके अनुष्ठान की विधि बतलायीं गयी है। इस अध्याय में सर्वप्रथम पूजा-विधानों एवं जपविधानों का त्याग कर भक्तिभाव से श्रीहरि के समक्ष कीर्तन, भजन, नामोच्चारण आदि करके भी मुक्ति प्राप्त करने की बात कही गयीं है। ऐसे भक्तों के लिए दीक्षा और अन्य विधानों की व्यर्थता कही गयी है।

बाद में कहा गया है कि सभी मन्त्रों में षडक्षर मन्त्र श्रेष्ठ है, अतः अन्य मन्त्रों के भी मूल विधान षडक्षर मन्त्र के समान है। दीक्षा-विधि में भी कोई अन्तर नहीं है। पुरश्चर्या विधि की पूर्वोक्त ही है। इस अध्याय में सूर्यमण्डल के मध्य में स्थित श्रीराम सीता एवं हनुमान् का ध्यान किया गया है। बाह्यपूजा की विधि यहाँ संक्षेप में वर्णित है। यहाँ देवता को अर्घ्य नैवेद्यों का उल्लेख किया गया है।

षड्विंशाध्याय

इस अध्याय में रामनवमी व्रत का विस्तृत विवरण दिया गया है। चैत्र शुक्ल नवमी के दिन पुनर्वसु नक्षत्र में कर्क लग्न में परमपुरुष श्रीराम कौशल्या के गर्भ से उत्पन्न हुए। इस उपलक्ष्य में इस दिन उपवास, व्रत, रात्रि-जागरण करना चाहिए तथा दूसरे दिन प्रातःकाल में दशमी तिथि में श्रीराम की पूजा कर ब्राह्मण-भोजन कराना चाहिए। गाय, भूमि, तिल, सोना आदि दान करना चाहिए।

आगे श्रीराम की प्रतिमा की पूजा कर दान करने का विधान किया गया है। रामनवमी से एक दिन पूर्व स्नानादि क्रिया कर श्रीराम के मन्त्र के साधक का विधिपूर्वक वरण कर उन्हें आचार्य बनायें। फिर उन्हें स्नानादि कराकर नवीन वस्त्र पहनाकर स्वयं भी श्वेत वस्त्रादि धारण कर आचार्य के मुख से रामकथा सुनते हुए रात्रि में भूमि पर सोकर दूसरे दिन वेदी निर्माण कर अन्य विद्वानों के मुख से स्वस्तिवाचन सुनते हुए उसी स्वर्णमयी प्रतिमा का पूजन करें तथा अन्त में संकल्पपूर्वक उसके दान का संकल्प करें। आगे पूजन में प्रयुक्त चन्दन, कुंकुम आदि के निर्माण की विधि वर्णित है। इस दिन नृत्य, उत्सव भजन-कीर्तन आदि करते हुए दिन-रात व्यतीत करें। अगले दिन श्रीराम की विधिवत् पूजा कर

मूलमन्त्र से एक सौ आठ बार पायस से हवन करें। तब आचार्य को सन्तुष्ट कर संकल्प लेकर वह स्वर्णप्रतिमा दान करें। तब दक्षिणा देकर आचार्य और ब्राह्मणों को भोजन कराकर स्वयं भी भोजन करें। इससे अनेक जन्मों के पाप मिट जाते हैं और तुलापुरुष आदि दान का फल मिलता है।

सप्तविंशाध्याय

रामनवमी के दिन प्रतिमा-दान से भिन्न कल्प का विधान किया गया है। आरम्भ में पूर्व अध्याय का अनुकल्प है कि स्वर्ण प्रतिमा के दान करने में यदि आर्थिक कठिनाई हो, तो एक पल के सोलहवें भाग के बराबर सुवर्ण की प्रतिमा दान की जा सकती है।

दूसरा कल्प है कि नवमी के दिन व्रत कर रात्रि में जागरण कर भक्तिपूर्वक श्रीराम का पूजन करें। दशमी तिथि को गाय, भूमि, तिल, हिरण्य आदि वित्त के अनुसार दान करें। इस प्रकार जो रामनवमी का व्रत करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं। यह रामनवमी का व्रत नित्यकर्म है। अर्थात्, जो यह व्रत नहीं करते, वे पाप के भागी होते हैं।

आगे इस अध्याय में कहा गया है कि दशम अध्याय में वर्णित विधि से षोडशोपचार से विधिपूर्वक पूजन करें। इस दिन मौन व्रत धारण कर एकान्त में रहते हुए श्रीराम-मन्त्र का जप उस पाप को नष्ट कर देता है, जो पाप बारह वर्षों में भी नष्ट नहीं होता। रामनवमी के दिन प्रत्येक प्रहर में पूजा करनी चाहिए।

अष्टाविंशाध्याय

इस अध्याय में भी रामनवमी व्रत और उस दिन पूजन का माहात्म्य बतलाया गया है। इस दिन उपवास, जागरण, पितृ-तर्पण करना चाहिए। जो रामनवमी के दिन पितरों के निमित्त तर्पण करते हैं, उनके पितर उसी क्षण विष्णु के परमधाम को चले जाते हैं। इस दिन व्रत करने से तुलापुरुष दान का फल मिलता है। रामनवमी का निर्णय करते हुए कहा गया है कि अष्टमीविद्धा नवमी का त्याग वैष्णवों को करना चाहिए। नवमी में व्रत कर दशमी में पारणा करें।

इसी अध्याय में आगे सुतीक्ष्ण द्वारा पूछे जाने पर तत्त्व, जाप्य मन्त्र एवं ध्यान का विस्तृत विवेचन किया गया है। यहाँ त्रिगुणातीत, निर्म्मल ज्योतिःस्वरूप को तत्त्व मानकर 'श्रीराम' को परम जाप्य मन्त्र माना गया है। 'श्रीराम, राम, राम' का जप जो करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं। इसके बाद श्रीराम का ध्यान बतलाया गया है कि अयोध्या नगर में रत्नमण्डप पर कल्पतरु

की जड़ में रत्न सिंहासन पर आसीन श्रीराम का ध्यान करें। यहाँ अष्टदल कमल पर विभिन्न दलों में अंग, परिजन और परिवार देवताओं की स्थिति का वर्णन कर षोडशोपचार-पूजन का विवरण दिया गया है। यहाँ उल्लेख है कि प्रत्येक मास शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को पौराणिक स्तोत्रों एवं वेदपाठ के साथ श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

एकोनत्रिंशाध्याय

इस अध्याय के आरम्भ में न्यास को मन्त्र का कवच कहते हुए जप से पूर्व न्यास का अनिवार्य विधान किया गया है कि केशवकीर्त्यादि-न्यास, तत्त्वन्यास, परमहंसन्यास, प्रणवन्यास, मातृकान्यास आभ्यन्तरमातृकान्यास क्रमशः कर मन्त्र का जप करें। यदि इन न्यासों को करने में अशक्त हों, तो केवल मन्त्र का भी जप किया जा सकता है।

इस अध्याय में आगे श्रीराम के मन्दिर में प्रतिष्ठा के लिए शुभ दिन की गणना की गयी है। चैत्र शुक्ल नवमी को चन्द्र, तारा आदि का बलाबल देखे बिना श्रीराम की प्रतिष्ठा करनी चाहिए। अथवा माघ शुक्ल नवमी को चन्द्रमा और तारा शुभ होने पर करें। मार्गशीर्ष अथवा वैशाख की पूर्णिमा के दिन भी मूल आदि दोष न होने पर प्रतिष्ठा करें। गोपाल कृष्ण की स्थापना के लिए श्रावण, नृसिंह और केशव की प्रतिमा-स्थापन के लिए वैशाख एवं राम के लिए चैत्र प्रशस्त मास है। भगवान् अनन्त की प्रतिमा भी माघ में स्थापित करें।

मन्दिर की वास्तु का विधान किया गया है कि मन्दिर के स्थान से काँटा, ईंट, पत्थर आदि हटाकर वहाँ तबतक खोदें जबतक जल छूटने लगे। फिर पत्थर और बालू से भरकर उस स्थान को दृढ़ कर पत्थर कूटकर ठोंक पीट कर दो हाथ ऊँचा चबूतरा (भूमिका) बनावें। इसपर सुन्दर देवालय का निर्माण करें। इसके चारों ओर गोपुर से युक्त प्राकार का निर्माण करावें। मन्दिर के गर्भगृह में दो हाथ की चौकोर वेदी बनाकर पीठ के आगे हनुमान्, अग्निकोण में सुग्रीव, दक्षिण में भरत, नैर्ऋत्य में विभीषण, उत्तर में शत्रुघ्न और ईशान कोण में जाम्बवान् का अंकन करें एवं बीच में श्रीराम का अंकन करें। इस यन्त्र का अंकुरारोपण आदि कर प्रतिष्ठापन करें और कुटुम्बवाले दरिद्र ब्राह्मण को यह मन्दिर दान करें।

त्रिंशाध्याय

इस अध्याय में दशाक्षर आदि मन्त्र का विधान किया गया है। तथा प्रत्येक मन्त्र के लिए अलग-अलग ध्यान बतलाये गये हैं। आगे लक्ष्मण भरत, शत्रुघ्न, हनुमान् इन अंग देवताओं के मालामन्त्र का विधान किया गया है। अन्त

में कहा गया है कि श्रीराम के अनेक मन्त्र हैं, उन मन्त्रों के साथ लक्ष्मण का मन्त्र भी जपना चाहिए, तभी दशाक्षर आदि मन्त्रों की सिद्धि होगी। कौन मन्त्र किस साधक के लिए अनुकूल होगा, इसकी विवेचना के क्रम में शत्रु और मित्र का जो विचार किया जाता है, वह भी लक्ष्मण के मन्त्र में नहीं किया जाता है। इस प्रकार श्रीराम के मन्त्र के साथ लक्ष्मण के मन्त्र का जो जप करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त होकर सभी कामनाओं को पाता है।

एकत्रिंशाध्याय

इस अध्याय में श्रीराम एवं लक्ष्मण के मन्त्रों के विविध प्रयोग संकलित हैं। श्रीराम एवं लक्ष्मण के विभिन्न ध्यानों का स्मरण करते हुए षडक्षर मन्त्रराज के जप करने से विभिन्न प्रकार की लौकिक सिद्धियों का प्रतिपादन किया गया है। जैसे– अयोध्या में राज्याभिषिक्त श्रीराम का ध्यान करें और एकाग्र होकर पचास हजार मन्त्र का जप कर अपने नष्ट राज्य को पावें। नागपाश से विमुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए एकान्त में रहकर दस हजार जप कर बेड़ी के बन्धन से मुक्त हो जाता है। हनुमानजी के द्वारा लायी गयी औषधियों से कष्ट से मुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए दस हजार जप करने से मनुष्य अपनी अपमृत्यु को जीत लेता है। मेघनाद का वध करनेवाले श्रीलक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकाग्र होकर जप करने से शीघ्र ही बहुत सारे दुर्जय शत्रुओं को जीत लेते हैं। शूर्पणखा की नाक काटने के लिए उन्मुख श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एक हजार जप करने से इन्द्र आदि को भी जीत लेते हैं। श्रीराम के चरणकमल की सेवा करने के लिए द्वार बनाकर अवस्थित श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकान्त में जप करते हुए साधक अनेक महारोगों को जीत लेते हैं।

यहाँ कहा गया है कि भोतिक सिद्धि के लिए श्रीराम के मन्त्रों का प्रयोग पापकारक भी हो सकता है, किन्तु लक्ष्मण-मन्त्र का प्रयोग पापकारक नहीं होता है। अतः विशेष रूप से लक्ष्मण की पूजा लौकिक सिद्धि के लिए करनी चाहिए।

द्वात्रिंशोऽध्याय

इस अध्याय में हनुमान् के कवच मन्त्र का पाठोद्धार का विवरण देते हुए इसके जप करने से भूत, प्रेत, पिशाच आदि के दूर भागने की बात कही गयी है। इस हनुमत्कवच में एक सौ वर्ण हैं और पचीस से अधिक शब्द हैं। इस मन्त्र के एक हजार जप का पुरश्चरण श्रीराम अथवा शिव के मन्दिर में करना चाहिए। छोटे-मोटे रोगों की शान्ति के लिए एक सौ आठ जप करना चाहिए। तीन दिन तक

जप करने से साधक संकटों से छुटकारा पा लेते हैं। भयंकर रोगों की शान्ति के लिए एक हजार आठ जप करें। इस अध्याय में हनुमान् के माला मन्त्र का भी विधान किया गया है तथा अनेक कामनाओं की सिद्धि के लिए जप से पूर्व अनेक प्रकार के ध्यान बतलाये गये हैं। यही हनुमान् यन्त्र का वर्णन है तथा उसे ताबीज में जड़कर पहनने का विधान है। आगे श्रीराम के यन्त्र और कवच का वर्णन किया गया है। श्रीराम के यन्त्र में कुल मिलाकर इक्कीस कोष्ठ हैं। यह वज्रपंजर नामक यन्त्र कहलाता है। आगे श्रीराम का कवच है, जिसका लेखन यन्त्र पर करने का विधान किया गया है। इस यन्त्र पर पूजन कर इसे धारण करने से शत्रुओं का शमन, सभी उपद्रवों का नाश, आयु, आरोग्य में वृद्धि, पुत्र-पौत्रादि में वृद्धि तथा सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

विषयसूची

1	अगस्त्यसुतीक्ष्णसंवादे शिवपार्वत्युपाख्यानम्	1
2	परमेश्वरस्वरूपाख्यानम्	6
3	रामावतारोपक्रम्	10
4	ब्रह्मणा षडक्षरमन्त्रग्रहणम्	15
5	सगुणोपासनम्	21
6	श्रीतुलसीमाहात्म्यकथनम्	28
7	मन्त्रराजमाहात्म्यम्	35
8	गुरु-शिष्यलक्षणम्	41
9	यन्त्र-विधिः	47
10	पूजा-विधिः	51
11	पूजाविधि-भूतशुद्धिः	58
12	शरीर-न्यासः	65
13	रामपूजा-विधिः	77
14	कुण्डमान-होमान्तादिविधिः	85
15	प्रयोग-विधिः	95
16	पुरश्चरण-विधिः	103
17	पूजा-विधानम्	112
18	आसन-मुद्रा-प्रदर्शनम्	122

19 यम-नियम-व्रतम् 132

20 प्राणायाम-विधिः 142

21 ब्रह्मविद्या-निरूपणम् 151

22 शरीरोत्पत्तिः 158

23 योग-वर्णनम् 165

24 मन्त्रमहिमाख्यानम् 173

25 मन्त्रान्तरवर्णनम् 181

26 श्रीरामव्रत-कथनम् 188

27 रामनवमी-महिमाख्यानम् 198

28 रामनवमीव्रत-विधानम् 204

29 श्रीरामप्रतिष्ठा-विधिः 210

30 लक्ष्मणादिपूजन-विधिः 217

31 लक्ष्मणादिमन्त्र-कथनम् 225

32 श्रीरामयन्त्रमन्त्रकवचोद्धारकथनम् 229

परिशिष्ट :

हेमाद्रि-कृत 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में उद्धृत अगस्त्य-संहिता 242

'अगस्त्य-संहिता' से उद्धृत रामनवमी-व्रत-कथा 245

रामतापिनीयोपनिषद् में उद्धृत रामोपासना की फलश्रुति 256

श्रीमदगस्त्यसंहितान्तर्गत श्रीरामानन्दाचार्यजन्मोत्सवकथा 261

***

अगस्त्य-संहिता

श्रीरामो जयति।[1]

अगस्त्यो नाम विप्रर्षिः सत्तमो गौतमीतटे।
कदाचिद्दण्डकारण्ये सुतीक्ष्णस्याश्रमं ययौ।।1।।

अगस्त्य नाम के श्रेष्ठ ब्रह्मर्षि किसी समय में दण्डकारण्य में गौतमी नदी के तट पर स्थित सुतीक्ष्ण मुनि के आश्रम पर पहुँचे।

प्रत्युज्जगाम तं भक्त्या गन्धपुष्पाक्षतोदकैः।
पाद्यार्घ्याद्यर्हणां चक्रे तस्मै ब्रह्मविदे मुनिः।।2।
सुतीक्ष्णस्तं प्रणम्याह[2] सुखासीनं तपोनिधिम्।
श्रीमदागमनेनैव जीवितं सफलं मम।।3।।
अद्य जन्मसहस्त्रेषु तपः फलति संचितम्।

मुनि सुतीक्ष्ण ने उनकी आगवानी की और चन्दन, पुष्प, अक्षत, जल, हाथ-पैर धोने का जल देकर उस ब्रह्मवेत्ता मुनि का पूजन किया। जब वे सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये, तब सुतीक्ष्ण मुनि ने कहा कि श्रीमान् के आगमन से ही मेरा जीवन सफल हो गया। आज सैकड़ों जनमों की तपस्या का फल मुझे मिल गया।

कामक्रोधादिभिर्भूयो भूयोऽहं पीडितो मुने।।4।।
नाद्राक्षं सम्यगिष्ट्वापि क्रतुभिर्बहुदक्षिणैः।[3]
सत्पात्रे सर्वदानानि दत्वा तु मुनिसत्तम।।5।।
भवाब्धेस्तरणोपायं तपस्तप्त्वा सुदुष्करम्।
किं करिष्याम्यहं तात क्व यास्यामीति तद्वद।।6।।

हे महामुनि! मैं काम क्रोध आदि से अत्यन्त पीड़ित हूँ। मैंने कई यज्ञ किये, जिनमें पर्याप्त दक्षिणा दी, सत्पात्र को दान किया, किन्तु संसार को पार लगाने का

1. क. श्रीमते रामानुजाय नमः। ख. श्री गणेशाय नमः। 2. ख. मुनिं प्राह। 3.ख. °भूरिदक्षिणैः।

उपाय मैंने नहीं देखा। कठिन तपस्या भी की; किन्तु अब मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? इसका उपदेश करें।

इत्युक्तः सोऽब्रवीत्तेन कुम्भभूर्विगतस्पृहः।[1]
क्षणं विचार्य्य तत्पौर्वापर्य्येण मुनिपुङ्गवः।।7।।

ऐसा कहने पर वीतराग महामुनि अगस्त्य ने कुछ देर सोचकर बारी बारी से सुतीक्ष्ण को कहने लगे।

अगस्त्य उवाच

अस्ति वक्ष्यामि ते सर्वं रहस्यं वृषभध्वजः।
यत्प्रत्यपादयत्पूर्वं[2] पार्वत्यै कृपयात्मवित्।।8।।

अगस्त्य बोले – 'इसका भी उपाय है। प्राचीन काल में आत्मज्ञानी भगवान् शिव ने प्रेमपूर्वक पार्वती से जो रहस्य कहा था, वहीं मैं तुमसे कह रहा हूँ।

[3]कदाचित् पार्वती प्राह भर्तारं भक्तवत्सलम्।
कथं मे देव निस्तारो भवाब्धेस्तरणं भवेत्।।9।।
भवाब्धौ मोहिताः सर्वे सद्गतिं प्राप्नुवन्ति ते।

किसी समय में पार्वती ने भक्तवत्सल भगवान् शंकर से पूछा – हे देव! मुझे मुक्ति कैसे प्राप्त होगी और संसार से कैसे पार लगेगा? इस संसार रूपी समुद्र में मोह-ग्रस्त होकर कैसे सभी सद्गति को प्राप्त कर सकेंगे?

ईश्वर उवाच

कामक्रोधादिभिर्दोषैर्दुष्टास्तत्र पुनः पुनः।
उत्पद्यन्ते विलीयन्ते[4] पुनर्व्यामोहितास्त्वया।।10।।

ईश्वर बोले – काम, क्रोध आदि दोषों से इस संसार में लोग आपके द्वारा माया से मोहित होकर बार-बार उत्पन्न और विलीन होते देखे जाते हैं।

रौरवादिषु पच्यन्ते पुनः संसारिणो भुवि।
कर्मशेषात् प्रजायन्ते पंग्वन्धबधिरादयः।।11।।

वे पृथ्वी पर उत्पन्न होकर रौरव आदि नाम के नरकों में पचते हैं और पुण्य कर्म के क्षीण होने से लँगडे, अन्धे, बहरे आदि हो जाते हैं।

---

1. क. बभूव विगतस्पृहः। 2. क. प्रीत्योत्पादयत्पूर्वं।3. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध। 4. घ. प्रलीयन्ते।

कृमिकीटादयो भूत्वा पुनः संसारिणो भुवि।
कुष्ठाद्युपहताः[1] केचिच्चौरव्याघ्रादिभिर्हताः।।12।।

फिर पृथ्वी पर कीड़े-मकोड़े के रूप में जन्म लेकर ये संसारी कुष्ठ आदि रोगों से जकड़े हुए तथा कुछ चोर-डाकू, बाघ आदि के द्वारा मार डाले जाते हैं।

प्रविशन्ति जलेऽग्नौ वा देशाद् देशं व्रजन्ति हि।
परस्त्रीधनहन्तारस्तापयन्ति सतः सदा।13।।

जो लोग दूसरे की स्त्री अथवा धन का हरण करते हैं और सज्जनों को सताते हैं; वे पानी मे डूबते हैं, आग में झुलसते हैं अथवा इस स्थान से उस स्थान भटकते रहते हैं।

देवब्राह्मणवित्तैस्तु येषां जीवनमन्वहम्।
राजसाः तामसाश्चैव हर्तारो धनजीविनः।।14।।
पुत्रदारादिभिर्युक्ता दुःखावर्ते भ्रमन्त्यहो।

जो देवता, ब्राह्मण और पुरोहितों के धन से जिनका जीवन चलता है, ऐसे राजस और तामस स्वभाव के लोग पुत्र, पत्नी आदि से युक्त होकर इस दुःख के भँवर में घूमते रहते हैं।

[2]कलौ प्रायेण सर्वेऽपि राजसा तामसास्तथा।।15।।
निसिद्धाचारिणः सन्तो मोहयन्त्यपरान्बहून्।
यथाभूतः प्रभुर्ल्लोके सेवकाः स्युस्तथाविधाः।।16।।
अतो मदीयाः सर्वेऽपि हिंसकाःस्वप्रियाः प्रिये।
वश्याकर्षणविद्वेषस्तम्भनोच्चाटनादिषु ।।17।।
शश्वदावां समाराध्य भवन्ति फलभागिनः।
आवाभ्यां पिशितं रक्तं सुरां चापि सुरेश्वरि।।18।।
वर्णाश्रमोचितो धर्ममविचार्य्यार्पयन्ति ये।
भूतप्रेतपिशाचास्ते भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः।।19।।

कलियुग में प्रायः सभी राजस या तामस प्रवृत्ति के लोग होते हैं। निषिद्ध कर्म करनेवाले हैं और वे बहुत से दूसरे लोगों को कष्ट देते हैं। संसार में जैसा मालिक होता है, वैसे ही सेवक भी होते हैं।इसलिए हे प्रिये! वे सभी हिंसक मेरे

1. घ. केचिच्छस्त्रहताः। 2. क. एवं ख. में पंक्ति के क्रम में अन्तर है ।

प्रिय हैं। वशीकरण, आकर्षण, विद्वेषण, स्तम्भन, उच्चाटन आदि प्रयोगों में लीन रहनेवाले वे नित्य हम दोनों की आराधना करके फल पाते हैं। हमदोनों को तो मांस, रक्त, सुरा भी समर्पित करते हैं, किन्तु हे सुरेश्वरि! वर्ण और आश्रम के लिए विहित धर्म का विचार किए विना जो हमदोनों को मांस, रक्त, मदिरा अर्पित करते हैं, वे भूत, प्रेत, पिशाच और ब्रह्मराक्षस होते हैं।

पुनस्तदन्ते जायन्ते विप्रदेवाधिकारिणः।
तत्तद्रूपेण जायन्ते स्वस्वदोषानुरूपतः।।20।।

और फिर मृत्यु पाकर पुरोहित और मन्दिर के अधिकारी होते हैं, फिर अपने दोषों के अनुसार भूत, प्रेत, पिशाच आदि के रूप में जन्म लेते हैं।

पार्वत्युवाच

नायं धर्मो हि देवेश परेषामुपकारकृत्।
अतो मे ब्रूहि देवेश धर्मो यस्त्वं कृपानिधे।।21।।

पार्वती बोली– हे देवाधिदेव, हे करुणानिधि! यह वशीकरण आदि धर्म दूसरे का उपकार करनेवाला नहीं हैं, अतः जो धर्म है, वह मुझे बतलाइए।

ईश्वर उवाच

सत्यं वदाम्यहं देवि यन्मां त्वं परिपृच्छसि।
हन्ताहं सर्वलोकानां यतो हिंसैव मे प्रिया।।22।।

महादेव बोले- हे देवि! मैं ठीक ही तो कहता हूँ, जो तुम मुझे पूछ रही हो। मैं तो सभी लोकों का अन्तक हूँ; अतः हिंसा मुझे प्रिय हैं।

ये वा भूतानि निघ्नन्ति विधिनाविधिनापि वा।
समर्पयन्ति भूतेभ्यो मत्प्रियास्ते सदा प्रिये[1]।।23।।

जो प्राणियों का वध विधानपूर्वक या विना विधान के भी करते हैं और भूत-प्रेतों को समर्पित करते हैं वे सदा मेरे प्रिय हैं।

अहं तमोमयो नित्यं हन्मि भूतानि भामिनि।
मत्कर्म हननं नित्यमतो हिंसैव मे प्रिया।।24।।

हे भामिनि! मैं नित्य तमोमय हूँ और प्राणियों का संहार करता हूँ। संहार करना मेरा कर्म है, अतः हिंसा ही मेरा प्रिय है।

---

1. घ. मत्प्रियाः सर्व्वदा प्रिये।

मत्कृत्याचारिण: सर्वे वल्लभा मम वल्लभे।
लोके स्वाम्यनुकल्पेन सेवां कुर्वन्ति सेवका:।।25।।
भक्त्यार्पयन्ति ये मह्यं तवापि पिशितादिकम्।
उत्पादयन्ति चानन्दं गणेभ्यो वा सुरप्रिये।।26।।

हे स्वामिनि! प्रिये! जो कार्य मैं करता हूँ, उन कार्यों को करनेवाले सभी मेरे प्रिय हैं। इस संसार में स्वामी के समान ही सेवक भी सेवा करते हैं। हे देवप्रिये पार्वति! मुझे या तुम्हें जो भी व्यक्ति भक्तिपूर्वक मांस आदि अर्पित करते हैं उससे हमें या हमारे गणों भूत-प्रेत पिशाच आदि को प्रसन्नता होती है।

तवापि च मदीयानामस्माकं पिशितादिकम्।
तृप्तिमुत्पादयन्त्येव विधिनाविधिनार्पितम्।।27।।

तुम्हें और मुझे दोनों को विधिपूर्वक या विना विधि के भी अर्पित किये गये मांस आदि संतुष्टि तो देते ही हैं।

ब्रह्मा सृजति भूतानि विष्णु: तान्परिपालयेत्।[1]
तान्यहं हन्मि भूतानि कृतिरस्माकमीदृशी।।28।।

ब्रह्मा प्राणियों की सृष्टि करते हैं, विष्णु उनका पालन करते हैं और मैं उनका संहार करता हूँ। हमलोगों के तो ये ही कार्य हैं।

रजोगुणालयो ब्रह्मा विष्णु: सत्त्वगुणालय:।
तमोगुणालयोऽहं स्यां स्वस्वकार्याणि कुर्महे।।29।।

ब्रह्मा में रजोगुण का निवास है, विष्णु सत्त्वगुण के आलय हैं और तमोगुण का आलय मैं हूँ। हमसब अपने अपने कार्य करते हैं।

तत्तद्गुणानुगुण्येन क्रियतेस्माभिरीदृशम्।

उन उन गुणों के अनुरूप हमसब इस प्रकार कार्य करते हैं।

भवाब्धेस्तरणं देवि हिंसकानान्तु दुर्लभम्।।30।।
कामादिग्रस्तचित्तानां कुतो मुक्तिर्वद प्रिये।।31।।

हे प्रिये! लेकिन इस संसार रूपी सागर को पार करना हिंसकों के लिए दुर्लभ है। काम आदि से ग्रस्त लोगों के लिए मुक्ति कैसे होगी यह कहो।

इत्यगस्त्यसंहितायां शिवपार्वत्युपाख्यानम् नाम प्रथमोध्याय:।।1।।

---

1. घ. विष्णुस्तान्येव पाति वै।

अथ द्वितीयोऽध्यायः

पार्वत्युवाच।

कमुपास्य लभेन्मुक्तिं क्रियया च कया प्रभो।
मुमुक्षोः पुनरावृत्तिदुर्लताभयभञ्जन[1]।।1।।

हे शंकर! मोक्षार्थियों के लिए पुनर्जन्मरूपी दुष्टलता के भय का नाश करनेवाले! हे प्रभो! हे संसार का संहार करनेवाले! किस देवता की उपासना और कैसा कर्म करने से मुक्ति मिलेगी?

ईश्वर उवाच

शृणु देवि महाभागे रहस्यं कथयाम्यहम्।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुर्जन्मसंसारबन्धनात्।।2।।

ईश्वर बोले– हे देवि, मैं उस रहस्य को बतला रहा हूँ, जिसे जान लेने पर प्राणी संसार के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

अपाणिपादो जवनो ग्रहीतापीक्ष्यतेऽप्यदृक्।
अकर्णः स शृणोत्येतच्छब्दरूपं[2] परं महः।।3।।
वेत्ति वेद्यं स सर्वज्ञानवेद्यो विद्यते प्रभुः।[3]
स महापुरुषः पुंसां स्त्रीणां पुंव्यक्तिलक्षणः ।।4।।

वे महापुरुष परमेश्वर विना पैर के भी गतिशील हैं, विना हाथ के भी ग्रहण करने में समर्थ हैं, विना आँख देखते हैं और विना कान के सुनते हैं और शब्द के रूप में महान् हैं। वे सभी ज्ञातव्य विषयों को जानते हैं और वे प्रभु समग्र ज्ञान के द्वारा ज्ञेय हैं। पुरुषों में महापुरुष और स्त्रियों में पुरुष स्वरूप हैं।

स्त्रीपुन्नपुंसकाकाररहितः पुरुषोत्तमः।
सर्वेश्वरः सर्वरूप सर्वदेवमयो हरिः।।5।।

स्त्री, पुरुष और नपुंसक के आकार से रहित निराकार पुरुषोत्तम हरि सबके स्वामी हैं, सभी रूपों में हैं तथा सभी देवताओं के रूप में हैं।

सत्त्वज्ञानमयोऽनन्तोऽनादिरानन्द उच्यते।
अजः स्मरणमात्रेण जन्मादिक्लेशभञ्जनः।।6।।
तस्यात्मधीश्च सर्वेषां पुनरावृत्तिकर्त्तनी।

1. क. एवं ख. पुरावृत्तिं दुर्लभां भवभञ्जक। 2. घ. छन्दोरूपे।3. घ. वित्ति वेद्यं स सर्वज्ञो नावेद्यं विद्यते प्रभोः।

सत्त्व-स्वरूप, ज्ञान-स्वरूप, अनन्त, अनादि, आनन्दमय तथा अजन्मा कहे जाते हैं तथा केवल स्मरण करने से जन्म आदि के कारण उत्पन्न कष्ट को दूर करते हैं। उनमें जो ध्यान लगाते हैं उनकी बुद्धि इस संसार में पुनर्जन्म को काटनेवाली भी बन जाती है।

नियमेनैव वर्णानां स्वाश्रमोक्तेन स प्रभुः।।7।।
ध्येयः संसारनाशाय[1] न चैवावर्तते पुनः।

सभी वर्णों के अपने अपने आश्रमों के अनुरूप बने नियमों के अनुरूप ध्यान किये गये वे प्रभु पुनः संसार में जन्मग्रहण के नाशक हैं। वह भक्त इस संसार में पुनः उत्पन्न नहीं होता।

स्वाश्रमोक्तं परित्यज्य य आत्मानमुपासते।।8।।
तद्रूपेण ततो देवि मुच्यते भवबन्धनात्।

हे देवि! अपने आश्रम के लिए कथित विधान को छोड़कर अर्थात् संन्यास लेकर जो आत्मा की उपासना करते हैं, वे उसी रूप में इस संसार के बन्धन से मुक्त हो जाते हैं।

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु यो यो नियम उच्यते।।9।।
यस्य यस्याश्रमन्यायो न मोक्तव्यो मुमुक्षुभिः।
अतो नियममादृत्य कुर्याद् ध्यानमनन्यधीः।।10।।

वेद, स्मृति एवं पुराणों में जो जो नियम बतलाये गये हैं तथा जिसका जो आश्रम है, उस आश्रम के अनुरूप जो नियम बनाये हैं, मोक्षार्थियों को उन नियमों का त्याग नहीं करना चाहिए। नियमों के अनुसार एकचित्त होकर प्रभु का ध्यान करें।

एतच्चराचरं विश्वं स्वप्नप्रत्ययवत्सुधीः।
मिथ्यादृग्व्यतिरिक्तं यद् दृश्यतेद्धा तथा प्रिये।।11।।
दृग्रूपेणात्मना ज्ञानं सत्यानन्दात्मनः स्वयम्।
एकाकी जितचित्तात्मा चिन्तयेत् तदनन्यधीः।।12।।
सोऽहमित्यात्मनात्मानं त्वाज्ञानपरिकल्पितम्।
एतत् स्वव्यतिरिक्तं यद्यतः स्वेनैव कल्पते।।13।।
न पारमार्थिकं देवि यद्यद् बालो हि कल्पयेत्।।
बालाज्ञयोर्वा को भेदः कल्पेते न तु चक्षुषा।।14।।

1. क. संसृतिनाशाय।

विद्वान् इस चराचर जगत् को स्वप्न के ज्ञान के समान मानते हैं। यह संसार दिखाई पड़ता है, अतः मिथ्या है। कुछलोग इसे मिथ्यादृष्टि से भिन्न अर्थात् वास्तविक मानते हैं। आत्मदृष्टि से ज्ञान को सत्य रूप और आनन्द स्वरूप समझते हुए स्वयं साधक एकाकी होकर चित्त और आत्मा को जीतकर उस ज्ञानमय ब्रह्म का चिन्तन करे कि 'वह ब्रह्म मैं हूँ '(सोऽहम्)। किन्तु मनुष्य अपनी अज्ञानता के कारण इस संसार को स्वप्न से भिन्न वास्तविक मानता है और उसी के अनुसार चलता है। बच्चे जो जो कल्पना करते हैं, वे परम तत्त्व (वास्तविक) नहीं हैं, तब बच्चे और अज्ञानियों में भेद भी कहाँ है? वे दोनों तत्त्वचक्षु से अवधारण नहीं करते हैं।

[1]अयं पन्थाः पुराणः स्यादनुप्राप्तः पुरातनः।
अध्यात्मविद्भिरर्चातो ज्ञापितः स परः स्मृतः।।15।।

ब्रह्मज्ञान का यह प्राचीन मार्ग है, जो परम्परा से परम्परा के द्वारा प्राप्त है। अध्यात्मज्ञानियों ने देवता कीअर्चना के द्वारा इसे लोगों को समझाया है, अतः वह परम तत्त्व है।

आब्रह्मशुद्धवंश्यानां मातापित्रोः कुले च ये।
स्त्रियो वाऽव्यभिचारिण्यः पुरुषाश्चैव धार्मिकाः।।16।।

जो ब्रह्म से लेकर शुद्ध वंशवाले कुल में उत्पन्न माता-पिता से उत्पन्न पुरुष हैं तथा पतिव्रता स्त्रियाँ हैं, वे धार्मिक हैं।

यज्ञाश्च वेदाध्ययनमेधेते प्रतिपूरुषम्।
पूज्यन्तेऽतिथयो यत्र गुरुशिष्यपरम्परा।।17।।
स्वप्नेऽपि चलनं नैव[2] स्त्रीष्वपि ब्रह्मचारिषु।
नियमोऽप्याश्रमस्थेषु कदाचिदपि भामिनि[3]।।18।।

यज्ञ और वेद का अध्ययन ये दोनों प्रति व्यक्ति में वृद्धि प्राप्त करते हैं। जहाँ गुरु-शिष्य की परम्परा और अतिथियों की पूजा होती है। उन आश्रमों में स्थित स्त्रियों और ब्रह्मचारियों के नियमों में स्वप्न में भी विचलन नहीं होता।

1. क. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध। 2. घ. स्वल्पोऽपि स्खलते नैव।3. घ. कदाचिन्न विमुच्यते।

तत्तत्कालेषु[1] दानं हि तदर्थिभ्यः प्रदीयते।
येषु वंशेषु सर्वेषां तेषामेव प्रकाशते।।19।।
ब्रह्म ब्रह्मविदा देवि गुरुशिष्योक्तिशिक्षया।

हे देवि! गुरु और शिष्य द्वारा किए गये उपदेश से जिन वंशों में विहित अवसरों पर प्रार्थियों को दान किए जाते हैं उन वंशों के ब्रह्मज्ञानी के द्वारा ब्रह्म प्रकाशित होते हैं।

अयमेव परं ब्रह्म नान्यत्किञ्चिन्न विद्यते।।20।।
इदमेव परं ब्रह्म ततोऽन्यं नास्ति किंचन।
तदेतदखिलं ब्रह्म सत्यं सत्यं प्रकाशते।।21।।

एक परम ब्रह्म स्वयं है, इससे अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, यह समग्र ब्रह्माण्ड सत्य स्वरूप है, जो निश्चय ही प्रकाशवान् है।

जन्मकोटिसहस्रेषु प्रक्षीणाशेषदुःकृतैः।
कैश्चिदेव नियम्यासूनपरोक्षं निरीक्ष्यते।।22।।
सुखामृतरसास्वादसत्यज्ञानैकरूपता ।
भागाश्रयेण विदुषा स्वयमेवानुभूयते।।23।।
अहो पुण्यमहो धर्म्यं नातः परतरं क्वचित्।
अकृत्येषु च सर्वेषु प्रायश्चित्तमिदं परम्।।24।।

सैकड़ो करोड़ जन्मों की तपस्या से जिन्होंने अपने सभी दुष्कर्म के फलों का नाश कर लिया है, वह कोई कोई प्राणवायु को नियंत्रित कर प्रत्यक्ष रूप में ब्रह्म का साक्षात्कार करते हैं। सुख, अमृत रस का आस्वादन और वास्तविक ज्ञान इन तीनों भेदों को एक रूप में अद्वैत की भावना का आश्रय लेकर विद्वान् स्वयं अनुभव करते हैं। अहो! यह पुण्य है, यह धर्म का फल है, इससे भिन्न कुछ भी नहीं सभी दुष्कर्मों में यही परम प्रायश्चित्त है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमेश्वरस्वरूपाख्यानम् नाम
द्वितीयोऽध्यायः।

1. घ. स्व स्वकालेषु।

अथ तृतीयोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

सर्वज्ञ सर्वलोकेश सर्वदुःखनिषूदन।
सर्वेषां सुगमः[1] पन्थाः को मे वद दयानिधे।।1।।

पार्वती बोलीं– हे सभी लोकों के स्वामी! सबके दुःखों का निवारण करने वाले हे दयानिधि! मोक्ष पाने के लिए ऐसा उपाय बतलायें, जो सबके लिए आसान हो।

ईश्वर उवाच

शृणुष्वावहिता देवि यदेतत्प्रतिपाद्यते।
सर्वेश्वरः सर्वमयः सर्वभूतहिते रतः।।2।।
सर्वेषामुपकाराय साकारोऽभून्निराकृतिः।

हे देवि! मैं जो कह रहा हूँ उसे ध्यानपूर्वक सुनो। निराकार प्रभु जो सबके ईश्वर हैं, सभी रूपों में हैं तथा सभी प्राणियों की भलाई में लगे रहते हैं, सबके उपकार के लिए आकार ग्रहण कर अवतार लेते हैं।

स भक्तवत्सलो लोके संसारीव व्यचेष्टत।।3।।
भक्तानुकम्पया देवो दुःखं सुखमिवान्वभूत्।

भक्तवत्सल भगवान् इस संसार में संसारी प्राणी के समान क्रियाएँ करते हैं और भक्त पर अनुकम्पा के कारण वे प्रभु दुःखों को सुख के समान अनुभव करते हैं।

यदा यदा च भक्तानां भयमुत्पद्यते तदा।।4।।
तत्तद्भक्तस्य चिन्तायै तत्तद्रूपो व्यजायत।

जब जब भक्तों पर किसी प्रकार का भय उपस्थित होता है, तब उन उन भक्तों की चिन्ता करते हुए उसी रूप में अवतार लेते हैं।

मत्स्यकूर्मवराहादिरूपेण परमार्थवित्[2]।।5।।
तत्तत्कालेषु संभूय सर्वेषामप्युपाकरोत्।

मत्स्य, कूर्म, वराह आदि रूप ग्रहण कर परोपकार करनेवाले वे महाप्रभु उन उन कालों में उत्पन्न होकर सबकी भलाई करते हैं।

---

1. घ. निगमः। 2. घ. परमात्मदृक्।

साधूनामाश्रमस्थानां भक्तानां भक्तवत्सलः।।6।।
उपकर्ता निराकारस्तदाकारेण जायते।

साधुओं तथा चारों आश्रमों - ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ एवं संन्यास के भक्तों का उपकार करनेवाले वे भक्तवत्सल भगवान् तब आकार ग्रहण करते हैं।

अजोऽयं जायतेऽनन्तः सान्तोऽभूद् भूतभावनः।।7।।
कदाचिदवतीर्य्याऽयं मन्दभक्तानुकम्पया।

ये अजन्मा हैं फिर भी जन्म लेते हैं, अनन्त होकर भी मरणशील होने की लीला करते हैं, प्राणियों की सृष्टि करते हैं, वे किसी समय हतभाग्य भक्तों पर अनुकम्पा करने के लिए अवतार लेते हैं।

क्षीराब्धेः देवदेवेशो लक्ष्म्या नारायणो भुवि।।8।।
सशेषः शंखचक्राभ्यां देवैर्ब्रह्मादिभिः सह।
त्रेतायुगे दाशरथिर्भूत्वा नारायणो बभौ।।9।।

क्षीरसागर में लक्ष्मी के साथ शयन करनेवाले वे देवेश शेषनाग, शंख, चक्र और ब्रह्मा आदि देवताओं के साथ त्रेता युग में इस संसार में दशरथ के पुत्र के रूप में अवतरित होकर विराजमान हुए।।

शेषोऽभूल्लक्ष्मणो लक्ष्मीः शंखचक्रे च जानकी।
जातौ भरतशत्रुघ्नौ देवाः सर्वेऽपि वानराः।।10।।

शेषनाग के अवतार लक्ष्मण हुए, लक्ष्मी जनकनन्दिनी जानकी के रूप में अवतरित हुईं। शंख और चक्र के अवतार भरत और शत्रुघ्न हुए तथा सभी देवता वानर के रूप में अवतरित हुए।

बभूवुरेवं सर्वेऽपि देवर्षिभयशान्तये।
तत्र नारायणो देवो श्रीराम इति विश्रुतः।।11
सर्वलोकोपकाराय भूमौ सौर्येष्ववातरत्।[1]

इस प्रकार सभी देवों और ऋषियों के भय को दूर करने के लिए भगवान् नारायण धराधाम पर अवतरित हुए, जिनमें सभी लोकों के उपकार के लिए सूर्यवंशियों के बीच श्रीराम के नाम से प्रख्यात होकर अवतरित हुए।

---
1. घ. सोऽयमवातरत्।

तपः कुर्वन्ति तं केचिदपरोक्षं निरीक्षितुम्।।
पञ्चाग्निमध्ये ग्रीष्मेषु वर्षासु दिवि शेरते।।12

कुछ लोग उस भगवान् श्रीराम के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए तपस्या करते हैं। कुछ तपस्वी ग्रीष्मकाल में पाँच अग्नियों के बीच (चारों दिशाओं में अग्नि तथा ऊपर प्रचण्ड सूर्य- ये पाँच अग्नियाँ कहलाती है।) वर्षा ऋतु में खुले आकाश के नीचे तपस्या करते हैं।

शिशिरेषु जलेष्वेवं तपः केचन तेपिरे।
केचिद् भिक्षां पर्यटन्ति कृत्वा धारणपारणम्[1]।।13।।
शोषयन्ति पुनर्देहमपरे कृच्छ्रचर्यया।

इसी प्रकार जाड़े के दिनों में जल में खड़ा होकर कुछ लोग तपस्या करते हैं, कुछ लोग भिक्षाटन कर जो मिले उसी से भोजन करने का व्रत करते हुए तथा अन्य लोग न्यूनतम भोजन करने का व्रत करते हुए शरीर को सुखाते हैं।

कालश्चान्द्रायणैरेव कैश्चित् पार्वति नीयते।।14।।
शाकमेवापरे देहमश्नन्तः शोषयत्यहो।

हे पार्वती! कुछ लोग चान्द्रायण व्रत कर समय व्यतीत करते हैं तथा कुछ तो केवल साग खाते हुए अपने शरीर को सुखा डालते हैं।

इह केचिद् वरारोहे नक्तायाचितभोजना।।15।।
चिन्तयन्ति चिरं कालं वनेष्वेकाकिनो[2] हृदि।

हे पार्वती! कुछ लोग इस संसार में रात्रि में एक बार विना माँगे जो मिल जाये वही खाकर, वन में अकेले रहकर चिरकाल तक अपने हृदय में भगवान् का चिन्तन करते रहते हैं।

अनन्यमनसः शश्वद् गणयन्तोऽक्षमालया।।16।।
जपतो रामरामेति सुखामृतनिधौ मनः।
प्रविलीयामृतीभूय सुखं तिष्ठन्ति केचन।।17।।

एकाग्रभाव से रुद्राक्ष की माला पर गिनते हुए राम, राम का जप लगातार करते हुए सुख रूपी अमृत के भाण्डार में मन को एकाकार कर अमरत्व पाकर सुख से रहते हैं।

---

1. घ. धारणपूरणे। 2. घ. बिल्ववनेष्वेकाकिनो।

मत्पश्चिमाभिमुख्येन केचित्प्रासादकोटरे।
भावयन्ति चिरं देवि मम तत्प्राप्तये बुधाः।।18।।
परिचर्य्यापराः केचित्प्रासादेष्वेव शेरते।।

कुछ समझदार लोग मुझसे पश्चिम में अभिमुख बैठकर अर्थात् पूजा-स्थल के पश्चिम में पूर्वाभिमुख होकर अपने घर में हीं रहते हुए मेरे उस स्वरूप की प्राप्ति के लिए उनकी परिचर्या (सेवा) करते हुए घर में ही जीवन व्यतीत करते हैं।

[1]मनुष्यस्य चिरं देवि भगवत्प्राप्तये बुधाः।।19।।
मनुष्यमिव तं द्रष्टुं व्यवहर्तुं च बन्धुवत्।
अध्यापनाय विद्यानां योद्धुमप्यपरे तपः।।20।।
चक्रिरे वामनो भूत्वा केचिद्द्रोषेण तेपिरे[2]।
क्षीराहाराः परे चाब्धेस्तीरेष्वेव निषेविरे।।21।।
चञ्चलाक्ष्यथ केषांचित्तपः स्मर्तुं न शक्यते।
किं करिष्यति देवोऽयं एवं दृष्ट्वा सुदारुणम्।।22।।
तपस्तपस्विनामेतत्कृपयानुग्रहादिह ।
मानुषीभूय सर्वेषां भक्तानां भक्तवत्सलः।।23।।
ध्यानमात्रेण देवेशि महापातकनाशकृत्।
कृतेन स्मरणाभ्यां च हत्याकोटिनिवारणः।।24।।

मनुष्यों की कालगणना के अनुसार चिरकाल तक भगवान् को पाने के लिए, उन्हें मानवाकार में देखने और सखा की तरह उनके साथ व्यवहार करने के लिए, उन्हें सभी विद्या पढ़ाने के लिए तथा उनके साथ युद्ध भी करने के लिए, कुछ कायर भगवान् विष्णु के शत्रु राक्षस बनकर आक्रोश के साथ तप करने लगे। वे केवल दूध पीकर सागर के उस पार ही सेवा करने लगे। हे चंचल आँखोंवाली पार्वती! ऐसे किसी ऐरे-गैरे की तपस्या तो स्मरण नहीं की जा सकती है, किन्तु ये देव भी क्या करेंगे? इस दारुण तपस्या को देखकर कृपापूर्वक अनुग्रह कर इस संसार में मनुष्य होकर वे सभी भक्तों के लिए भक्तवत्सल भगवान् बने। हे देवी! भगवान् तो केवल स्मरण करने से ही महान् पापों का नाश करते हैं और कर्म और स्मरण दोनों करने से तो कोटि कोटि हत्याओं के भी महापाप का निवारण करते हैं।

रामरामेति रामेति ये वदन्त्यपि पापिनः।
पापकोटिसहस्रेभ्यस्तानुद्धरति नान्यथा।।25।।

1. घ. दो चरण अनुपलब्ध। 2. घ. केचिद्द्रोष्ठीषु तेपिरे।

जो पापी राम, राम, राम इस प्रकार उच्चारण करते हैं उन्हें भगवान् करोड़ों पापों से उद्धार करते हैं, यह निष्फल नहीं होता है।

उग्रेण तपसा तेषां सोऽभूदेवं दयानिधिः।
यतो वाचो निवर्त्तन्ते मनोभिः सह योगिनाम्।।26।।
भागधेयेन सर्वेषां स प्रत्यक्षमजायत।
अहोभाग्यातिरेकेण मनुष्योऽपि व्यवाहरत्।।27।।
तपो ददाति सौभाग्यं तपो विद्यां प्रयच्छति।
तपसा दुर्ल्लभं कञ्चिन्नास्ति भामिनि देहिनाम्।।28।।

उनकी उग्र तपस्या से वे पृथ्वी पर इस प्रकार उत्पन्न हुए। योगियों के मन के साथ वाणी भी जहाँ जाकर लौट जाती है, वे परब्रह्म परमेश्वर सबके भाग्य से प्रत्यक्ष अवतरित हुए। भक्तों के अहोभाग्य में वृद्धि होने से मनुष्य ने भी उनके साथ देवता जैसा व्यवहार किया। हे देवी! पार्वती! तपस्या से सौभाग्य और विद्या की प्राप्ति होती है। मनुष्यों के लिए ऐसा कुछ भी नहीं है, जो तपस्या से नहीं मिले।

अवाप्तसर्वकामोऽयं वाङ्मनोऽगोचरो विभुः।
मनुष्य इव मानुष्यमाधाय भुवि मोदते।।29।।
अहो कृपातिरेकेण सर्वत्र समुपैति वै।
एतस्मादपि किं लाभादधिकं गजगामिनि।।30।।
तपो धनं तपो भाग्यं तपः सर्वत्र सर्वदम्।
अतस्तपस्विनां देवि दासत्वमपि दुर्लभम्।।31।।

सभी प्रकार की कामनाओं को प्राप्त कर लेनेवाले ये प्रभु, जो वाणी और मन से भी अप्रत्यक्ष हैं, वे मानव का रूप धारण कर मनुष्य के समान इस संसार में प्रसन्न हैं। अहोभाग्य है कि अत्यधिक कृपा करने के कारण वे सभी जगह पहुँच जाते हैं। हे गजगामिनी पार्वती! इससे अधिक लाभ और क्या हो सकता है? अतः हे देवि! तपस्या धन है, तप ही भाग्य है, तप से ही हर स्थानों पर सब कुछ प्राप्त हो जाते हैं। अतः हे देवी पार्वती! जो तपस्या करते हैं, उनके लिए दासता दुर्लभ है; क्योंकि तपस्वी देवस्वरूप हो जाते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां रामावतारोपक्रमम् नाम तृतीयोऽध्यायः।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

पार्वत्युवाच

योगीन्द्रं वन्द्यचरणद्वन्द्वानन्दैकलक्षण।
कथमेनमुपास्यैव मुक्तिं सर्वेऽपि भेजिरे।।1।।
तदेतद् ब्रूहि देवेश यद्यस्ति करुणा मयि।

पार्वती बोलीं– हे देवेश! आपके चरणकमल की वन्दना सभी करते हैं और आप एकमात्र आनन्दस्वरूप हैं। यदि मेरे ऊपर करुणा हो, तो कृपा कर यह बतलाइये कि योगियों के राजा श्रीराम की कैसी उपासना कर सब लोगों ने मुक्ति पायी थी।

ईश्वर उवाच

हैरण्यगर्भसिद्धान्तरहस्यमनघे शृणु।।2।।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते मोहाद् दौर्भाग्यव्याधिसाध्वसात्।
भद्रे तदभिधास्यामि तत्सारग्राहिणी भव।।3।।

भगवान् शिव ने कहा– हे निष्कलुष देवि! हिरण्यगर्भ भगवान् विष्णु का जो सिद्धान्त है, उसका रहस्य सुनो। इसे जानकर दुर्भाग्य और व्याधियों को मिटाते हुए लोग संसार के मोह का भी त्याग कर देते हैं। हे भद्रे! मैं वह रहस्य बतला रहा हूँ; उसके मूलतत्त्व को ग्रहण करो।

पूर्वं ब्रह्मा तपस्तेपे कल्पकोटिशतत्रयम्।
मुनीन्द्रैर्बहुभिः सार्द्धं दुर्द्धर्षानशनव्रतम्।।4।।

प्राचीन काल में ब्रह्मा ने तीन सौ करोड़ वर्ष तक निराहार रहकर बहुत सारे मुनिश्रेष्ठ के साथ तपस्या की।

पुरस्कृत्याग्निमध्यस्थस्तदाराधनतत्परः।
आदरातिशयेनास्य नैरन्तर्य्येर्चनादिना।।5।।

अग्नि के मध्य में रहकर और विष्णु को समक्ष में रखकर आदरपूर्वक लगातार पूजा-अर्चना करते हुए वे आराधना करते रहे।

चिराय देवदेवोऽपि प्रत्यक्षमभवत्तदा।
किञ्च पुण्यातिरेकेण सर्वेषां तस्य च प्रिये।।6।।

बहुत दिनों के बाद पुण्य की वृद्धि के कारण ब्रह्मा तथा अन्य सभी मुनियों के सामने देवों के स्वामी भगवान् विष्णु प्रकट हुए।

नवनीलाम्बुदश्यामः सर्वाभरणभूषितः।
शङ्खचक्रगदापद्मजटामुकुटशोभितः ॥7॥

भगवान् नवीन एवं नीले मेघ के समान श्यामल वर्ण के थे, उनके शरीर पर सभी गहने शोभित हो रहे थे तथा शंख, चक्र गदा, कमल, जटा और मुकुट से वे सुशोभित थे।

किरीटहारकेयूररत्नकुण्डलमण्डितः ।
संतप्तकाञ्चनप्रख्यपीतवासोयुगावृतः ॥8॥

मुकुट, हार, बाजूबन्द, रत्न के कुण्डल से वे विभूषित थे और तपे हुए सोने के समान पीले रंग के जोड़े वस्त्र उनके शरीर पर थे।

तेजोमयः सोमसूर्य्यविद्युदुल्काग्निकोटयः ।
मिलित्वाविर्भवन्तीव प्रादुरासीत्पुरः प्रभुः॥9॥

भगवान् इस प्रकार सामने प्रकट हुए जैसे करोडों चन्द्रमा, सूर्य, बिजली, उल्का और अग्नि एक साथ मिलकर प्रकट हुए हों।

स्तम्भीभूय तदा ब्रह्मा क्षणं तस्थौ विमोहितः।
तुष्टाव मुनिभिः सार्द्धं प्रणम्य च पुनः पुनः॥ 10॥

कुछ देर तक तो ब्रह्मा घबराकर खम्भे की तरह ठिठक गये। पुनः मुनियों के साथ बार बार उन्हें प्रणाम कर स्तुति करने लगे।

धन्योऽस्मि कृतकृत्योस्मि कृतार्थोस्मीह बन्धुभिः।
प्रसन्नोऽसीह भगवन् जीवितं सफलं मम॥11॥

हे भगवन्! आज मैं अपने बन्धुओं के साथ धन्य हो गया; आज मेरे सभी कार्य सम्पन्न हो गये। हे भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं, इससे मेरा जीवन सफल हो गया।

कथं स्तोष्यामि देवेश भगवन्निति चिन्तयन्।
ऋग्यजुःसामवेदैश्च शास्त्रैर्बहुभिरादरात्॥12॥
साङ्गैर्मन्वादिभिर्धर्मप्रतिपादनतत्परैः ।
तुष्टावेश्वरमभ्यर्च्य सन्तुष्टो मुनिभिः सह॥13॥

'हे देवेश! मैं कैसे आपकी स्तुति करूँगा' यह सोचते हुए मुनियों के साथ सन्तुष्ट होकर ब्रह्मा ने वेदांग सहित ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अन्य अनेक शास्त्र, मनुस्मृति आदि धर्म को बखानने वाले शास्त्रों से भगवान् की अर्चना कर उनकी स्तुति की—

त्वमेव विश्वतश्चक्षुर्विश्वतोमुख उच्यसे।
विश्वतोबाहुरेकः सन् विश्वतः स्यात्तथा परः।।14।।
जनयन् भूर्भुवर्लोकौ स्वर्लोकं सर्वशासकः।
अक्षिभ्यामपि बाहुभ्यां कर्णाभ्यां भुवनत्रयम्।।15।।
पद्भ्यां च नासिकाभ्यां[1] च सर्वं सर्वत्र पश्यसि।
समाधत्से शृणोष्येतत् सर्वं गच्छसि सर्वकृत्।।16।।
जिघ्रस्येवं न ते किञ्चिदविज्ञातं प्रभोस्त्विह।
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्वमेव ननु केशवः।17।।
सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्।
पृथिव्यप्तेजसां रूपं मरुदाकाशयोरपि।।18।।
कार्यं कर्ता कृतिर्देव कारणं केवलं परम्।
अणोरणीयान् महतो महीयान् मध्यतः स्वयम्।।19।।
मध्योऽसि निर्विकल्पोऽसि कस्त्वां देवावगच्छति।

हे भगवन्! आपके नेत्र सभी दिशाओं में हैं; आपके मुख भी सभी दिशाओं में हैं तथा आपकी बाहें भी सभी ओर फैली हुई हैं, फिर भी आप संसार से परे हैं। आप दोनों आँखों, बाहुओं और कानों, पैरों और नासिकाओं से भूलोक, भुवर्लोक, और स्वर्गलोक इन तीनों को उत्पन्न कर सब पर शासन करते हैं, सभी जगहों पर सब कुछ देखते-सूँघते हैं; सब कुछ सुनकर उनका समाधान करते हैं और सारे कार्य करते हैं। हे प्रभो! ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे आप जानते न हों। आप ही ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं तथा केशव भी आप ही हैं। पुरुष रूप में आपके हजारों शिर हैं, हजारों नेत्र हैं तथा हजारों पैर हैं। हे देव!, पृथ्वी, जल, अग्नि के तथा मरुत् और आकाश स्वरूप आप हैं। आप ही करने योग्य, करनेवाले, किये गये पदार्थ तथा क्रिया के परम साधन भी आप ही हैं। हे देव! आप अणु से भी सूक्ष्म और महत् से भी महान् हैं और उनके बीच में भी आप ही हैं; आपका विकल्प कोई नहीं है; आपको भला कौन जान सकता है?'

---

1. घ. पादाभ्यां नासिकाभ्यां च।

एवमेवादिबहुस्तोत्रैस्तुतः स परमेश्वरः।।20।।
वैदिकैः कृपया विष्णुर्ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।

इस प्रकार के वेदोक्त स्तोत्रों से जब ब्रह्मा ने भगवान् की स्तुति की, तब विष्णु ने ब्रह्मा से कहा–

स्तुतस्तुष्टोऽस्मि ते ब्रह्मन् उग्रेण तपसाधुना।।21।।
वृणीष्व पदमिष्टं[1] ते दास्यामि कमलोद्भव।
इत्युक्तः सोऽब्रवीत् तेन विष्णुना प्रभविष्णुना।।22।।

'हे ब्रह्मा! मैं आपकी स्तुति और उग्र तपस्या से अब सन्तुष्ट हूँ। हे कमलोद्भव! तुम्हे जो स्थान चाहिए वह माँगो; मैं तुम्हें दूँगा।' विष्णु के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर ब्रह्मा बोले।

ब्रह्मोवाच

तुष्टोऽसि यदि देवेश दास्यं मे स्वीकरिष्यसि।
अभीष्टं देव देवेश यद्यस्ति करुणा मयि।।23।।

ब्रह्माजी बोले– हे देवेश! यदि आप सन्तुष्ट हैं और मेरे ऊपर यदि आपकी करुणा है, तो मेरी इस दासता को स्वीकार करें, यह मैं चाहता हूँ।।

असौभाग्येन दारिद्र्यदुखेनाहं सुदुःखितः।।
एतेऽपि मुनयो देव माययात्यन्तदुःखिताः।।24।।

हे देव! मैं सुन्दर भाग्य से हीन तथा दरिद्रता के दुःख से दुःखी हूँ। ये मुनिगण भी माया के फेर में अत्यन्त दुःखी हो रहे हैं।

प्रतिभाति च दैवेन[2] सर्वमस्माकमीदृशम्।
किं करिष्यामि देवेश ब्रूहि मे पुरुषोत्तम।।25।।

हे पुरुषोत्तम! हमलोगों का सबकुछ इसी प्रकार से भाग्य के द्वारा प्रेरित प्रतीत हो रहा है। ऐसी स्थिति में मैं क्या करूँ यह कहें।

कामक्रोधादिभिर्दुःखैर्दुष्टाः सर्वापि मम प्रजाः।
पूर्वार्जितैर्विशेषेण न कश्चिदवशिष्यते।।26।।

पूर्वजन्म में अर्जित कर्म से तथा काम, क्रोध आदि के दुःख से मेरी सारी प्रजा दोषग्रस्त हो गयी है। ऐसा कोई नहीं है, जो इन दोषों से अछूता हो।

---

1. क. यदभीष्टं। 2. ख. वेदेन।

को वोपायो मनुष्याणां भक्तानां भक्तवत्सल।
एतच्छरीरपातान्ते नः परं मुक्तिसिद्धये।।27।।

हे भक्तवत्सल भगवान्! मनुष्यों और भक्तों केलिए ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे हमें इस शरीर का अन्त होने पर मुक्ति मिले।

इहाप्यस्माकमैश्वर्य्यं वै दुष्टेष्टार्थसिद्धये[1]।
एवमुक्तः स देवोऽस्मै भुक्तिमुक्तिप्रसिद्धये।।28।।
किञ्चिद् विचार्य भगवान्[2] षडक्षरमुपादिशत्।

स्वर्ग में भी हम देवों का ऐश्वर्य दोषपूर्ण इच्छित्वस्तुओं की सिद्धि के लिए हैं।" ऐसा कहने पर भगवान् ने कुछ सोचकर भोग और मोक्ष की सिद्धि के लिए छह अक्षरों वाले मन्त्र का उपदेश किया।

एकैकं वर्णविन्यासं क्रमाच्चाङ्गानि षट् पुनः[3]।।29।।
तद्विधिं विधये प्रादात् पञ्चमन्त्राक्षराणि च।
रहस्यं देवदेवोऽपि तं मिथः समबोधयत्।।30।।

हे मुनि! भगवान् ने भी उस षडक्षर मन्त्र एक एक कर वर्णविन्यास, क्रमशः न्यास आदि छह अङ्ग उसकी विधि तथा रहस्य बतला दिया तथा पंचाक्षर मन्त्र का भी उपदेश किया।

तस्य तत्प्राप्तिमात्रेण तदानीमेव तत्फलम्।
सर्वाधिपत्यं सर्वज्ञं भावोऽप्यस्याभन् तदा।।31।।

ब्रह्मा ने भी ज्यों ही उसे प्राप्त किया, उस मन्त्रका फल तत्काल ही मिल गया। ब्रह्मा उसी क्षण सबके स्वामी बन गये तथा सारा ज्ञान उन्हें मिल गया।

किं चास्य भगवत्त्वं च यदिष्टं तदभूदपि।
सर्वेश्वरप्रसादेन तपसा किं न लभ्यते।।32।।

इतना ही नहीं, ब्रह्मा जो चाह रहे थे, वह उन्हेंमिल गया; वे भगवान् भी हो गये। भला सबके स्वामी भगवान् विष्णु की कृपा तथा तपस्या से क्या कुछ नहीं मिल जाता!

मुनीनामपि सर्वेषां तदा ब्रह्मा तदाज्ञया।
उपादिदेश तत्सर्वं ततस्तु विष्णुरब्रवीत्।।33।।

---

1. घ. वैदुष्येष्टार्थसिद्धये। 2. घ. कृपया। 3. क. षण्मुने

तब भगवान् विष्णु की आज्ञा से ब्रह्मा ने सभी मुनियों को इस मन्त्र का उपदेश किया। तब विष्णु बोले—

ऋषिर्भवास्य मन्त्रस्य त्वं ब्रह्मन् सर्वमन्त्रवित्।
रामोऽहं देवता छन्दो गायत्री छन्दसां परा।।34।।

हे ब्रह्मा! आप मन्त्रों के ज्ञाता हैं, अतः इस मन्त्र के ऋषि आप हों। मैं राम इस मन्त्र का देवता हूँ तथा छन्दों में श्रेष्ठ गायत्री इस मन्त्र का छन्द होगा।

मान्तो[1] यान्तो भवेद्बीजं सर्वमाद्यफलप्रदम्।[2]
नमः शक्तितयोद्दिष्टो नमोऽन्तो मन्त्रनायकः।।35।।

मकार (राम्) एवं यकार (रामाय) से अन्त होनेवाले इसके बीज-मन्त्र हों तथा 'नमः' इस मन्त्र की शक्ति हो। इस प्रकार 'नमः' से अन्त होनेवाला यह मन्त्रों में नायक बने।

रामाय मध्यमो ब्रह्मन् तस्मै सर्वं निवेदयेत्।
इह भुक्तिश्च मुक्तिश्च देहान्ते संभविष्यति।।36।।

हे ब्रह्मा! इस मन्त्र के बीच में 'रामाय' यह पद रहेगा और उसी राम को यह मन्त्र निवेदित करें। इससे संसार में भोग तथा देहान्त होने पर मोक्ष मिलेगा।

यदन्यदप्यभीष्टं स्यात् तत्प्रसादात् प्रजायते।
अनुतिष्ठादरेणैव निरन्तरमनन्यधीः।।37।।

इसके अतिरिक्त भी यदि कोई इच्छा हो, तो श्रीराम की कृपा से पूरी होगी। एकाग्रचित्त होकर लगातार इस मन्त्र का अनुष्ठान करें।

चिरं मद्गतचित्तस्तु मामेवाराधयेच्चिरम्।
मामेव मनसा ध्यायन् मामेवैष्यसि नान्यथा।।38।।

बहुत दिनों तक मुझमें मन लगाकर, मेरा ही ध्यान करते हुए जो मेरी उपासना करेंगे, वे मुझे ही पा लेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

तत्र तदेतद् विस्तार्य्य शिष्येभ्यो ब्रूहि गौरवम्।
इत्युक्त्वान्तर्दधे देवस्तत्रैव कमलेक्षणः।।39।।

हे ब्रह्मा! संसार में इसीका विस्तार कर अपने शिष्यों से इस मन्त्र की गरिमा का बखान करें।" ऐसा कहकर कमलनयन भगवान् विष्णु वहीं अन्तर्धान हो गये।

1. घ. सान्तो। 2. ख. भवेद्बीजमाद्यमाद्यफलप्रदम्।

प्रजापतिश्च भगवान् मुनिभिः सार्द्धमन्वहम्।
अन्वतिष्ठद् विधानेन निक्षिप्याज्ञां सिरस्यथ।।40।।

तब भगवान् प्रजापति ब्रह्मा ने विष्णु की आज्ञा सिर पर चढ़ाकर मुनियों के साथ विधानपूर्वक इस मन्त्र का अनुष्ठान किया।

ब्रह्मा तदानीं सर्वेषामुपदेष्टा बभूव ह।
आर्ये तवापि तेनैव सर्वाभीष्टं भविष्यति।।41।।

हे देवी पार्वती! तब ब्रह्मा सबके लिए इस मन्त्र के उपदेशक हुए। इसी मन्त्र से तुम्हारी भी सभी कामनाओं की पूर्ति होगी।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये ब्रह्मणा षडक्षरमन्त्रग्रहणम् नाम चतुर्थोऽध्यायः।।4।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

पुरातन पुराणज्ञ सर्वाख्यानार्थवित्तम।
ततः किमकरोद् विप्रश्रेष्ठागस्त्याम्बिका तदा।।2।।
ईश्वरः केन रूपेण तामेतदवबोधयत्[1]।

सुतीक्ष्ण बोले— हे विप्रों में श्रेष्ठ अगस्त्य! आप तो प्राचीन काल से हैं, पुराणों के ज्ञाता हैं, सभी कथाओं के प्रयोजनों को आप भलीभाँति जानते हैं। भगवान् शंकर ने इसके बाद किस प्रकार पार्वती को समझाया, यह कहें।

अगस्त्य उवाच

तदादि हृदये रामं निधाय कमलेक्षणा।।3।।
मुक्तये निश्चिनोति स्म तमनन्यपरायणा।

अगस्त्य ने कहा— इस दिन से पार्वती श्रीराम में एकाग्रचित्त होकर अपने हृदय में बसाकर मुक्ति के लिए मन बनाने लगी।

हैरण्यगर्भसिद्धान्तरहस्यश्रवणात् परम्।।4।।
कामादिग्रस्तता तस्याश्चिरमेव न्यवर्तत[1]।

1. घ. तामेव तदबोधयत्।

पार्वती के मन में काम आदि जो घर कर गये थे, हिरण्यगर्भ के सिद्धान्त का रहस्य सुनने के बाद वे सब मिट गये।

ईश्वरस्तां प्रियां सम्यज्ज्ञानमात्रेच्छया स्थिताम्।।5।।
न्यवर्त्तत ततो ज्ञात्वा संसारोच्छित्तिशङ्कया।

संसार के विनाश की आशंका से भगवान् शिव ने केवल ज्ञान की इच्छा रखनेवाली पार्वती को रोक दिया।

तामब्रवीच्च भगवानीश्वरः सर्वरूपधृक्।।6।।
मूलप्रकृतिरार्य्ये त्वं पुरुषोऽहं पुरातनः।

सभी रूपों को धारण करनेवाले भगवान् शिव ने कहा कि हे आर्ये! मैं पुरातन पुरुष हूँ और तुम मूल प्रकृति हो।

कारणं जगदुत्पत्तेरावान्तदऽनवेक्षणम् ।।7।।
कुर्वहि स्यात्तदुच्छित्तिर्यदि किं तद्धितं तव।
कल्याणि मम किं तुल्यमावयोर्न तु तत्परम्।।8।।

हे कल्याणि! जगत् की उत्पत्ति के कारणस्वरूप हमदोनों हैं और हमदोनों ही अन्त में (प्रलय-काल में) उसकी देखभाल छोड़ देते हैं, जिससे वह विनष्ट हो जाता है। यदि हम इस संसार का विनाश कर देंगे (अर्थात् सभी प्राणियों को मोक्ष मिल जाये तो संसार कैसे चलेगा) तो इससे तुम्हारा और मेरा क्या लाभ? हमलोगों के समान या हमसे आगे भी कोई नहीं है।

कार्यं हि करणाभावे कुत्र सम्पद्यते वद।
आवयोः सम्भविष्यन्ति सतोः कल्याणि देवताः।।9।।

हे आर्ये! कारण के अभाव कार्य कैसे होगा, यह तो कहो! हम दोनों के अस्तित्व में रहने पर ही तो देवता भी उत्पन्न होंगे।

त्वत्प्रसादादिदं सर्वं न कदाचिद् गमिष्यति।
एवं च सति किं देवि सर्वं त्यक्तुमपेक्षसे।।10।।
न युक्तमेतत् किमपि त्यक्तुं[2] देव्यधुना त्वया।

तुम्हारी ही कृपा से तो यह सब है और कभी समाप्त भी नहीं होगा। इस प्रकार क्या तुम सबकुछ छोड़ सकती हो! इसलिए हे देवी! इस समय सबकुछ छोड़ देना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।

---

1. घ. व्यवर्तत। 2. घ. वक्तुं।

इत्युक्ता साब्रवीद्देवी नीलोत्पलनिरीक्षणा।।11।।
प्राणनाथाधुना किं मे कर्त्तव्यमिति साब्रवीत्।
इयं सद्वासना मत्तो नैवोच्छिन्ना[1] भवेत्प्रभो।।12।।
कदाचिदपि देवेश त्वं तथानुगृहाण माम्[2]।

तब इस प्रकार कही गयी पार्वती ने कहा– हे प्राणनाथ! मुझे क्या करना चाहिए, जिससे मेरे मन में आपके प्रति जो आसक्ति है, वह मुझसे कभी अलग न हो। हे देवेश! यह बतलाकर मेरे ऊपर अनुग्रह करें।

तथोक्तः सोऽब्रवीदेनां महीध्रतनयां पुनः।।13।।
श्रीरामाराधनं देवि तदर्थं[3] प्रतिवासरम्।

इस प्रकार कहने पर भगवान् शिव ने हिमालय की पुत्री पार्वती से कहा– 'हे देवि! इसलिए प्रतिदिन श्रीराम की आराधना करो।'

आराधयोपकरणैरन्यथा मा कृथाः प्रिये।।14।।
एतेनैवाभयं किञ्चिदिहामुत्र भविष्यति।
कलौ संकीर्त्तनेनैव सर्वाघौघं व्यपोहति।।15।।
आराधनेन साङ्गेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
किं वक्तव्यं प्रिये सर्वं मनसा चिन्तितं यतः।।16।।

सामग्रियों से ही आराधना करो, दूसरे प्रकार से नहीं। इसी से इस संसार में और परलोक में अभय मिलेगा; क्योंकि कलियुग में संकीर्तन और चन्दन, फूल, अक्षत आदि से आराधना करने से ही सभी प्रकार के पाप नष्ट हो जाते हैं। हे प्रिये! जब तुमने मन में ठान ही लिया है, तो और क्या कहूँ।

एवमाराधनेनैव भवत्येव च नान्यथा।
न गृही ज्ञानमात्रेण परत्रेह च मंगलम्।।17।।
प्राप्नोति चन्द्रवदने दानहोमादिभिर्विना।

इस प्रकार की आराधना करने से ही मोक्ष की प्राप्ति होती है; क्योंकि जो गृहस्थ है, वह केवल ज्ञान प्राप्त कर इस संसार में और परलोक में दान, होम आदि के विना मंगल नहीं पाता है।

गृहस्थो यदि दानानि दद्यान्न जुहुयादपि।।18।।

1. घ. नैवोत्सन्ना। 2. घ. वै 3. घ. तदमूं।

पूजयेद् विधिना नैव कः कुर्यादितदन्वहम्[1]।

गृहस्थ यदि प्रतिदिन दान न करे, होम नहीं करे और विधिपूर्वक पूजा नहीं करे, तो भला कौन करेगा?

न ब्रह्मचारिणो दातुमधिकारोऽस्ति भामिनि।।19।।
गृहिभ्योऽन्यत्र सर्वेभ्यः को वा दास्यत्यपेक्षितम्।
नारण्यवासिनां शक्तिर्न ते सन्ति कलौ युगे।।20

हे भामिनि! ब्रह्मचारी को दान करने का अधिकार नहीं है। तब गृहस्थ को छोड़कर कौन सबको दान देगा? वन में रहनेवाले वानप्रस्थियों को तो इस कलियुग में दान करने की शक्ति ही नहीं है।

[2]परिव्राज्ज्ञानमात्रेण दानहोमादिभिर्विना।
सर्व्वदुःखपिशाचेभ्यो मुक्तो भवति नान्यथा।।21।।
परिव्राडविरक्तश्च विरक्तश्च गृही तथा।
कुम्भीपाके निमज्जेते[3] तावुभौ कमलानने।।22।।

संन्यासी तो केवल ज्ञान प्राप्त कर ही दान होम आदि के विना भी सभी दुःख रूपी पिशाच से मुक्त पा लेते हैं, दूसरे प्रकार से नहीं। यदि संन्यासी संसार में आसक्त हो और गृहस्थ के मन में वैराग्य हो, तो दोनों कुम्भीपाक नरक में जा डूबते हैं।

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च मङ्गलैर्मङ्गलार्थिनः[4]।।23।।
पूजोपकरणैः कुर्य्युर्दद्युर्दानानि चार्हणाम्।
चन्दनागरुकस्तूरीकर्प्पूरैश्चैव चम्पकैः।।24।।
पञ्चामृताभिषेकैश्च पुष्पैस्तामरसैरपि।
पुष्पमालैश्च बहुभिर्दूर्वाभिश्चाक्षतैः सह।।25।।
नीलोत्पलैर्मल्लिकैश्च करवीरैश्च चम्पकैः।
जातीप्रसूनैर्बिल्वैश्च पुन्नागैर्बकुलैरपि।।26।।
कदम्बैः केतकीपुष्पैः करुणाशोककिंशुकैः।
नागबाणादिपुष्पैश्च[5] गन्धवद्भिर्मनोहरैः।।27।।
प्रत्यग्रैः कोमलैश्चैव पूजयेयुः प्रयत्नतः।
पल्लवैश्चैव पत्रैश्च जलस्थलसमुद्भवैः।।28।।

---

1. घ. कः कुर्यात्तदनुग्रहम्। 2. घ. श्लोक सं. 21 अधिक है। 3. क. तु पच्येते।4. घ. मङ्गले! मङ्गलार्थिनः। 4. घ. नागरङ्गादिपुष्पैश्च।

एवमादिभिरन्यैश्च पुष्पैर्बहुभिरन्वहम्।
सम्यक् सम्पाद्य यत्नेन शक्त्या भक्त्या रघूद्वहम्।।29।।

इसलिए पुण्यमयी स्त्रियाँ और गृहस्थ जो मंगल चाहते हों, वे दान करें और मांगलिक पूजा सामग्रियों चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर से पूजा करें; पंचामृत से अभिषेक करें; फूलों की माला, दूर्वा, अक्षत से तथा चम्पा, तामरस (लालकमल), नीलकमल, जूही, चम्पा, चमेली, नागकेसर, करवीर, वकुल, बेल का फूल, कदम्ब, केतकी फूल, मल्लिका, अशोक, पलाश, नाग, बाण आदि सुन्दर, सुगन्धित फूलों से अर्चना करें, जिनकी पंखुरियाँ आगे की ओर हों, कोमल हों, इनसे पूजा करें। नये पल्लव, जल एवं स्थल पर उत्पन्न पत्रों से तथा इस प्रकार के अन्य पत्रों-पुष्पों से प्रतिदिन शक्ति के अनुसार सभी सामग्रियाँ जुटाकर श्रीराम की पूजा करें।

त्रिकालमेककालं वा पूजयेयुरहर्निशम्।
[1]कक्कोलैलापूगफलैस्तथाजातिफलैरपि ।
प्रत्याहृतैर्बहुविधैः पिष्टकैरिष्टसिद्धये।।30।।

दिन-रात, प्रातःकाल, मध्याह्नकाल एवं सन्ध्याकाल अथवा केवल प्रातःकाल में कक्कोल, इलायची, सुपारी, जायफल आदि अनेक प्रकार के संगृहीत साधनों से तथा चावल के पीठा से कामना की सिद्धि के लिए पूजा करें।

क्षीरनीराज्यपक्वैश्च फेनापूपवटादिभिः।
दध्यौदनान्यपानीयैः सूपादिव्यञ्जनैरपि।।31।।
[2]वटीवटोपदंशादिपदार्थैर्बहुविस्तरैः ।

दूध, जल और घी में पकाये हुए फेना, फेन की तरह बनने वाला खाद्य पदार्थ बतासा, घेबर आदि, बड़ी तथा दही, भात, अन्य पेय पदार्थ और दाल, तरकारी, रोटी, गोलाकार खाद्य पदार्थ, चटनी या आचार आदि विभिन्न प्रकार के खाद्य पदार्थों से पूजा क ।

आरार्तिकैर्धूप दीपैः[3] षडावृत्त्योप कल्पितैः।।32।।
[4]शङ्खचक्रगद ाब्जगरुडान्तोपकल्पितैः ।
बहुभिर्दीपमा ाभिरर्चयेयुरहर्निशम् ।।33।।

धूप, दीप, आरती ो छह बार शङ्ख, चक्र ग , कमल, तथा गरुड़ की प्रतिकृति बनाते हुए अनेक ीप मालाओं से दिन-रात जा करनी चाहिए।

1. यह पंक्ति केवल घ. में 2. घ. शाटीपटोपदंशादि ोज्य पदार्थ के साथ वस्त्र अनन्वित)।3. घ. आरत्रि ०। 4. घ. यह पंक्ति अनु ब्ध।

कंकोलैलापूगफलैस्तथा जातीफलैरपि।
कर्पूरचूर्णसहितैस्ताम्बूलैश्च सुवासितैः।।34।।

कंकोल, इलायची, सुपारी, जायफल, कर्पूर के चूर्ण से सुगन्धित पान का बीड़ा समर्पित कर पूजा करें।

महार्हैरर्हणां चक्रुः कल्याणार्थं तथान्वहम्।
स्वस्वशक्त्यनुसारेण सर्वं सम्पाद्य यत्नतः।।35।।

कल्याण के लिए प्राचीन काल में सन्तों ने इन श्रेष्ठ वस्तुओं से अपनी शक्ति के अनुसार सब एकत्रित कर प्रतिदिन अर्चना की थी।

गृहस्थानां विधिरयं नैतरेषां शुभानने।
दद्युर्दानानि जुहुयुरर्चितेग्नौ सुखार्थिनः।।36।।

यह विधि केवल गृहस्थों के लिए है, अन्य के लिए नहीं। वे गृहस्थ सुख की कामना से दान करें और पूजित अग्नि में हवन भी करें।

कल्याणं च वरारोहे रामार्पणधियान्वहम्।

हे पार्वती! श्रीराम को समर्पित करने की बुद्धि से इस प्रकार अर्चना कर कल्याण होगा।

एवं गृहस्थनियमस्तथैव ब्रह्मचारिणाम्।।37।।
विधिमप्यनतिक्रम्य यथाशक्त्यनुसारतः।
यदि कुर्य्युः प्रयत्नेन पूजा तत्साधनैरिह[1]।।38।।
सर्वं सम्पद्यते तेषां देवानां दुर्लभं च यत्।

यह गृहस्थों के लिए नियम है, किन्तु इस प्रकार ब्रह्मचारी भी किसी विधान को छोड़े विना अपनी शक्ति के अनुसार यत्नपूर्वक यदि उन सामग्रियों से इस संसार में पूजा करते हैं, तो उनकी भी सभी कामनाओं की सिद्धि होती है, जो देवताओं के लिए भी दुर्लभ है।

कल्याणि शृणु मद्वाक्यं यदि कल्याणमिच्छसि।।39।।
राममाराधयाद्यादेर्यावज्जीवं यथाविधि।
एतेनैव वरारोहे कल्याणं तव सर्वदा।।40।।

---

1. घ. तत्साधनैरपि।

हे कल्याणमयी पार्वती! यदि अपना कल्याण चाहती हो, तो मेरी बात सुनो और इन साधनों से विधानपूर्वक आज से लेकर जीवन पर्यन्त श्रीराम की आराधना करो। इसी से हमेशा तुम्हारा कल्याण होगा।

पुण्यस्त्रियो गृहस्थाश्च तथैव ब्रह्मचारिणः।
सगुणं राममाराध्य पूर्वोक्तैः साधनैरपि।।41।।
शक्त्या सम्पादितैः कैश्चित्पूजयेयुर्दिवानिशम्।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवत्येव न चान्यथा।।42।।

पुण्य करनेवाली स्त्रियाँ, गृहस्थ पुरुष तथा ब्रह्मचारी शक्ति के अनुसार एकत्रित पूर्वोक्त सामग्रियों से भी सगुण राम की पूजा दिन-रात करें, तो उन्हें भोग और मोक्ष होगा ही, इसमें सन्देह नहीं।

वानप्रस्थाश्च यतयो यद्येवं कुर्य्युरन्वहम्।
संसारान्न निवर्तन्ते विध्यतिक्रमदोषतः।।43।।
आरूढपतिता ह्येते भवेयुर्दुःखभाजनाः।

वन में रहनेवाले तथा संन्यासी यदि उपर्युक्त विधान से प्रतिदिन पूजा करते हैं, तो उन्हें विधान का अतिक्रमण करने के दोष से संसार से मुक्ति नहीं मिलेगी और वे आरुढपतित कहलायेंगे और दुःख के भागी होंगें।

अहिंसा परमो धर्मस्तेषामेषा न पद्धतिः।।44।।
न हिंसाव्यतिरेकेण लभ्यन्ते तानि तानि वै।
भावनाकल्पितैः पूजासाधनैरेव युज्यते।।45।।

उनके लिए अहिंसा परम धर्म हैं और हिंसा के बिना ये सामग्रियाँ उपलब्ध नहीं हो सकतीं; यह पद्धति उनके लिए नहीं है। मन में पूजा-सामग्रियों की भावना कर उनके लिए मानस-पूजन विहित है।

न बहिर्योगयुक्तानां मनस्तेषां प्रशस्यते।
एतच्छान्तधियामेव सेव्यसेवकरूपतः।।46।।

किन्तु बहिर्योग से युक्त जो गृहस्थ और ब्रह्मचारी है, उनके लिए यह प्रशस्त है। यह शान्त बुद्धिवालों के लिए ही है, जो भगवान् को सेव्य और स्वयं को सेवक मानते हैं।

ध्यानमप्यर्च्चनाद् भद्रैर्भद्रार्थफलदं यतः।
आत्मनस्तत्त्वचिन्ता तु तस्याप्यात्मनुचिन्तनम्[1]।।47।।
उभयोरैक्यचिन्ता तु पुनरावर्तयेन्न तु।

सुन्दर साधनों से अर्चना करने से आत्मा के तत्त्व का चिन्तन और तत्त्वों की आत्मा का चिन्तन स्वरूप ध्यान श्रेष्ठ है, क्योंकि यह सुन्दर फल प्रदान करता है। साथ ही, आत्मा का तत्त्व और तत्त्व की आत्मा इन दोनों की एकता का चिन्तन करने से पुनर्जन्म नहीं होता है।

आत्मानं सततं रामं संभाव्य विहरन्ति ये।
न तेषां दुःकरं किंचिद् दुःकृतोत्था न चापदः।।48।।

जो हमेशा अपने को श्रीराम समझकर विहार करते हैं उनके लिए कोई दुष्कर कार्य नहीं है और उस दुष्कर कार्य के कारण उत्पन्न होनेवाली विपत्ति नहीं होती है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये सगुणोपासनम् नाम पंचमोऽध्यायः।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किमेतद् भगवन् ब्रूहि तव[2] मध्याङ्गुलिं रहः।
तत्किं पिबसि माहात्म्यं श्रीतुलस्याः क्वचित् सृतम्[3]।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा– हे भगवान् अगस्त्य मुनि! आपकी अंगुलियों के बीच में क्या छुपा हुआ है, यह तो बतलाइये! क्या आप श्रीतुलसी से निःसृत माहात्म्य का पान कर रहे हैं?

अगस्तिरुवाच

शृणु वक्ष्यामि माहात्म्यं श्रीतुलस्याः प्रयत्नतः।
पूर्वमुग्रतपः कृत्वा वरं बव्रे मनस्विनी।।2।।

---

1. घ. तस्यात्मनि विचिन्तयेत्। 2. ख. घ. हित्वा।3. ख. स्थितम्।

अगस्त्य बोले– सुनो, मैं श्रीतुलसी का माहात्म्य भली-भाँति कहता हूँ। प्राचीन काल में मनस्विनी तुलसी ने उग्र तपस्या कर भगवान् से वर माँगा।

तुलसी सर्वपुष्पेभ्यो पत्रेभ्यो वल्लभा यतः[1]।
विष्णोस्त्रैलोक्यनाथस्य रामस्य जनकात्मजा।।3।।
प्रिया तथैव तुलसी सर्वलोकैकपावनी।

जैसे श्रीराम के लिए जनकनन्दिनी श्रीसीता प्रिय हैं उसी प्रकार सभी फूलों और पत्तियों में तुलसी भगवान् विष्णु को सबसे प्रिय हो और वह सभी लोकों को पवित्र करती रहे।

तुलसीपत्रमात्रेण योऽर्चयेद्राममन्वहम्[2]।।4।।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम्।

अतः केवल तुलसी के पत्र से जो प्रतिदिन श्रीराम की पूजा करते हैं वे ऐसे शाश्वत ब्रह्मलोक को प्राप करके हैं, जहाँ से फिर इस संसार में आना सम्भव नहीं है।

नीलोत्पलसहस्रेण त्रिसन्ध्यं योऽर्चयेद्धरिम्।।5।।
फलं वर्षसहस्रेण[3] तदीयं नैव लभ्यते।

नीलकमल के हजार फूलों से तीनों सन्ध्या जो श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे एक हजार वर्ष में भी वैसा फल प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

विद्वन् सर्वेषु पुष्पेषु पङ्कजं श्रेष्ठमुच्यते।।6।।
तत्पुष्पेष्वपि तन्माल्यं लक्षकोटिगुणं भवेत्।

हे विद्वान् सुतीक्ष्ण! सभी फूलों में कमल श्रेष्ठ है और कमल के फूलों में भी उसकी माला लाखों करोड़ों गुना फलदायिनी होती है।

विष्णोः शिरसि विन्यस्तमेकं श्रीतुलसीदलम्।।7।।
अनन्तफलदं विद्वन् मन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।

किन्तु भगवान् विष्णु के शिर पर मन्त्रोच्चारण के साथ चढ़ाया गया एक तुलसी का पत्र अनन्त फल देता है।

---

1. घ. तत। 2. घ. ⁰विष्णुमन्वहम्।3. घ. वर्षशतेनापि।

पुष्पान्तरैरन्तरितं निर्म्मितं तुलसीदलैः।।8।।
माल्यं मलयजालिप्तं दद्यात् श्रीराममूर्द्धनि।

दूसरे फूलों के बीच में तुलसीदल डालकर बनायी गयी तथा मलय चन्दन से पोती गयी माला श्रीराम के मस्तक पर चढ़ानी चाहिए।

किं तस्य बहुभिर्यज्ञैः सम्पूर्णवरदक्षिणैः।।9।।
किं तीर्थसेवया दानैरुग्रेण तपसापि वा।

उनके लिए अनेक श्रेष्ठ दक्षिणा वाला यज्ञ, तीर्थ में निवास, दान तथा उग्र तपस्या व्यर्थ है।

वाचं नियम्य चात्मानं मनो विष्णौ निधाय च।।10।।
योऽर्चयेत् तुलसीमालैर्यज्ञकोटिफलं भवेत्।
भवाघकूपमग्नानामेतदुद्धारकाङ्कुशम्[1] ।।11।।

अपनी वाणी को संयमित कर तथा मन में भगवान् विष्णु को धारण कर जो तुलसी की माला से पूजा करते हैं उन्हें करोड़ों यज्ञ करने का फल मिलता है। यह संसार के पाप रूपी कूप में गिरे लोगों को निकालने के लिए झग्गर है।

पत्रं पुष्पं फलं चैव श्रीतुलस्याः समर्पितम्।
रामाय मुक्तिमार्गस्य द्योतकं सर्वसिद्धिदम्।।12।।

श्रीराम को समर्पित श्रीतुलसी का पत्र, फूल तथा फल सभी सिद्धियाँ प्रदान करते हैं और मुक्ति का मार्ग प्रकाशित करते हैं।

माल्यानि तनुते लक्ष्मीः कुसुमान्तरितानि ह।
तुलस्याः स्वयमानीय निर्मितानि तपोधन।।13।।

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! अपने से तोड़कर लाये गये तुलसी के पत्र को फूलों से ढँककर बनायी गयी माला अर्पित से लक्ष्मी की वृद्धि होती है।

[2]त्रयो वेदास्त्रयो देवास्तिस्रः सन्ध्यास्त्रयोऽग्नयः।
सदा कुर्वन्ति माङ्गल्यं तुलसी यस्य मस्तके।।14।।

जो मस्तक पर तुलसी धारण करते हैं उनका कल्याण तीनों वेद, तीनों देव, तीनों सन्ध्याएँ और तीनों अग्नियाँ करती हैं।

1. घ. °मेतदुद्धारकारणं। 2. घ. दो पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

तुलसीवाटिका यत्र पुष्पान्तरशतैर्युता।
शोभते राघवस्तत्र सीतया सहितः स्वयम्।।15।।

जहाँ सैकड़ों प्रकार के फूलों से युक्त तुलसी का बाग है, वहाँ स्वयं श्रीराम सीता के साथ विराजमान रहते हैं।

कौतुकं शृणु देवेशि विनिर्माल्ये च वह्निना।
तापिते नाशमायाति ब्रह्महत्यादिपातकम्।।16।।

हे देवेशि! यह आश्चर्य की बात सुनो कि निर्माल्य से तुलसीदल चुनकर जो अग्नि में जलाते हैं, इससे ब्रह्महत्या आदि के पापों का नाश होता है।

आरोपयन्ति ये नित्यं स्वयमेव मनीषिणः।
वनत्वेन समावृत्य कण्टकैस्तुलसीतरून्।।17।।
अर्चनाय तदेवालं तन्नामाभ्यर्हितं ततः।

जो विद्वान् व्यक्ति नियमित रूप से स्वयं (रक्षा के लिए) काँटों की बाड़ से घेरकर तुलसी-वन लगाते हैं, वही पूजा-अर्चना के लिए पर्याप्त है; उससे भी श्रेष्ठ उनके नाम से युक्त तुलसी की प्रशंसा की गयी है।

शालग्रामशिलातीर्थं[1] तुलसीदलवासितम्।।18।।
ये पिबन्ति पुनस्तेषां स्तन्यपानं न विद्यते।

शालग्राम शिला का जल जो तुलसीदल से सुवासित है, उसका पान करनेवालों को पुनः स्तनपान नहीं करना पड़ता अर्थात् उनका पुनर्जन्म नहीं होता।

गाङ्गेयमिव तोयेषु पूज्येष्विव रघूत्तमः।।19।।
सरोजमिव पुष्पेषु शस्यते तुलसीदलम्।

जलों में गंगाजल, पूजनीय देवों में श्रीराम और फूलों में कमल के समान पत्रों में तुलसीदल प्रशस्त है।

सम्पूज्य भक्त्या विधिवद्रामं श्रीतुलसीदलैः।।20।।
भवान्तरसहस्रेषु दुःखग्राहाद् विमुच्यते।

तुलसीदल से श्रीराम की भक्ति और विधान से पूजा कर मनुष्य हजार जन्मों तक दुःखरूपी ग्राह से मुक्त हो जाता है।

1. घ. शालग्रामशिलातोयं।

वर्णाश्रमेतराणां च पूजा यस्यैव साधनम्।।21।।
अपेक्षितार्थदं नान्यञ्जगत्स्वपि तपोधन।

वर्णाश्रम धर्म से बहिर्भूत और केवल पूजा को ही मोक्ष का साधन बनानेवाले अर्थात् (दान आदि के अनधिकारी) यतियों के लिए संसार में तुलसीदल को छोड़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है, जिससे उन्हें इच्छित वस्तु की प्राप्ति हो सके।

पूजायोग्यैर्दलैः पत्रैः पुष्पैर्योऽर्चयेद्धरिम्।।22।।
यान्ति[1] न्यूनातिरिक्तानि कर्माणि सफलान्यहो।
न तस्य नरकक्लेशो योऽर्चयेत् तुलसीदलैः।।23।।
पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठो सत्यं सत्यं न संशयः।

पूजा के योग्य दल, पत्र और पुष्प से जो श्रीहरि की पूजा करते हैं उनके द्वारा पूजा-सामग्री में कमी या फालतू सामग्री के रहने पर भी कर्म सफल होते हैं। जो तुलसीदल से पूजा करते हैं, उन्हें नरक का क्लेश नहीं होता, चाहे वे पापी हो या निष्पाप हो; यह सत्य है, सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

गङ्गातोयेन तुलसीदलयुक्तेन योऽर्चयेत्।
रामं निक्षिप्य शिरसि राममन्त्रेण सेचयेत्।।24।।
निमील्य चक्षुषी धीरो हृदि रामं निधाय च।
असकृद् वा सकृद् वापि य एवमनुतिष्ठति।
ध्येयो भवति सर्वेषामयमेव विमुक्तये।।25।।

तुलसीदल से युक्त गंगाजल से श्रीराम की पूजा करते हैं, उसे अपने शिर पर धारण कर श्रीराम के मन्त्र से अभिषेक करते हैं, आँखों को धैर्यपूर्वक बंद कर हृदय में श्रीराम को धारण करते हैं; ऐसा अनेक बार या एक बार भी अनुष्ठान करते हैं, तो उनके ध्येय श्रीराम इसी से मोक्ष प्रदान करते हैं।

न सन्ति गुरवो यस्य नैव दीक्षाविधिः क्रमः।
रामरक्षां वदन्तो यः तुलसीदलमर्पयेत्।।26।।
दीक्षान्तरशतेनापि नैतत्फलमवाप्यते।

1. घ. तानि।

जिनके कोई गुरु नहीं हैं, अथवा जिन्होंने दीक्षा भी नहीं ली है, न ही पूजा की विधि एवं क्रम जानते हैं, वे भी यदि रामरक्षा-स्तोत्र का पाठ करते हुए तुलसीदल अर्पित करते हैं, तो अन्य प्रकार की हजारों दीक्षा से भी ऐसा फल उन्हें नहीं मिलेगा।

दीक्षितेष्वपि सर्वेषु रामदीक्षा तु उत्तमः।।27।।

न गुरुर्नैव कालश्च न देवान्तरपूजनम्[1]।

तुलसीदलयुक्तं च रामार्चनमपेक्षते।।28।।

सभी प्रकार के दीक्षितों में श्रीराम की दीक्षा उत्तम है। इसके लिए न गुरु न समय और न अन्य देवताओं की पूजा की अपेक्षा है केवल तुलसीदल से श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

निर्माल्यतुलसीमालायुक्तो यद्यर्चयेद्धरिम्।

यद्यत्करोति तत्सर्वमनन्तफलदं भवेत्।।29।।

यदि कोई भगवान् को समर्पित निर्माल्य तुलसीदल को धारण कर श्रीहरि की अर्चना करता है, तो वह जो जो कार्य कारेगा उसे अनन्त फल मिलेगा।

यदि न्यूनं भवत्येव रामाराधनसाधनम्।

तुलसीपत्रमात्रेण युक्तं तत्परिपूर्यते।।30।।

यदि श्रीराम की पूजा-सामग्री में किसी वस्तु की कमी रहे, तो केवल तुलसीदल डाल देने से पूर्ण हो जाता है।

शालग्रामशिलायाश्च गङ्गायाश्च तपोधन।

तुलस्याश्चैव माहात्म्यं नेष्टो वक्तुं हि विश्वसृक्।।31।।

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! शालग्राम की शिला, गंगा और तुलसी का माहात्म्य कहने में विश्व के निर्माता ब्रह्मा भी असमर्थ हैं।

भवभञ्जनमेतत्ते सर्वाभीष्टं प्रयच्छति।

नातः परतरं किञ्चित् पावनं विद्यते भुवि।।32।।

तुलसीदल पुनर्जन्म का नाश करनेवाला है तथा सभी कामनाओं की पूर्ति करता है। संसार में इससे बढ़कर पवित्र दूसरा कुछ भी नहीं है।

यः कुर्य्यात् तुलसीकाष्ठैरक्षमालास्वरूपिणीम्।

कर्णमालां प्रयत्नेन कृतं तस्याक्षयं भवेत्।।33।।

---

1. घ. देवान्तरसेवनम्।

जो तुलसी लकड़ी से रुद्राक्ष की तरह माला बनाकर कानों में धारण करते हैं, उनके द्वारा किये गये कार्य कभी नष्ट नहीं होते।

संघृष्य तुलसीकाष्ठं यो दद्याद्राममूर्द्धनि।
कर्पूरागुरुकस्तूरीचन्दनं च न तत्समम्।।34।।

तुलसी की लकड़ी को घिसकर श्रीराम के मस्तक पर लगावें। यह कर्पूर, अगुरु, कस्तूरी और चन्दन भी इसके समान नही है।

तुलसीविपिनस्यापि समन्तात्पावनं स्थलम्।
क्रोशमात्रं भवत्येव गाङ्गेयस्येव पावनम्।।35।।

तुलसी-वन के चारों ओर की भूमि भी पवित्र होती है, जैसे गंगा के तट पर एक कोस तक की भूमि पवित्र होती है।

तुलस्या रोपिता सिक्ता दृष्टा स्पृष्टा तु पावयेत्।
आराधिता प्रयत्नेन सर्वकामफलप्रदा।।36।।

तुलसी का वृक्ष रोपने से, सींचने से, दर्शन करने से स्पर्श करने से पवित्र कर देता है और यत्नपूर्वक उसकी आराधना करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है।

चतुर्णामपि वर्णानामाश्रमाणां विशेषतः।
स्त्रीणां च पुरुषाणां च पूजितेष्टं ददाति हि।।37।।

चारो वर्णों एवं आश्रमों के स्त्रियों एवं पुरुषों के द्वारा पूजित तुलसी इच्छाओं की पूर्ति करती है।

प्रदक्षिणं भ्रमित्वा तु नमस्कुर्वन्ति नित्यशः।
न तेषां दुरितं किञ्चित् प्रक्षीणमवशिष्यते।।38।।

जो तुलसी वृक्ष के दाहिने से घूमकर प्रतिदिन प्रणाम करते हैं उनके द्वारा किये गये पाप कम होकर भी नहीं रहता अर्थात् समूल समाप्त हो जाता है।

अनन्यदर्शनाः प्रातर्ये पश्यन्ति तपोधन।
अहोरात्रकृतं पापं तत्क्षणात् प्रदहन्ति ते।।39।।

प्रातःकाल किसी दूसरी वस्तु को देखे विना जो तुलसी का दर्शन करते हैं, उनके द्वारा उस दिन और रात में किये गये पाप भस्म भूत हो जाते हैं।

तुलसी सन्निधौ प्राणान् ये त्यजन्ति मुनीश्वर।

न तेषां नरकक्लेशः प्रयान्ति परमां गतिम्[1]।।40।।

हे मुनिश्रेष्ठ! तुलसी के समीप जो प्राण छोड़ते हैं, उन्हें नरक का क्लेश नहीं होता और वे परम गति को प्राप्त करते हैं।

विधेयमविधेयं वा न्यूनमप्यथवाधिकम्।

तुलसीदलमादाय रामं ध्यात्वा समर्पयेत्।।41।।

पूजन में जहाँ विधान हो या न हो, अन्य सामग्रियों में न्यूनता या अतिरिक्तता हो, श्रीराम का ध्यान कर तुलसीदल समर्पित करें।

'रामाय नम' इत्येतदच्युताय नमस्ततः।

अनन्ताय नमस्तस्मात् प्रणवादि वदेदिदम्।।42।।

कृतं सफलतामेति तुलसीसन्निधौ मुने।

पहले 'रामाय नमः' ऐसा कहें; फिर 'अच्युताय नमः' ऐसा कहें, फिर 'अनन्ताय नमः' कहें। इसके बाद प्रणव ॐकार आदि का उच्चारण करें। तुलसी वृक्ष के निकट पूजा आदि कर्म करने से सफलता मिलती है।

तदेव पुण्यकालेषु सहस्रगुणितं भवेत्।।43।।

शालग्रामशिलायाश्च तुलसीसन्निधौ मुने।

तेषां पुण्यवतां मृत्युस्ते मुक्ता नात्र संशयः।।44।।

यही कर्म शुभ समय में किया जाये, तो हजार गुणा फल मिलता है। तुलसी तथा शालग्राम की शिला के निकट जिस पुण्यवान् व्यक्ति की मृत्यु होती है, वे मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायाम् परमरहस्ये श्रीतुलसीमाहात्म्यकथनं नाम षष्ठोऽध्यायः।।6।।

अथ सप्तमोऽध्यायः

अगस्त्य वद त्वं श्रेष्ठ रामस्य मुनिसत्तम।

मन्त्रराजस्य माहात्म्यं यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे श्रेष्ठ महामुनि अगस्त्य! श्रीराम के मन्त्रराज का माहात्म्य जो प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने कहा था, वह सुनाइए।

---

1. घ. परमं पदम्।

अगस्त्य उवाच

सर्वं तवाभिधास्यामि पुरारेः पुरतः पुरा।
ब्रह्मा यदब्रवीत् तत् त्वं शृणुष्वावहितो महत्।।2।।

अगस्त्य बोले- प्राचीन काल में ब्रह्माजी ने भगवान् शंकर के समक्ष जो कुछ कहा था, वह सब माहात्म्य सुनाऊँगा, उसे ध्यान से सुनो।

अस्ति वाराणसी नाम पुरी शिवमनोहरा।
सर्वदासौ शिवस्तत्र पार्वत्या सह तिष्ठति।।3।।

वाराणसी नाम की वह नगरी है, जो भगवान् शिव के वास करने से मन मोह लेती है। वहाँ भगवान् शिव हमेशा पार्वती के साथ वास करते हैं।

तस्याप्युपासकाः सर्वे भक्त्या तं प्रतिपेदिरे।
मुमुक्षवः परित्यज्य सर्वं तत्रैव संस्थिताः।।4।।
सदा शिव शिवेत्येवं वदन्तः शिवतत्पराः।
शिवार्पितमनःकायवाचः शिवपरायणाः।।5।।

भगवान् शिव की आराधना करनेवाले सभी भक्ति-भाव से अनुगमन करने लगे। उस प्रकार मोक्ष की इच्छा करनेवाले सभी अन्य स्थलों को छोड़कर वाराणसी में ही हमेशा 'शिव! शिव' का उच्चारण करते हुए, शिव मे मन, शरीर एवं वाणी को अर्पित कर शिवभक्त होकर रहने लगे।

शिवस्तु तान् मुहुः पश्यन्नास्ते चिन्तासमाकुलः।
कथमेभ्यः प्रदास्यामि मुक्तिमित्यतिदुःखितः।।6।।
तत्रैवास्ते गणैः सार्द्धमृषिभिश्च सुरासुरैः।

भगवान् शिव उन्हें बार-बार देखते हुए चिन्तित हो गये कि इन्हें मुक्ति किस प्रकार दूँगा। इस प्रकार वे अत्यधिक दुःखी थे। फिर भी भगवान् शिव सभी गण, ऋषि, देवता एवं असुरों के साथ वहीं रहे।

एवं वसति भूर्ल्लोकमाजगाम चतुर्मुखः।।7।।
तमीश्वरो निरीक्ष्यैव सम्भ्रमेणाकरोत् प्रियम्।
बहु संभावयामास यद्धितं तत्प्रवेदयत्।।8।।

इस प्रकार जब शिव वहाँ रहे थे, तब एक दिन ब्रह्मा पृथ्वी पर आये। उन्हें देखकर भगवान् शिव ने उत्साह से उन्हें प्रसन्न किया और अनेक प्रकार से अभ्यर्थना कर अपना अभीष्ट निवेदित किया।

ततः स प्राह भगवानीश्वरस्तं चतुर्म्मुखम्।
कुशलं ननु ते ब्रह्मन् चिराय त्वमिहागतः।।9।।
श्रीमदागमनेनाहं लोकपूज्योऽप्युपासकैः।
समाराध्य हि मां भक्तिं प्रार्थयन्ति मुमुक्षवः।।10।।
केनोपायेन तेषां तत्फलं दास्यामि तद् वद।

इसके बाद भगवान् शिव ने ब्रह्मा से कहा- 'हे ब्रह्मा, आप कुशल तो हैं न! बहुत दिनों के बाद यहाँ आये हैं! श्रीमान् के आगमन से आज मैं उपासकों के साथ तीनों लोकों में पूज्य हूँ। मोक्ष चाहनेवाले मेरी आराधना कर भक्ति की प्रार्थना करते हैं, अतः उस भक्ति का फल मोक्ष उन्हें किस प्रकार दूँ, यह बतलाइए।

ईश्वरेणैवमुक्तः सन् द्रुहिणोऽपि बभाण ह।।11।।
अस्त्युपायो गोपनीयः प्रादाद् यं मे रघूद्वहः।
तपः कृत्वा चिरायाहं तं परं लब्धवान् वरम्।।12।।
ततोऽन्यो मदभिज्ञातो नास्त्युपायो महेश्वर।
मह्यमन्वग्रहाद् रामो न सन्देहोऽस्ति तत्र वै।।13।।

भगवान् शंकर के ऐसा कहने पर ब्रह्मा भी बोले- "एक ऐसा उपाय है, जो सभी को बतलाया नहीं जा सकता। यह मुझे स्वयं श्रीराम ने बतलाया था, जब मैंने चिरकाल तक तपस्या कर उनसे वर प्राप्त किया था हे महेश्वर! इससे भिन्न उपाय मेरी जानकारी में नहीं है। मेरे ऊपर श्रीराम ने कृपा की थी, इसमें सन्देह नहीं।

ईश्वर उवाच

अथ किं मे वदस्वेदं त्वं मां यद्य कम्पसे।
स तेनाभिहितो दध्यौ क्व कदा युक्त मेत्यपि।।14।।

ईश्वर (शिव) बोले - "यदि मेरे ऊपर कृपा है तो बतलाइए कि ऐसा कौन-सा उपाय है।" ऐसा कहने पर ब्रह्मा ने सबका ध्यान किया कि यह मन्त्र कहाँ और किस समय देना चाहिए।

पुण्यतीर्थे च गंगायां लोलार्के सूर्यपर्वणि।
तस्मै मन्त्रवरं प्रादान्मन्त्रराजं षडक्षरम्।।15।।

गंगा के पावन तट पर सूर्यग्रहण के समय जब सूर्य चंचल रहते हैं ऐसे स्थान और समय में ब्रह्मा ने शिव को यह षडक्षर मन्त्र दिया।

नियतः सोऽपि तत्रैव जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरशतं भक्त्या ध्यानहोमार्चनादिभिः।।16।।

वृषभध्वज शिव ने भी वहीं नियमपूर्वक भक्तिभाव से ध्यान, होम और अर्चना करते हुए सौ मन्वन्तर तक मन्त्र का जप किया।

ततः प्रसन्नो भगवान् रामः प्राह त्रिलोचनम्।
वृणीष्व पदमिष्टं[1] ते देवानामपि दुर्ल्लभम्।।17।।
तदेवाहं प्रदास्यामि मा चिरं वृषभध्वज।

इसके बाद प्रसन्न होकर भगवान् श्रीराम ने भगवान् शंकर से कहा- "हे वृषभध्वज! आप जो स्थान चाहें वह माँग लें। देवताओं के लिए भी जो दुर्लभ है, वही मैं दूँगा! देर न करें।"

ततस्तमब्रवीद् विष्णुमीश्वरः परया मुदा।।18।।
दर्शनेनैव ते धन्याः कृतार्थाः वै ममेप्सितम्।
एते मदीयाः सर्वेऽपि मां परं पर्य्युपासते।।19।।
मुक्त्यर्थं तत्कुरुष्वैषां तदेवाभिमतं मम।।
नातः परतरं किञ्चित् प्रार्थितं मम विद्यते।।20।।

इसके बाद परम प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने विष्णु से कहा- "आपके दर्शन से ही हम धन्य हो गये; मेरी इच्छा सफल हो गयी। किन्तु मेरे ये भक्त जो मुझे परम देव मानकर मेरी उपासना करते हैं, इनकी मुक्ति के लिए उपाय करें; यही मेरी इच्छा है। इससे बढ़कर मेरी कोई प्रार्थना नहीं है।

एवं वदति तत्रैव तदानीं तदुपासकाः।
सर्वे ज्योतिर्मयाः सन्तो विष्णावेव लयं गताः।।21।।

ऐसा कहने पर उस समय वहीं पर भगवान् शिव के सभी उपासक ज्योतिःस्वरूप होकर विष्णु में ही लीन हो गये।

1. ख. यदभीष्टं।

ततः प्रोवाच रामस्तं पुनरिष्टं यदस्ति ते।
ब्रूहीश्वरात्र तद् दास्ये प्रार्थनादुर्लभं च यत्।।22।।

इसके बाद श्रीराम ने शिव से कहा- "हे ईश्वर! यदि और भी कोई आपकी इच्छा हो तो यहाँ कहें। प्रार्थना के द्वारा जो दुर्लभ है वह में दूँगा।"

इत्युक्तः स पुनर्बव्रे हितं तद् भक्तवत्सलः।
सर्वलोकोपकाराय सर्वेषामपि दुर्ल्लभम्।।23।।
ये स्वतो वान्यतो वापि यत्र कुत्रापि वा प्रभो।
प्राणान् परित्यजन्त्यत्र मुक्तिस्तेषां फलं भवेत्।।24।।

विष्णु के द्वारा ऐसा कहने पर भक्तवत्सल भगवान् शिव ने पुनः सबके लिए दुर्लभ और सबके उपकार के लिए कहा- "हे प्रभो! जो स्वाभाविक रूप से या अस्वाभाविक रूप से जिस किसी स्थान में प्राणत्याग करते हैं, उनकी मुक्ति हो।"

गंगायां च तटे वापि यत्र कुत्रापि वा पुनः।
म्रियन्ते ये प्रभो देव मुक्तिर्नातो वरान्तरम्।।25।।

गंगा में या इसके तट पर जहाँ कहीं भी लोगों की मृत्यु हो, वे मुक्ति पायें इसके अतिरिक्त कोई वर नहीं चाहिए।

विश्वामित्र्यां च यः स्नात्वा पश्येत् सिद्धेश्वरं सकृत्।[1]
ब्रह्महत्यादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः।।26।।
विश्वामित्र्यां च ये नूनं स्नाति श्रद्धालवः सदा।
तेऽपि पापविनिर्मुक्ता यान्ति विष्णोः[2] परंपदम्।।27।।

विश्वामित्र की नदी (कोशी?) में स्नान कर जो सिद्धेश्वर का एकबार भी दर्शन करते हैं, वे ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाते हैं इसमें सन्देह नहीं। कौशिकी नदी में जो हमेशा केवल श्रद्धापूर्वक स्नान करते हैं, वे भी पाप से मुक्त होकर विष्णु का परम पद प्राप्त करते हैं।

श्रीराम उवाच

कुरुते मानवो यस्तु कलौ भक्तिपरायणः।
कल्पकोटिसहस्त्राणि रमते सन्निधौ हरेः।।28।।

श्रीराम बोले- कलियुग में जो मनुष्य भक्तिपूर्वक कर्म करते हैं, वे हजारों करोड़ कल्प तक श्रीहरि के समीप रमण करते हैं।

1. क. कृती।2. ख. शम्भो ।

क्षेत्रे तु तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ताः सन्तु न चान्यथा।।29।।

हे देवेश! आपके क्षेत्र में जहाँ कहीं भी मृत्यु पाकर कृमि, कीट आदि भी शीघ्र ही मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

त्वत्तो वा ब्रह्मणो वापि लभन्ते ये षडक्षरम्।
जीवन्तो मन्त्रसिद्धाः स्युर्मृता मां प्राप्नुवन्ति ते।।30।।

आपसे या ब्रह्मा से जो षडक्षर मन्त्र पाते हैं, वे जीवित रहते मन्त्रसिद्ध हो जाते हैं और मृत्यु के बाद मुझे प्राप्त करते हैं।

क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन शंकर।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु।।31।।

हे शंकर! इस क्षेत्र में इस मन्त्र से भक्तिपूर्वक जो मेरी अर्चना करते हैं, मैं उनके समीप रहता हूँ; क्योंकि यहाँ पत्थर आदि की प्रतिमाओं में लीन मैं हूँ।

मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यति मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव।।32।।

हे शिव! जिसकी मृत्यु निकट हो, वैसे किसी के दाहिने कान में दूसरा कोई मेरा मन्त्र कहे या वह स्वयं जपे वह मुक्ति पायेगा।

इत्युक्तवति देवेशे पुनरप्याह शंकरः।
महान् महाभिमानोऽत्र क्षेत्रे त्रैलोक्यदुर्ल्लभे।।33।।
फलं भवतु देवेश सर्वेषां मुक्तिलक्षणम्।
मुमूर्षूणां च सर्वेषां दास्ये मन्त्रवरं परम्।।34।।

श्रीराम के ऐसा कहने पर पुनः शंकर ने कहा- "यह इस क्षेत्र की बड़ी महिमा होगी, जो तीनों लोको में दुर्लभ है। हे देवेश! सबको मुक्तिस्वरूप फल मिले। जिनकी मृत्यु निकट है, ऐसे सब लोगों को मैं यह मन्त्रराज प्रदान करूँगा।

इत्येवमीरितो विष्णुस्तस्मै दत्वा वरान्तरम्।
यदभीष्टं पुनस्तत्र तत्रैवान्तरधीयत।।35।।

इस प्रकार कहने पर विष्णु ने उन्हें अन्य इच्छित वर देकर फिर वहीं अन्तर्धान हो गये।

तदादितदभून्मुक्तिक्षेत्रं त्रैलोक्यपावनम्।
तत्र तिष्ठन्ति ये भक्त्या यावज्जीवं नियम्यते।।
मुक्तिभाजो भवन्त्येव सत्यं सत्यं न चान्यथा।।36।।

इसके बाद उस समय से तीनो लोकों में पवित्र वाराणसी 'मुक्तिक्षेत्र' हो गयी। वहाँ जो भक्तिपूर्वक वास करते और जीवन पर्यन्त नियम का पालन करते हैं, वे मुक्ति के भागी होते हैं। यह सत्य है, सत्य है; यह अविचल है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रराजमाहात्म्यं नाम सप्तमोध्यायः।

अथ अष्टमोऽध्यायः

कथं मन्त्रवरं चादौ केन भूमौ [1] प्रतिष्ठितम्।
उपादिदेश कः [2] कस्मै तन्मे ब्रूहि तपोधन।।1।।

सुतीक्षण ने पूछा– हे तपोधन अगस्त्य मुनि! किसने सबसे पहले इस पृथ्वी पर इस मन्त्रराज को प्रतिष्ठित किया। किसने किसे उपदेश किया, यह बतलाइए।

अगस्तिरुवाच

ब्रह्मा ददौ वसिष्ठाय स्वसुताय मनुं ततः।[3]
स वेदव्यासमुनये ददावित्थं गुरुक्रमात् [4]।।2।।

ब्रह्मा ने अपने पुत्र वसिष्ठ को यह मन्त्र दिया। इसके बाद गुरु परम्परा से वसिष्ठ ने वेदव्यास मुनि को दिया।

वेदव्यासमुखेनात्र मन्त्रो भूमौ प्रकाशितः।
वेदव्यासो महातेजाः शिष्येभ्यः समुपादिशत्।।3।।

वेदव्यास के मुख से यह मन्त्र पृथ्वी पर फैला। महान् तेजस्वी वेदव्यास ने अपने शिष्यों को इसका उपदेश किया था।

गुरुः शिष्यगुणानादौ[क1] शौनकायाब्रवीन्मुनिः।
स शौनकेन पृष्टः सन्नाह मन्त्रान्तराणि च।।4।।

गुरु मुनि वेदव्यास ने पहले शिष्य के गुणों का उपदेश देकर शौनक को इसका उपदेश किया। शौनक ने जब वेदव्यास से पूछा तब उन्होंने दूसरे मन्त्रों का भी उपदेश करते हुए कहा--

1. घ. भूमौ केन चादौ। 2. घ. तदादिदेशकः।3. घ. पुनः। 4. घ गुरुक्रमः। 5. घ. गुरुः शिष्यगणानादौ।

यन्त्रपूजाविधिमपि होमं तर्पणलक्षणम्।
पुरश्चरणसंख्यां च होमद्रव्यान्तराणि च।।5।।
जपस्थानानि सिद्धिं च यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।
तदुक्तं सम्प्रयच्छामि यदि श्रोतुमिहेच्छसि।।6।।

"हे शौनक! यदि सुनना चाहो तो प्राचीन काल में ब्रह्मा ने जिस प्रकार बतलाया था उसी प्रकार यन्त्र-पूजा की विधि, होम, तर्पण, पुरश्चरण की संख्या, हवन-सामग्री, जप-स्थान और सिद्धि के विषय में मैं उपदेश करता हूँ।"

सुतीक्ष्ण उवाच

सतां सन्दर्शनं लोके तर्पयत्येव मङ्गलम्।
मन्दभाग्योऽप्यहं कस्मात् श्रोता कल्ये त्वयाधुना।।7।।
मुनिवर्याधुनैव त्वं यदुक्तं तत् प्रबोध मे।

सुतीक्ष्ण ने कहा– साधुओं का मंगलमय दर्शन ही तृप्ति प्रदान करता है। तब जब आप-जैसे वक्ता इस समय हैं, तो मैं श्रोता होकर कैसे मन्दभाग्य रहूँ? मैं भी आपसे सुनकर श्रोता बनना चाहता हूँ। हे मुनिश्रेष्ठ! ब्रह्माजी ने जो कुछ कहा, वह मुझे अभी सुनाइए।

अगस्तिरुवाच

देवतोपासकः शान्तो विषयेष्वपि निःस्पृहः।
अध्यात्मविद् ब्रह्मवादी वेदशास्त्रार्थकोविदः।।8।।
उद्धर्तुञ्चैव संहर्तुं समर्थो ब्राह्मणोत्तमः।
तन्त्रज्ञो यन्त्रमन्त्राणां धर्मवेत्ता रहस्यवित्।।9।।
पुरश्चरणकृत् सिद्धो मन्त्रसिद्धः प्रयोगवित्।
तपस्वी सत्यवादी च गृहस्थो गुरुरुच्यते।।10।।

अगस्त्य बोले– देवों के उपासक, शान्त चित्तवाले, सांसारिक विषयों से विरक्त, अध्यात्म को जाननेवाले, ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करनेवाले, वेद, शास्त्र आदि के ज्ञानी, उद्धार और संहार दोनों करने में समर्थ, ब्राह्मणश्रेष्ठ, तन्त्रज्ञ, यन्त्र एवं मन्त्र के ज्ञाता, धर्म और रहस्य के ज्ञाता, पुरश्चरण करनेवाले, सिद्धपुरुष, जिन्हें मन्त्र सिद्ध हों तथा जो प्रयोगों का ज्ञान रखते हों, तपस्वी और सत्यवादी गृहस्थ गुरु कहलाते हैं।

आस्तिको गुरुभक्तश्च जिज्ञासुः श्रद्धया सह।
कामक्रोधादिदुःखोत्थं वैराग्यं वनितादिषु।।11।।
सर्वात्मना तितीर्षुश्च भवाब्धेर्भवदुःखितः।
ब्राह्मणो धर्ममोक्षार्थी कामार्थं विगतस्पृहः।।12।।
किं वा धर्मार्थमोक्षार्थी निष्कामश्चाथवा द्विजः।
मनोवाक्कायधर्मैस्तु नित्यं शुश्रूषको गुरोः।।13।।

धर्म में आस्था रखनेवाले, गुरु के भक्त, श्रद्धा के साथ सीखने की इच्छा रखनेवाले, काम, क्रोध आदि से उत्पन्न दुःखों को देखते हुए स्त्रियों के प्रति वैराग्य रखनेवाले, सभी प्रकार से संसार को पार करने की इच्छा रखनेवाले, संसार के दुःखों से दुःखी, ब्राह्मण, धर्म और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले, निष्काम शिष्य होते हैं। अथवा मन, वचन, कर्म, एवं धर्म से गुरु की नित्य सेवा करनेवाले, क्षत्रिय, एवं वैश्य शिष्य होते हैं।

स्ववर्णाश्रमधर्मोक्तकर्मनिष्ठः सदाशुचिः।
शुचिव्रततमाः शूद्राः धार्मिकाः द्विजसेवकाः।[1]।14।।

अपने वर्ण और आश्रम के लिए कथित धर्म के अनुसार कर्म करनेवाले, सदा पवित्र रहनेवाले, पवित्र नियमों का पालन करनेवाले द्विजों की सेवा करनेवाले, धार्मिक शूद्र शिष्य होते हैं।

स्त्रियः पतिव्रताश्चान्ये प्रतिलोमानुलोमजाः।
लोकाश्चाण्डालपर्यन्तं सर्व्वेऽप्यत्राधिकारिणः।।15।।

पतिव्रता स्त्रियाँ, चाहे वे प्रतिलोम विवाह से या अनुलोम विवाह से उत्पन्न हो, वे भी शिष्या हो सकतीं हैं। चाण्डाल पर्यन्त सभी व्यक्ति यहाँ अधिकारी हैं।

स्वजातिकर्मनिरताः[2] भक्त्या सर्वेश्वरस्य ये।
उपदेशक्रमस्तेषां तत्तज्ज्ञात्यनुसारतः।।16।।

अपनी जाति के कर्म में लगे हुए भक्तिपूर्वक जो सर्वेश्वर की आराधना करते हैं, उनके लिए उनकी जाति के अनुसार दीक्षा का क्रम निर्धारित है।

अलसाभिमानिनः[3] क्लिष्टा दाम्भिकाः कृपणास्तथा।
दरिद्राः रोगिणो दुष्टा[4] रागिणो भोगलालसाः।।17।।

1. घ. शुचिव्रततमाः शुद्धाः धार्मिकाः द्विजसत्तमाः।2. घ.स्वजातिधर्मनिरताः।
3. घ. अलसाः मलिनाः।4. घ. रुष्टाः।

असूयामत्सरग्रस्ताः शठाः परुषवादिनः।
अन्योपायार्जितधनाः परदाररताश्च ये।।18।।
विदुषां वैरिणश्चैव ह्यज्ञाः पण्डितमानिनः।
भ्रष्टव्रताश्च ये कष्टवृत्तयः पिशुनाः जनाः।।19।।
बद्धाशिनः[1] क्रूरचेष्टा दुरात्मानश्च निन्दकाः।[2]
एवमेवादयोऽप्यन्ये पापिष्ठाः पुरुषाधमाः।।20।।
अकृत्येभ्योऽनिवार्याश्च गुरुशिष्यासहिष्णवः।
एवंभूताः परित्याज्याः शिष्यत्वेनोपकल्पिताः।।21।।

आलसी, अभिमानी, कठोर हृदय वाले, घमण्डी, कृपण, दरिद्र, रोगी, दुष्ट विषयों में आसक्त तथा भोग करने की लालसा रखनेवाले, सन्देह और ईर्ष्या करनेवाले, धूर्त, कठोर वाणी बोलनेवाले, दूसरे तरीके से धन अर्जित करनेवाले, दूसरे की पत्नी में आसक्त, विद्वानों से शत्रुता रखनेवाले, मूर्ख, स्वयं को पण्डित माननेवाले, नियम से च्युत, कठोर कार्य करनेवाले, चुगली करने वाले, शरीर को बाँधकर अर्थात् सिला हुआ वस्त्र पहनकर खानेवाले, क्रूर व्यवहार करनेवाले, दुष्ट, दूसरे की निन्दा करनेवाले – ये सब और अन्य प्रकार के भी पापाचरण करनेवाले नीच पुरुष हैं। बुरे कार्य करने से मना करने पर भी नहीं रुकनेवाले और गुरु एवं उनके शिष्यों के प्रति असहिष्णु व्यक्ति जो शिष्य बनने के लिए परीक्ष्य हों, उनका परित्याग करना चाहिए।

यदि तेऽभ्युपकल्पेरन् देवताक्रोधसभाजनाः।
भवन्ति हि दरिद्रास्ते पुत्रदारविवर्जिताः।
नरकाश्चैव देहान्ते तिर्यक्षु भवन्ति ते।।22।।

यदि ऐसे व्यक्ति शिष्य बनते हैं तो वे शिष्य देवता के कोप के भागी, दरिद्र, सन्ततिविहीन होते हैं; मरणोपरान्त उन्हें नरक मिलता है तथा पुनर्जन्म लेकर पशु-पक्षी आदि तिर्यक् योनि में उत्पन्न होते हैं।

ये गुर्वाज्ञां न कुर्वन्ति पापिष्ठाः पुरुषाधमाः।
न तेषां नरकक्लेशनिस्तारो मुनिसत्तम।।23।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! जो गुरु की आज्ञा नहीं मानते वे पापी पुरुषों में नीच हैं। उन्हें नरक के क्लेश से छुटकारा नहीं मिलता है।

1. घ. बद्धाशिनः। 2. घ. निन्दिताः

क्षुद्राः[1] प्रलोभितास्तैस्तैर्निन्दितेभ्यो दिशन्ति ये।[2]
विनश्यत्येव तत्सर्वं सैकते शालिबीजवत्।।24।।

क्षुद्र बुद्धि वाले, प्रलोभन के फेर में पड़कर जो जो निन्दित कार्य के लिए किसी को उकसाते हैं, उस गुरु का भी सबकुछ बालू की ढेर पर पड़े धान के बीज के समान नष्ट हो जाता है

यैः शिष्यैः शश्वदाराध्याः गुरवो ह्यवमानिताः।
पुत्रमित्रकलत्रादिसंपद्भ्यः प्रच्युता हि ते।।25।।

जो शिष्य बार बार अपने आराध्य गुरुओं का अपमान करते हैं, वे पुत्र, मित्र, पत्नी और धन सम्पत्ति से विहीन हो जाते हैं।

अधिक्षिप्य गुरून् मोहात् परुषं प्रवदन्ति ये।
शूकरत्वं भवत्येव तेषां जन्मशतेष्वपि।।26।।

गुरुओं पर आक्षेप लगाकर मूर्खतावश जो गुरु के प्रति कठोर वचन कहते हैं, वे सौ जन्मों तक सूअर होते हैं।

ये गुरुद्रोहिणो मूढ़ाः सततं पापकारिणः।
तेषां च यावत्सुकृतं दुःकृतं स्यान्न संशयः।।27।।

जो मूर्ख गुरु से द्रोह करते हुए हमेशा पापाचरण करते हैं उनके द्वारा किये गये अच्छे कार्य भी बुरे फल देते हैं।

तारादिर्मुक्तये लक्ष्मीबीजादिर्भुक्तये तथा।
वाक्सिद्धये च वाग्बीजं प्रणवान्ते विनिक्षिपेत्।।28।।

मोक्ष के लिए पंचाक्षर मन्त्र (रामाय नमः) में तार (ॐकार) लगाकर, सुख-सम्पत्ति के लिए लक्ष्मींबीज (श्रीं) लगाकर तथा वाणी की सिद्धि के लिए वाग्बीज(ऐं) लगाकर प्रणव ॐकार अन्त में जोड़कर जपना चाहिए।

मान्मथं सर्ववश्याय पदं तत् त्रितयं पुनः।
तारान्ते चैव रामादौ सर्वार्थं विनियोजयेत्।।29।।

सर्ववशीकरण के लिए कामबीज (क्लीं) लगाकर तथा सर्वकामना सिद्धि के लिए तीनों पदों ह्रीं, श्रीं, ऐं के बाद तार (ॐकार) लगाकर रामादि का जप करें।

---

1. घ. क्षुब्धाः।2. घ. निन्दितानादिशन्ति च।

रामाय नम इत्येव मन्त्रः पञ्चाक्षरो मनुः।
रामित्येकाक्षरो मन्त्रो राम इत्यपरो मनुः।।30।।

'रामाय नमः' यह एक मन्त्र पाँच अक्षरों का है, 'रां' यह एकाक्षर मन्त्र है तथा 'राम' यह एक अन्य मन्त्र है।

चन्द्रान्तश्चैव भद्रान्तः पुनर्द्वेधा विभज्यते।
स्वकामशक्तिवाग्लक्ष्मीताराद्यः पञ्चवर्णकः।।31।।
षडक्षरः षड्विधः स्याच्चतुर्वर्गफलप्रदः।
पंचाशन्मातृकामन्त्रवर्णप्रत्येकपूर्वकः ।।32।।

'रामचन्द्राय नमः' और 'रामभद्राय नमः' इस प्रकार दो मन्त्र हो जाते हैं। स्वबीज (रां), कामबीज(क्लीं), शक्ति(ह्रीं), वाक्(ऐं), लक्ष्मी(श्रीं) तथा तार (ॐ) इन छह बीजों का आदि में प्रयोग करने से पंचाक्षर मन्त्र छह प्रकार के षडक्षर मन्त्र हो जाते हैं। जिनमें पचास मातृकावर्णों के बीजरूप प्रत्येक के आदि में जोड़कर जप किया जाता है।

लक्ष्मीवाङ्मन्मथादिश्च सर्वत्र प्रणवादिकः।
रामश्च चन्द्रभद्रान्तश्चतुर्थ्यन्तो हृदा [1] सह।।33।।
बहुधा विद्यते तारसहितोऽयं षडक्षरः।

लक्ष्मीबीज, वाक्बीज, कामबीज प्रारम्भ में लगाकर तथा प्रत्येक मन्त्र में तार जोड़कर 'राम' शब्द 'चन्द्र' और 'भद्र' जोड़कर चतुर्थी विभक्ति में 'नमः' के साथ तथा तारक बीज ॐकार के साथ अनेक प्रकार के यह षडक्षर मन्त्र होते हैं।

एकधा च द्विधा त्रेधा चतुर्धा पंचधा तथा।।34।।
षट्सप्तधाष्टधा चैव बहुधायं व्यवस्थितः।

एकाक्षर, द्व्यक्षर, त्र्यक्षर, चतुरक्षर, पंचाक्षर, षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर एवं अनेकाक्षर, इन अनेक प्रकार के मन्त्रों का निरूपण किया गया है।

मन्त्रोऽयमुपदेष्टव्यो ब्राह्मणाद्यनुरूपतः।।35।।
संपूज्य विधिवत् तत्र संस्थाप्य कलशं नवम्।
तत्सामर्थ्यानुरूपेण मृत्सुवर्णमयं तथा।
दात्रा प्रदीयते यद्वन्मन्त्रो देयस्तथा मुने।।36।।

1. क. नमः।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! ब्राह्मण आदि जाति के शिष्यों को उनके अनुरूप विधानपूर्वक पूजा कर सामर्थ्य के अनुसार सोने का या मिट्टी के नवीन कलश की स्थापना कर यह मन्त्र उसी प्रकार शिष्य को दें जैसे कोई दाता किसी को धन देता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये गुरुशिष्यलक्षणं
नामाष्टमोऽध्यायः।।8।।

अथ नवमोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

किं तन्मन्त्रं वद ब्रह्मन् स्वरूपन्तस्य चानघ।
कैर्मन्त्रैर्वा कथं कुत्र लेख्यः किं तेन वा भवेत्।।1।।

हे ब्रह्मन्! मुनि अगस्त्य! वह मन्त्र क्या है? इसका स्वरूप क्या है? किस मन्त्र से किस प्रकार और किस स्थान पर उपासना करनी चाहिए तथा अंकित करने योग्य यन्त्र कैसा है, यह सब हमें बतलायें।

सुतीक्ष्ण उवाच

किं तद्यन्त्रं वद ब्रह्मन् स्वरूपं चास्य चानघ।
कैर्मन्त्रैर्वा कथं कुत्र जाप्यं किं तेन वा भवेत्।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे मुनि अगस्त्य! वह यन्त्र क्या है, इसका स्वरूप क्या है और किन मन्त्रों से कैसे कहाँ जप करना चाहिए और उसका क्या फल मिलेगा?

अगस्त्य उवाच

मनोरथकराण्यत्र नियम्यन्ते तपोधन।
कामक्रोधादिदोषोत्थदीर्घदुःखनियन्त्रणात् ।[1]।2।।
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् रामः प्रीणाति पूजितः।
यन्त्रं मन्त्रमयं प्राहुर्देवता मन्त्ररूपिणी।।3।।

अगस्त्य बोले- यहाँ में मनोरथ पूरा करनेवाले यन्त्रों की विधि बतलाता हूँ। काम, क्रोध आदि दोषों से उत्पन्न दुःखों को नियन्त्रित करने के कारण इसे यन्त्र कहा जाता है। इसपर पूजित श्रीराम प्रसन्न होते हैं। मन्त्र से युक्त यन्त्र होता है, जिसमे मन्त्र-स्वरूप देवता स्वयं होते हैं।

1. घ. कामक्रोधादिदोषोत्थदीर्घयन्त्रनियन्त्रणात्।

यन्त्रेणापूजितो रामः सहसा न प्रसीदति।
श्रीरामः पूजितो नित्यं सीतया सह यन्त्रितः।।4।।
यदिष्टं तत्करोत्येव तत्तन्मन्त्रवरादृते।

यन्त्र के विना पूजित राम शीघ्र प्रसन्न नहीं होते हैं। किन्तु श्री सीता के साथ यन्त्र पर निर्दिष्ट श्रीराम पूजित होकर उस मन्त्रराज के विना भी इष्ट सिद्धि करते हैं।

शरीरमिव जीवस्य रामस्य मनुरुच्यते।।5।।
यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य यदभीष्टं तदाप्नुयात्।[1]
[2]यन्त्रे मन्त्रं समाराध्य प्रसादयति राघवम्।।6।।

जैसे जीव का आश्रय शरीर होता है, उसी प्रकार श्रीराम मन्त्र में विराजमान होते हैं। यन्त्र पर मन्त्र की आराधना करने से कामना की पूर्ति होती है तथा श्रीराम प्रसन्न होते हैं।

[3]सर्वेषामपि मन्त्राणां यन्त्रे पूजा प्रशस्यते।
यन्त्रस्वरूपं वक्ष्यामि ब्रह्मा प्राह यथा पुरा।[3]।7।।

सभी मन्त्रों की पूजा यन्त्र पर प्रशस्त मानी जाती है। ब्रह्मा ने जिस प्रकार प्राचीन काल में कहा था वैसा ही मैं भी कहता हूँ।

आदौ षट्कोणमुद्धृत्य ततो वृत्तं लिखेन्मुने।
दलानि विलिखेदष्टौ ततः स्याच्चतुरस्रकम्।।8।।

सबसे पहले षट्कोण लिखकर तब वृत्त लिखना चाहिए। इसके बाद आठ दल लिखकर चतुरस्र (वर्ग) बनाना चाहिए।

सर्वलक्षणसम्पन्नं व्यक्तं सर्वमनोहरम्।
तदन्तरेऽपि सुव्यक्तं साध्याख्या कर्मगर्भितम्।।9।।

सभी लक्षणों से युक्त, स्पष्ट और सुन्दर यन्त्र लिखकर उसके मध्य में स्पष्ट अक्षरो में अभीष्ट वस्तु और कर्म लिखना चाहिए।

तद्बीजं विलिखेद् भूयस्तत् क्रोडीकृतमन्मथम्।
ततस्तु पञ्चबीजानि पुनरावर्तयेन्मुने।।10।।
पुनर्दशाक्षरेणैव तदेव परिवेष्टयेत्।

1. घ. समाप्नुयात्।2-3. घ. में अनुपलब्ध।

तब बीज मन्त्र के दोनों ओर कामबीज (क्लीं) लिखें। इसके बाद पाँचो बीजाक्षर फिर दुहराएँ। पुनः दशाक्षर मन्त्र से वेष्टित करें।

षडङ्गान्यग्निकोणादि कोणेष्ववक्रमाल्लिखेत्।।11।।
तथा कोणकपोलेषु ह्रीं श्रीं च विलिखेन्मुने।
हुं बीजं प्रतिकोणाग्रं केसराग्रेषु च स्वरान्।।12।।

फिर अग्निकोण से प्रारम्भ कर कोणों में विपरीत क्रम से षडङ्गों को लिखें और कोणों के दोनों ओर 'ह्रीं' और 'श्रीं' लिखें। प्रत्येक कोण के अग्रभाग में 'हुं' बीज लिखें और केसर के अग्रभागों में स्वरों को लिखें।

मालामन्त्रस्य वर्णाः स्युः चत्वारिंशच्च पञ्च च।
वर्णाः सप्तदलेष्वेव षट् षट् पञ्चाष्टमेदले।।13।।
पूर्वतो वेष्टयेत् काद्यैः तत्सर्वं च तपोधन।
बीजद्वयं च विलिखेत् नरसिंहवराहयोः।।14।।
दिग्विदिक्ष्वपि पूर्वस्मात्[1] भूगृहे चतुरस्रके।
यन्त्रेस्मिन् सम्यगाराध्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।15।।

मालामन्त्र में पैंतालीस वर्ण होते हैं, जिनमें सात दलों में छः छः वर्ण लिखें और आठवें में पाँच वर्ण लिखें। पूर्व से 'क' आदि से सबको वेष्टित करें और वराह एवं नरसिंह के बीज (क्ष्रौं) चारो दिशाओं एवं चारो कोणों में वर्गाकर भूपुर पर लिखें। इस यन्त्र पर आराधना कर भोग और मोक्ष दोनों की प्राप्ति होती है।

यद्वा मध्ये लिखेत्तारं षट्सु कोणेष्वपि क्रमात्।
मूलमन्त्राक्षराण्येव सन्धिष्वग्रं च मान्मथम्।।16।।
मायां गण्डेषु किंजल्के स्वराणां लेखने मतम्।
मन्त्रेषु पूर्ववन्मालामन्त्रो लेख्यः क्रमेण हि।।17।।
दशाक्षरेण संवेष्ट्य कादीनि व्यञ्जनानि च।
दिग्विदिक्षु लिखेद् बीजे नारसिंहवराहयोः।।18।।

अथवा मध्य में तथा छः कोणों में क्रम से तार (ॐ कार) लिखें। इसके बाद मूल मन्त्र के अक्षर कोण की सन्धियों पर लिखकर उसके आगे कामबीज (क्लीं) लिखें। कोणों के दोनों बगल में तिरछी रेखा पर माया बीज (ह्रीं) तथा केसर पर

1. क. सर्वासु।

स्वर लिखें। पूर्व की तरह मालामन्त्र दलों पर लिखकर दशाक्षरी मन्त्र से संवेष्टित कर 'क' आदि व्यञ्जन लिखें तथा दिशा और उसके कोणों में नरसिंह (क्ष्रौं) और वराह के बीज (ह्रौं) लिखें।

एतद्यन्त्रान्तरं चात्र साङ्गावरणमर्चयेत्।
सौवर्णे राजते भूर्जे लिखित्वार्चनमाचरेत्।।19।।

इस यन्त्र अथवा दूसरे यन्त्र की पूजा अंगों एवं आवरण के साथ करें। इस यन्त्र को सोना, चांदी या भूर्जपत्र पर लिखकर पूजा प्रारम्भ करें।

हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा क्षौ हं विनिर्दिशेत्।
दशाक्षरो वराहस्य नृसिंहस्य मनुः स्मृतः।।20।।

"हुं जानकीवल्लभाय स्वाहा क्षौं हं" यह नृसिंह और वराह का दशाक्षर मन्त्र है।

ह्रीं श्रीं क्लीं चोंन्नमो ब्रूयात् ततो भगवते पदम्।
रघुनन्दनायेति पदं [1] रक्षोघ्नविशदाय च।।21।।
मधुरेति प्रसन्नेति वदनाय पदं वदेत्।
विशेषणं पञ्चमं च ब्रूयादमिततेजसे।।22।।
ततो बलाय रामाय विष्णवे नम इत्यपि।

ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।[2]

मालामन्त्र का स्वरूप- "ह्रीं श्रीं क्लीं ॐ नमः' बोलें। इसके बाद 'भगवते' यह शब्द बोलें। इसके बाद 'रघुनन्दनाय' यह शब्द, फिर 'रक्षाघ्नविशदाय' भी बोलें। तब 'मधुर' 'प्रसन्न' और 'वदनाय' बोलें। तब विशेष रूप से पाँचवाँ पद 'अमिततेजसे' यह बोलें। तब 'बलाय' 'रामाय' और 'विष्णवे नमः' यह भी बोलें। इस प्रकार मन्त्र का ऐसा स्वरूप होगा- ह्रीं श्रीं क्लीं नमो भगवते रघुनन्दनाय रक्षोघ्नविशदाय मधुरप्रसन्नवदनाय अमिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमः।

मालामन्त्रोऽयमुद्दिष्टो नृणां चिन्तामणिः स्मृतः।
ॐश्रीं सीतायै वह्निजाया तु सीतामन्त्र उदाहृतः।।23।।

1. घ. रघुनन्दनाय पदं ब्रूयाद्रक्षोघ्नविशदाय च। 2. घ. में अनुपलब्ध।

यह मालामन्त्र कहा जाता है जो साधकों के लिए 'चिन्तामणि के रूप में धारण किया जाता है।' ॐ श्रीं सीतायै' के साथ वह्निजाया (स्वाहा) लगाकर सीतामन्त्र है।

यन्त्रेऽस्मिन् राममाराध्य साङ्गावरणमादरात्।
आराध्य गुलिकीकृत्य[1] धारयेद्यन्त्रमन्वहम्।।24।।

इस यन्त्र पर आदरपूर्वक अंग-पूजा और आवरण-पूजा के साथ श्रीराम की आराधना कर इस यन्त्र को मोड़कर गोल बनाकर प्रतिदिन धारण करना चाहिए।

दारिद्र्यदुःखशमनं पुत्रपौत्रप्रदन्तथा।
ऐश्वर्यकृद् वश्यकरं शत्रुसंहारकारकम्।।25।।
विद्याप्रदं सौख्यकरं रोगशोकनिवारणम्।।26।।
पराभिचारकृत्येषु वज्रपञ्जरमुच्यते।
किं मन्त्रं बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदं मुने।।27।।

यह यन्त्र दारिद्र्य और दुःख का शमन करता है; पुत्र और पौत्र प्रदान करनेवाला है, ऐश्वर्य देता है, सबको वश में ला देता है शत्रुओं का संहार करता है। यह विद्या देनेवाला, सुख देनेवाला, रोग और शोक को हटानेवाला है। दूसरे पर अभिचार कर्मों में 'वज्रपंजर' कहलाता है। अनेक बार मन्त्र जपने से क्या लाभ? यह यन्त्र ही सभी सिद्धियों को प्रदान करनेवाला है।

इत्यगस्त्यसंहितायां यन्त्रविधिर्नाम नवमोऽध्यायः।।9।।

दशमोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

पूजाविधानं वक्ष्यामि नारदाभिमतं च यत्।
वाल्मीकये मुनीन्द्राय द्वारपूजादिकं तथा।।1।।
आकर्णय मुनिश्रेष्ठ सर्वाभीष्टफलप्रदम्।।2।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! नारद ने मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि को जो पूजा तथा द्वार पूजा विधि बतलायी थी वह मैं कहता हूँ, उसे सुनो इससे सभी मनोरथ सफल हो जाते हैं।

1. क. गुटिकीकृत्य।

श्रीरामद्वारपीठाङ्गपरिवारतया स्थिता:।
ये सुरास्तानिह स्तौमितन्मूला: सिद्धयो यत:।

श्रीराम के द्वार पर, पीठ पर, अङ्ग के रूप में तथा परिवार के रूप में जो देवगण उल्लिखित हैं, उनकी स्तुतियाँ मैं करता हूँ; क्योंकि सिद्धियाँ उन्ही के द्वारा प्राप्त होतीं हैं।

वंदे गणपतिं भानुं त्रिलोकस्वामिनं शिवम्।।3।।
क्षेत्रपालं तथा धात्रीं विधातारमनन्तरम्।
गृहाधीशं गृहं गंगां यमुनां कुलदेवताम्।।4।।
प्रचण्डचण्डौ च तथा शंखपद्मनिधी अपि।
वास्तोष्पतिं द्वारलक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम्।।5।।

सर्वप्रथम गणेश, सूर्य, तीनों लोकों के स्वामी शिव, क्षेत्रपाल तथा धात्री की पूजा करें। इसके बाद ब्रह्मा की पूजा करें। फिर वास्तु के स्वामी, वास्तु, गंगा, यमुना और कुलदेवता की पूजा करें। प्रचण्डा, चण्ड, शंख, पद्म, निधि, वास्तोष्पति, द्वारलक्ष्मी, गुरु और वाक् की देवता सरस्वती की पूजा करें।

एता: संपूज्य भक्त्याहं श्रीरामद्वारदेवता:।
महामण्डूककालाग्निरुद्राभ्यां प्रणमाम्यहम्।।6।।
आधारशक्तिकूर्माभ्यां नागाधिपतये तथा।
पृथिव्यै च तथा लक्ष्म्यै सागराय[1] नमो नम:।।7।।
श्वेतद्वीपाय रत्नाद्रौ कल्पवृक्षाय ते नम:।
सुवर्णमण्डपायाथ पुष्पकाय महार्हते।।8।।
विमानायाष्टरत्नाय सम्यक्सिंहासनाय च।
उद्यदादित्यसंशोभिपद्माय तदनन्तरम्।।9।।

श्रीराम के इन द्वार-देवताओं की पूजा कर प्रार्थना करें- 'महामण्डूक और कालाग्निरुद्र को प्रणाम करता हूँ। आधारशक्ति और कूर्मदेव को प्रणाम। शेषनाग को प्रणाम। पृथ्वी, लक्ष्मी और सागर को प्रणाम। श्वेतद्वीप और रत्नपर्वत पर स्थित कल्पवृक्ष को प्रणाम। सुवर्ण-मण्डप और विशाल पुष्पक विमान को प्रणाम। आठो रत्नों को और सुन्दर सिंहासन को प्रणाम। इसके बाद उगते हुए सूर्य के समान शोभायमान कमल पुष्प को प्रणाम।

---

1. क. क्षीरसागराय

नमामि धर्मज्ञानाभ्यां वैराग्याद्यग्नितः क्रमात्।
ऐश्वर्याय नमो धर्माज्ञानाभ्यां पूर्वतस्तथा।।10।।
अवैराग्याय च तथानैश्वर्याय नमो नमः।

इसके बाद धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य को अग्निकोण से आरम्भ चारो कोणों में प्रणाम। पूर्व में धर्म और अज्ञान, दक्षिण में ज्ञान और अवैराग्य पश्चिम में वैराग्य और अनैश्वर्य तथा उत्तर में ऐश्वर्य और अधर्म को प्रणाम।

अं अर्कमण्डलायाहमुपर्युपरि सर्वदा।।11।।
सत्त्वाय रजसे नित्यं तमसेपि नमो नमः।
चं चन्द्रमण्डलमिति ध्यात्वाध्यात्वा नमाम्यहम्।।12।।
रमग्निमण्डलायेति सम्पूज्यैव प्रयत्नतः।
विमलोत्कर्षिणीज्ञानाक्रियायोगाभ्य इत्यपि।।13।।
नमामि प्रह्वीसत्याभ्यामीशानायै दलान्तरे।
पूर्वादितोऽनुग्रहायै प्रणमामि तदन्तरे।।14।।

यन्त्र पर सूर्यमण्डल के ऊपर हमेशा सत्त्व, रजस् और तमस् को प्रणाम। चन्द्रमण्डल को बार-बार ध्यान कर प्रणाम। 'रं' स्वरूप अग्निमण्डल को प्रणाम। इस प्रकार यत्नपूर्वक पूजित दलों के मध्य में- विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, प्रह्वी, सत्या और ईशाना' को पूर्व से प्रारम्भ कर प्रणाम। इसके बाद अनुग्रहा को प्रणाम।

नमो भगवते तद्वद् विष्णवे तदनन्तरम्।
सर्वभूतात्मने चेति वासुदेवाय इत्यपि[1]।।15।।
ततः सर्वात्मकायेति योगपीठात्मने नमः।।
प्रणवादिनमोऽन्ताय मन्त्रपीठात्मने नमः।।16।।

इसके बाद भगवान् विष्णु को प्रणाम। प्रत्येक प्राणी की आत्मा में रहनेवाले वासुदेव को प्रणाम। तब सभी की आत्मा के स्वरूप योगपीठ स्वरूप सिंहासन को प्रणाम। आदि में प्रणव (ॐ कार) और अन्त में 'नमः' से युक्त मन्त्र पीठस्वरूप को प्रणाम।

यजामहे स्वरामों ह्रीं आत्मना संव्यवस्थितौ।
नमोऽन्ताय रामाय ससीताय नमो नमः।।17।।

---

1. घ. इत्यथ।

सांनिध्याधारयोगेन नियतेन षडात्मना।
व्यवस्थिताय रामाय नमोऽनन्ताय विष्णवे[1]।।18।।
श्रीबीजाद्योऽपि सीतायै स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः।
तदेतन्मन्त्ररूपाय रामाय ज्योतिषे नमः।।19।।

ॐ रां रां यजामहे, ॐ ह्रीं आत्मने नमः, ॐ रामाय नमः, ॐ ससीताय नमः। सान्निध्य और आधार के संयोग से नियत रूप में जो छह स्वरूपों में स्थित हैं, ऐसे श्रीराम को प्रणाम। ॐ अनन्ताय नमः, ॐ विष्णवे नमः, ॐ श्रीं सीतायै स्वाहा ये षडक्षर मन्त्र हैं। इन मन्त्रों के स्वरूप ज्योतिःस्वरूप राम को प्रणाम।

सानुस्वारस्वरान्ताय वह्नये हृदयाय च।
नमश्चैव स्वरान्ताय स्वाहान्ताय कृशानवे।।20।।
शिरसेऽप्यग्नये चान्तः शिखायै वषडात्मने।।
ऐमस्त्राय हृदे नित्यं कवचाय हुं ते नमः[2]।।21।।
चतुर्दशस्वरान्ताय सानुस्वाराय वह्नये।।
नेत्राभ्यां वौषडान्ताय परोऽस्त्राय फडात्मने।।22।।

अनुस्वार के साथ अन्त में रेफ लगाकर वह्निदेव से न्यस्त हृदय को प्रणाम। वृद्धि के स्वामी अग्नि को प्रणाम। (एधेश्वराय कृशानवे स्वाहा) शिर पर न्यस्त वकार सहित अग्नि को प्रणाम (वं अग्नये शिरसे स्वाहा) वषट्कार जो शिखा पर न्यस्त हैं उन्हें प्रणाम। ('शिखायै वषट्') ऐं सहित वह्नि, जो नित्य कवच स्वरूप हैं उन्हें प्रणाम (ऐं वह्नये कवचाय हुम्) अनुस्वार सहित चतुर्दश स्वरों के साथ वह्नि जो वौषट् स्वरूप दोनों नेत्रों में न्यस्त हैं उन्हें प्रणाम (अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं ए ऐं ओं औ वह्नये नेत्राभ्यां वौषट्) इसके बाद फट् स्वरूप अस्त्र को प्रणाम (अस्त्राय फट्)

एवं नमः षडङ्गाय रामाय ज्योतिषे नमः।
आत्मान्तरात्मपरमज्ञानात्मभ्योऽग्नितः क्रमात्।।23।।

इस प्रकार आत्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, ज्ञानात्मा स्वरूप जो ज्योतिः स्वरूप राम क्रमशः अग्नि, नैर्ऋत्य, वायव्य और ईशान कोण में स्थित हैं, उन्हें प्रणाम।

निवृत्त्यै च प्रतिष्ठायै विद्यायै ते नमाम्यहम्।
शान्त्यै चात्मादिशक्तित्वे स्थित्यै तद्रूपिणे नमः।।24।।

1. घ. वह्नये। 2. घ. हुमेव च।

वासुदेवाय ते नित्यं तथा संकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रियै शान्त्यै नमो नमः।।25।।
प्रीत्यै रत्यै नमो राम द्वितीयावरणात्मने।

निवृति, प्रतिष्ठा, विद्या और शान्ति जो आत्मा आदि चारों की शक्तियाँ हैं, उन्हें प्रणाम। वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध इन चारो को प्रणाम। पुनः श्रीः, शान्ति, प्रीति और रति जो इनकी शक्तियाँ हैं, उन्हें द्वितीयावरण में प्रणाम।

अग्रे हनूमान् सुग्रीवो भरतश्च विभीषणः।।26।।
लक्ष्मणोऽप्यङ्गदश्चैव शत्रुघ्नो जाम्बवाँस्तथा।
धृष्टिर्जयन्तो[1] विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्द्धनः।।27।।
अकोपो धर्मपालश्च सुमन्तश्चाष्टमन्त्रिणः।
ऐतेभ्यो रामरूपेभ्यो युष्मभ्यं प्रणमाम्यहम्।।28।।

आगे में हनूमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न, जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त ये आठ मन्त्री हैं। ये सोलह, जो रामस्वरूप हैं, उन्हें प्रणाम।

इन्द्राग्नियमदेवेभ्यो सायुधेभ्यो नमो नमः।
नमो निर्ऋतये तुभ्यं वरुणाय नमो नमः।।29।।
वायवे धनदायाथ रुद्रायेशाय ते नमः।
ब्रह्मणेऽनन्तरूपाय दिक्पालायात्मने नमः।।30।।

अपने अपने अस्त्र-शस्त्रों के साथ इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, रुद्र, ब्रह्मा और अनन्त इन दश दिक्पालों को प्रणाम।

तदायुधाय वज्राय शक्तये दण्डकाय च।
नमः खड्गाय पाशाय ध्वजाय च गदात्मने।।31।।
त्रिशूलायाम्बुजायाथ चक्राय सततं नमः।

इनके अस्त्र-शस्त्र स्वरूप वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, ध्वज, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र को सदा प्रणाम।

वसिष्ठो वामदेवश्च जाबालिर्गोतमस्तथा।।32।।
भरद्वाजः कौशिकश्च वाल्मीकिर्नारदस्तथा।

1. घ. धृतिर्जयन्तो।

वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि और नारद ये आठ पार्षद् ऋषि हैं।

नलं नीलं च गवयं गवाक्षं गन्धमादनम्।।33।।
सुरभिश्चापि मैन्दं च द्विविदं च जपेत् क्रमात्।[1]

नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि, मैन्द और द्विविद का भी क्रमशः जप करना चाहिए।

शङ्खचक्रगदापद्मशार्ङ्गबाणात्मने नमः।।34।।
गरुत्मते नमस्तुभ्यं विष्वक्सेनादिकाश्च ये।

शंख, चक्र, गदा, पद्म, शार्ङ्ग और वाण इन शस्त्रास्त्रों को प्रणाम। हे गरुड़ आपको प्रणाम, शार्ङ्ग धारण करने वाले विष्वक्सेन आदि को प्रणाम।

सर्वैश्वर्यस्वरूपाय ज्योतिषे सततं नमः।।35।।
मनोवाक्कायसहितं कर्म यद् वा शुभाशुभम्।।
तत्सर्वं प्रीतये भूयान्नमो रामाय शार्ङ्गिणे।।36।।

सभी प्रकार के ऐश्वर्य के स्वरूप तथा प्रकाशस्वरूप श्रीराम को प्रणाम। मेरे मन, वचन तथा शरीर से जो भी शुभ अथवा अशुभ कर्म किये गये हैं उन सबसे श्रीराम प्रसन्न हों। शार्ङ्ग धनुषधारी श्रीराम को प्रणाम।

एतद् रहस्यं सततं प्रत्यूषसि समाहितः।
यः पठेद् राममाहात्म्यं सर्वैश्वर्यनिधिर्भवेत्।[2]।37।।
विनाशयेदसौभाग्यं दारिद्र्यौघं निकृन्तयेत्।
उपद्रवांश्च शमयेत् सर्वलोकं वशं नयेत्।।38।।
यः पठेत् प्रातरुत्थाय ब्रह्मार्पणधियान्वहम्।
स याति शाश्वतं ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्ल्लभम्।।39।।

जो प्रतिदिन प्रातःकाल इस रहस्यमय राम माहात्म्य का पाठ करते हैं, वे सभी ऐश्वर्यों के भण्डार बन जाते हैं। यह माहात्म्य दुर्भाग्य का विनाश करता है; दरिद्रताओं को काटता है, उपद्रवों को शान्त करता है, सबको वश में ला देता है। जो प्रातःकाल उठकर ब्रह्म को समर्पित करने की बुद्धि से प्रतिदिन स्तोत्र का पाठ करते हैं। वे उस अविनाशी ब्रह्म को पा लेते हैं, जहाँ से पुनर्जन्म नहीं होता।

1. घ. ये चार चरण में अनुपलब्ध। 2. घ. विश्वैश्वर्य०

नारदीयमिदं स्तोत्रं सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
पठितव्यं प्रयत्नेन रामार्चनपरायणैः।।40।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! यह नारदोक्त स्तुति है जिसे श्रीराम की उपासना करनेवालों को प्रयत्नपूर्वक पढ़ना चाहिए।

गणपत्यादयः सर्वे द्वाराङ्गावृत्तिरूपिणः।
प्रणवादिचतुर्थ्यादिनमोन्ताः स्वस्वनामभिः।।41।।
पूजनीयाः प्रयत्नेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
उपचारैः षोडशभिः तथैकादशभिर्मुने[1]।।42।।
पंचभिर्वा प्रयत्नेन स्वशक्त्यानुरूपतः।

गणपति आदि सभी जो द्वारदेवता, अङ्ग देवता और चारो ओर फेरा लगानेवाले (परिक्रमा करनेवाले) देवता हैं, उनकी पूजा गन्ध, पुष्प, अक्षत आदि से प्रणव (ॐकार) आरम्भ में तथा नमः अन्त में लगाकर अपने अपने नाम के चतुर्थ्यन्त पद से पंचोपचार, एकादशोपचार तथा षोडशोपचार से अपनी शक्ति के अनुसार करें।

गणपत्यादयोऽप्येवं पूजनीयाः प्रयत्नतः।।
[2]गणपत्यादयो ह्येते पूजिताः पूजयन्त्यपि।।43।।
[3]तस्मात् सर्वप्रयत्नेन स्तोत्रमेतत् समभ्यसेत्।।44।।

इसी प्रकार गणपति आदि की भी पूजा करनी चाहिए। ये गणपति आदि पूजित होकर स्वयं श्रीराम की पूजा करते हैं, अतः सभी उपायों से इस स्तोत्र का अभ्यास करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पूजाविधिर्नाम
दशमोऽध्यायः।

1. घ. पुनः । 2.-3. घ. में अनुपलब्ध।

एकादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

शरीरं शोधयेदादावधिकारार्थमन्वहम्।
तीर्थावगाहनं बाह्येऽप्यन्तर्भूतविशोधनम्।।1।।
मातृकान्यासयोगैश्च शोधयेद् विध्यनुष्ठितः।

अगस्त्य बोले– प्रतिदिन पूजा के अधिकारी बनने के लिए सबसे पहले शरीर की शुद्धि करें। बाह्य शोधन के लिए जल में डुबकी लगावें तथा आन्तरिक शोधन के लिए विधिपूर्वक मातृकावर्णों का न्यास करें।

पूजाद्रव्याणि च ततः शोधयेत् प्रोक्षणादिभिः।।2।।
पूजापात्राणि शङ्खञ्च शोधयेत् क्षालनादिना।
शुद्धश्च शुद्धद्रव्यैश्च पूजयेत् पुरुषोत्तमम्।।3।।
एवमाराधितो देवः सम्यगाराधितो भवेत्।
न चेन्निरर्थकं सर्वं सिन्धुसैकतवृष्टिवत्।।4।।

इसके बाद पोंछकर पूजा में प्रयुक्त सामग्रियों का शोधन करें। पूजा की थाली, लोटा, शंख, आदि को जल से धोवें। पवित्र पात्रों और सामग्रियों से पुरुषोत्तम की पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार आराधना करने से देवता अच्छी तरह प्रसन्न होते हैं, नहीं तो समुद्र की रेत पर हुई वर्षा के समान सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

शौचाचमनहीनस्य स्नानसन्ध्यादिकाः क्रियाः।
निष्फलाः स्युर्यथा चेतो ह्यन्तरेण भवेत्तथा।।5।।

शौच और आचमन किये विना जो स्नान, सन्ध्या आदि करते हैं, उनकी समस्त क्रियाएँ व्यर्थ हो जाती हैं, जैसे चेतन के विना सब कुछ व्यर्थ हो जाता है।

संशोध्य पूजाद्रव्याणि स्वस्यापि बाह्येरन्तरम्।
शङ्खञ्च पूजयेत् पूर्वं पूज्यं पूजार्हतां व्रजेत्।।6।।

पूजा-सामग्रियों को पवित्र कर स्वयं भी बाहर और भीतर से पवित्र होकर शंख की पूजा करें। पहले पूजित शंख पूजा का साधन बनने योग्य होता है।

पूजकस्याथ पूज्यस्यापावनस्य कृतं वृथा।
अपावनान्यपूज्यानि साधनानि विवर्जयेत्।।7।।

अपवित्र पूजक ओर पूज्य दोनों द्वारा किए गये कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। अतः अपवित्र एवं अपूज्य साधन का त्याग कर देना चाहिए।

अतः स्नात्वा प्रकुर्वीत भूतशुद्धिं विधाय च।
विन्यस्य मातृकां पूर्वं वैष्णवीं केशवादिकाम्।।8।।

इसलिए स्नान करके भूत-शुद्धि कर पहले वैष्णव और केशव की मातृका का न्यास करें।

विधाय तत्त्वन्यासञ्च न्यासं तन्मूर्तिपञ्जरम्।
तदृषिच्छन्दसोर्न्यासं[1] तथा तन्मन्त्रदेवताम्।।।9।।
विन्यस्यैव षडङ्गानि तत्तद्बीजाक्षराणि च।

इसके बाद तत्त्वन्यास, मूर्ति-पंजरन्यास, ऋषि-न्यास, छन्दोन्यास, मन्त्र-न्यास तथा देवता-न्यास करें। इस छह अंगों का न्यास कर उनके बीजाक्षरों का भी न्यास करें।

अथातो देवताध्यानं ततः पूजनमन्ततः।।10।।
ततो निवेद्य तत्सर्वं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।
ततो विज्ञाप्य देवेशं परिवारांश्च पूजयेत्।।11।।
एवं सम्पूजितो देवः सर्वान् कामान् प्रयच्छति।

इसके बाद देवता का ध्यान कर पूजन करें। इसके बाद सब कुछ निवेदित कर अनन्यचित्त होकर मन्त्र का जप करें। तब मुख्य देव श्रीराम को सबकुछ ज्ञापित कर श्रीराम के परिजनों की पूजा करें। इस प्रकार पूजित देव सभी कामनाओं की पूर्ति करते हैं।

बाह्यपूजां ततः कुर्यादैहिकाभ्युदयाय वै।।12।।
विलिप्य वेदिकां सम्यङ्मण्डलं तत्र कारयेत्।

तब सांसारिक उन्नति के लिए बाह्य पूजा करें। तब वेदिका को लीप कर वहाँ उचित रीति से यन्त्र का निर्माण करावें।

---

1. घ. छन्दसोऽभ्यासं।

शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः।।13।।
लिखेदष्टदलं पद्मं चतुरस्त्रसमावृतम्।
षट्कोणं कर्णिकामध्ये कोणाग्रे वृत्तसंवृतम्।।14।।

धान के चावल के चूर्ण से नीला, पीला, सफेद और अन्य रंगों से चौकोर भूपुर सहित अष्टदल कमल बनायें और कर्णिका पर षट्कोण बनाकर उसके कोणाग्रभाग पर वृत्त बनाएँ।

साध्यमेतत् ततो शोभारेखाभिरुपशोभितम्।
सम्पूज्य मण्डलं चैव तत्र सिंहासनं न्यसेत्।।15।।

बीच में साध्य लिखकर सुन्दर रेखाओं से शोभित मण्डल की पूजा कर वहीं श्रीराम और श्रीसीताजी का सिंहासन रखें।

चन्द्रोदयपताकैश्च तोरणैरपि सर्वतः।
विचित्रं तत्र तत्रापि भित्तिस्तम्भस्थलादिषु।।16।।

चँदोवा, पताका और बंदनवार से सर्वत्र अनेक प्रकार से सुन्दर ढंग से दीवाल खम्भा आदि को सजायें।

एवं सुशोभितस्थाने सर्वमङ्गलसंयुते।
पुण्यस्त्रीभिर्गृहस्थैश्च परितो व्यवहर्तृभिः।।17।।
गायद्भिरपि नृत्यद्भिर्वदद्भिः स्तुतिपूर्वकम्।[1]
भेरीमृदङ्गवंश्यादिकांस्यतालादिभिर्बहु[2] **।।18।।**
[3]**वादयद्भिश्च बहुधा सम्यगाराधितो यदि।**
रघुनाथः स्वयं तत्र प्रसन्नो भगवान् भवेत्।।19।।

इस प्रकार शुभ वस्तुओं से सुशोभित, पुण्यवती स्त्रियों और गृहस्थों पूजा-सामग्रियों को लानेवाले लोगों, गायकों, नर्तकों और अनेक स्तुति करनेवालों, तुरही, मृदङ्ग, बाँसुरी, झाल आदि बजानेवालों से घिरे हुए स्थान में सम्यक् पूजित होकर श्रीराम स्वयं वहाँ प्रसन्न होते हैं।

संपाद्य विविधैः पुष्पैः पूजयेच्चारुडालिकाम्।[4]
तुलसी पद्मजात्याद्यैर्मालैर्बहुविधैरपि।।20।।

अनेक प्रकार के फूलों, कमल, जूही, विभिन्न प्रकार की माला तथा तुलसीदल आदि से भरी सुन्दर डाली (चंगेरी) की पूजा करें।

---

1. घ. स्तुतिरूपकम्।2. घ. ⁰र्मुहुः।3. घ. में अनुपलब्ध।4. पूजयेत्पुष्पचंधनीम्।

स्वपुरो दक्षिणे तीर्थशुद्धवारिसुपूरितम्।
कलशं स्वपुरो वामभागे तु विनियोजयेत्।।21।।
अन्यानि पूजाद्रव्याणि पुरस्तादेव निक्षिपेत्।

इसे अपने आगे दाहिने भाग में रखें तथा तीर्थ के जल से भरा हुआ कलश अपने आगे वायें भाग में रखें। पूजा की अन्य सामग्रियाँ सामने में ही रखें।

आराधनाय देवस्य वेदिकाधः सुखासने।।22।।
कुशास्तरणवैयाघ्रचर्मवासो - विनिर्मिते ।
उपविश्य शुचिर्मौनी भूत्वा पूजां समाचरेत्।।23।।

देव की आराधना के लिए वेदी के नीचे सुख से वैठने योग्य आसन, जो कुश, व्याघ्रचर्म या कपड़े का वना हुआ हो उसपर मौन होकर बैठें और पूजा का आरम्भ करें।

तुलसीकाष्ठघटितैः रुद्राक्षाकारकारितैः।
शङ्खचक्रगदापद्मपादुकाकारकारितैः ।।24।।
निर्मितां मालिकां कण्ठे[1] निधायार्चनमाचरेत्।

रुद्राक्ष, शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म या पादुका की आकृति की बनी हुई तुलसीकाष्ठ की माला कण्ठ में धारण कर पूजा प्रारम्भ करें।

तथामलकमालां च सम्यक् पुष्करमालिकाम्।।25।।
निर्माल्य तुलसीमालां शिरस्यपि निधाय वै।

साथ ही, आँवले के पुष्प की माला, या कमल की सुन्दर माला या तुलसी की माला शिर पर रखकर पूजा आरम्भ करें।

निर्लिप्य[2] चन्दनेनाङ्गमङ्कयेत् तस्य नामभिः।
तस्यायुधानि बाह्वोश्च तेनैव द्विजसत्तम।

अंगों पर चन्दन से श्रीराम के नामों का लेखन करें तथा बाहों पर उनके धनुष, बाण, गदा आदि आयुधों का अंकन उसी चन्दन से करें।

पापिष्ठो वाप्यपापिष्ठः सर्वज्ञोऽप्यज्ञ एव वा।।27।।
भवेदेवाधिकारोऽत्र पूजाकर्मण्यसंशयः।

---

1. घ. कर्णे।2. घ. निर्माल्य।

पापी हो या निष्पाप, विद्वान् हो या मूर्ख, श्रीराम की पूजा में सबका अधिकार है, इसमें सन्देह नहीं।

पद्मस्वस्तिकभद्रादिरूपेणाकुञ्च्य पद्द्वयम्।।28।।

पद्मासन, भद्रासन या स्वस्तिकासन के रूप में दोनों पैरों को मोड़कर बैठें।

विनायकं नमस्कृत्य सव्यांशे च सरस्वतीम्।
दक्षिणांशे पूर्ववच्च दुर्गां च क्षेत्रपं पुनः।।29।।
प्रणम्याथ गुरून् भूयो नत्वा गुरुपरम्पराम्।

गणेशजी को प्रणाम कर बायें भाग में सरस्वती को तथा पूर्ववत् दायें भाग में पर दुर्गा का न्यास कर पुनः वहीं क्षेत्रपाल का न्यास कर उन्हें प्रणाम करें। गुरु को प्रणाम कर अपनी गुरु-परम्परा को प्रणाम करें।

ततो देवं नमस्कृत्य कुर्यात् तालत्रयं पुनः।।30।।
तारमस्त्राय[1] फट् प्रोक्ता भ्रामयेद् दक्षिणं करम्।

तब देवता को प्रणाम कर तीन ताल की क्रिया (तेताला) करें। तब "ॐ अस्त्राय फट्" इस मन्त्र से दाहिने हाथ को घुमावें।

ततस्तु चिन्तयेद्देवमन्तःस्थानत्रयान्तरे।।31।।
ज्योतिर्मयमनःपूतं सत्यं ज्ञानसुखात्मकम्।

तब ज्योतिःस्वरूप, प्राणियों में पवित्र, सत्य, ज्ञान और सुख-स्वरूप देवता का ध्यान अन्तःकरण के तीनों में करें।

आत्मनः परितो वह्निं प्राकारं त्राणनाय च।।32।।
भूतप्रेतपिशाचेभ्यो विधाय तदनन्तरम्।
अद्भिः पुण्याक्षतैश्चैव वह्निबीजास्त्रमन्त्रितैः।।33।।
प्रक्षिपेत् परितो मन्त्री भयविघ्ननिवृत्तये।

इसके बाद घर की रक्षा के लिए अपने चारों ओर अग्नि का पूजन करें। तब भूत, प्रेत और पिशाच के लिए जल, अक्षत लेकर वह्निबीज (रं) एवं अस्त्र-मन्त्र 'फट्' से अभिमन्त्रित कर भय और विघ्न के नाश के लिए चारों ओर छिड़के।

हृदम्बुजे ब्रह्मकन्दसम्भूते ज्ञाननालके।।34।।
ऐश्वर्याष्टदलोपेते ज्ञानवैराग्यकर्णिके।[2]
आराग्रमात्रो जीवस्तु चिन्तनीयो मनीषिभिः।।35।।

1. क. ॐ कारश्चास्त्राय। 2. घ. परे वैराग्यकर्णिके।

हृदय रूपी कमल के ब्रह्म रूपी कन्द से निकले हुए ज्ञान रूपी नाल पर ऐश्वर्य आदि आठ दलों वाला कमल है, जिसकी कर्णिका (कमल का मध्य भाग) ज्ञान और वैराग्य की है, इस कमल पर आरे की नोक के समान सूक्ष्म जीव अवस्थित है, इस प्रकार का ध्यान मनीषियों को करना चाहिए।

नेतव्यो हंसमन्त्रेण द्वादशान्तः स्थितः परः।
तेन संयोज्य विधिवत् भूतशुद्धिं तथाचरेत्।।36।।

द्वादशार चक्र से इसे 'हं सः' इस मन्त्र से ऊपर लाना चाहिए और उससे शरीर का संयोजन कर भूत-शुद्धि करना चाहिए।

भूतानि चाथ[1] पृथिवी जलं तेजो मरुद् वियत्।
यद्यतो जायते तस्मिन् प्रलयोत्पादनं पुनः।।37।।

पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश ये पाँच भूत हैं, जहाँ से सृष्टि की उत्पत्ति होती है और पुनः उसी से जा मिलती है और पुनः उत्पन्न होती है।

शरीराकारभूतानां भूतानां शोधनं विदुः।
मरुदग्निसुधाबीजैः पञ्चाशन्मातृमात्रकैः।।38।।
प्राणान्निरुध्यात्मदेहं शोधयेत् तत्पुनर्दहेत्।
तं देहं पुनराप्लाव्य पुनर्जीवमिहानयेत्।।39।।

शरीर के आकार में स्थित इन पाँच भूतों की शुद्धि ही भूतशुद्धि है। वायुबीज (यं) अग्निबीज (रं) और सुधाबीज (वं) के साथ पचास मातृकाओं से यह क्रिया करें। इसमें सबसे पहले प्राणवायु को रोककर अपने सूक्ष्म शरीर का शोधन करें, फिर उस अध्यात्म रूप सूक्ष्म शरीर को अग्नि में जलावें, फिर उसे जल मे डुबोकर जीव को शरीर में प्रविष्ट करावें।

जीवने पुनरात्मानं चिन्तयेत् पुरुषाप्तये।
जीवस्य तत्त्वसिद्ध्यै च तस्याप्यात्मत्वसिद्धये।।40।।

जीवन में फिर पुरुषस्वरूप की प्राप्ति के लिए जीव के तत्त्व की सिद्धि तथा आत्मत्व की सिद्धि के लिए आत्मतत्त्व का चिन्तन करें।

नयनानयनार्थं च हंसः सोऽहमितीरयेत्।
भूतशुद्धिरियं नाम कर्त्तव्या मनसार्थकृत्[2]।।41।।

1. घ. नाम।2. घ. भूतसाक्ष्यकृत्।

शरीर से जीव को अलग करने और लाने के लिए क्रमशः 'ॐ हंसः' और 'ॐ सोऽहम्' इन मन्त्रों का प्रयोग करें। यह भूतशुद्धि कहलाती है, जो मन से करनी चाहिए। इससे प्रयोजन की सिद्धि होती है।

भूतशुद्धिं विना यस्य तपहोमादिकाः क्रियाः।[1]
भवन्ति निष्फलाः सर्वाः प्रकारेणाप्यनुष्ठिताः।।42।।

भूत शुद्धि के विना जो तप, होम आदि क्रियाएँ करते हैं, उनकी सभी क्रियाएँ विधानपूर्वक करने के बाद भी निष्फल होती हैं।

गृहोपसर्पणं चैव तथानुगमनं हरेः।
भक्त्या प्रदक्षिणं चैव पादयोः शोधनं विदुः[2]।।43।।

भगवान् के गृह (मन्दिर) जाना, श्रीहरि का अनुगमन करना तथा भक्ति पूर्वक प्रदक्षिणा करना ये तीन पैरों की शुद्धि है।

पूजार्थं पत्रपुष्पाणां भक्त्यैवोत्तोलनं हरेः।
करयोः सर्वशुद्धीनामियं शुद्धिर्विशिष्यते।।44।।

श्रीहरि की पूजा के लिए पत्र-पुष्प पहुँचाना हाथों की अनेक प्रकार की शुद्धियों में विशिष्ट मानी जाती है।

तन्नामकीर्तनं चैव गुणानामपि कीर्तनम्।
भक्त्या श्रीरामचन्द्रस्य वचसः शुद्धिरिष्यते।।45।।

भक्तिपूर्वक श्रीरामचन्द्र के नाम और गुणों का कीर्तन वाणी की शुद्धि मानी जाती है।

तत्कथाश्रवणं चैव तस्योत्सवनिरीक्षणम्।
श्रोत्रयोर्नेत्रयोश्चैव शुद्धिः सम्यगिहोच्यते।।46।।

उनकी कथा को सुनना, उत्सवों को देखना कानों और आँखों की सम्यक् शुद्धि कही गयी है।

पादोदकस्य निर्माल्यं मालानामपि धारणम्।
उच्यते शिरसः शुद्धिः प्रणतस्य हरेः पुनः।।47।।

भगवान् के चरणोदक, निर्माल्य और माला का धारण तथा शिर झुकाकर प्रणाम करना शिर की शुद्धि है।

---

1. घ. ध्यानजपहोमार्चनक्रियाः।2. घ. पुनः

आघ्राणं गन्धपुष्पादेश्चित्तस्य च तपोधन।
विशुद्धिः स्यादनन्तस्य घ्राणस्येहाभिधीयते।।48।।

पूजा में प्रयोग किए गये निर्माल्य रूप फूल-चन्दन को सूंघना चित्त और नाक की शुद्धि यहाँ कही गयी है।

पत्रं पुष्पादिकं यद्यद् रामपादयुगार्पितम्।
विशुद्ध्यै तद् भवत्येव स्वात्मना धार्यते यदि।।49।।

श्रीराम के चरणकमलों में अर्पित पुष्प आदि जहाँ हो और उन्हें धारण किया जाए तो वह स्थान शुद्ध हो जाता है।

अधुनाप्यथवा पूर्वं यद्यविष्णुसमर्पितम्।
तदेव पावनं लोके तद्धि सर्वं विशोधयेत्।।50।।

यदि इन समय अथवा पूर्व में विष्णु को समर्पित किए विना भी पुष्पादि उन्हें समर्पित करने के उद्देश से रखे गये हो और मन से ध्यान किया जाए तो वह स्थान पवित्र हो जाता है। वही इस संसार में पवित्र है अतः इस प्रकार पवित्र करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां पूजाविधिभूतशुद्धिर्नाम
एकादशोऽध्यायः।।

अथ द्वादशोऽध्यायः

अथातो मा तृकान्यासक्रमोऽत्र परिपठ्यते।
नियम्यासून् ऋषिच्छन्दो देवताबीजपोषिताः।।1।।
शिरोवदनहृद्गुह्यपादेषुन्यास उच्यते।
कराङ्गुलीनां रेखासु स्वरैकैकं प्रविन्यसेत्।।2।।

अब यहाँ मातृकान्यास की विधि बतलायी जा रही है। प्राण वायु को नियमित कर ऋषि, छन्द, देवता और बीज का न्यास शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं पैरों में किया जाता है। हाथ की अंगुलियों की प्रत्येक रेखा पर एक एक स्वर का न्यास होता है।

विन्यसेत्प्रणवं पाणितलयोः पृष्ठयोरपि।
ह्रस्वदीर्घस्वरान्ताद्याः कादयः पञ्चपञ्चकाः।।3।।
आमश्चाद्यं तयोर्यादिक्षान्तश्च दशवर्णकः।
अङ्गुष्ठाद्यङ्गुलीनां च तथैव तलपृष्ठयोः।।4।।

सबसे पहले दोनों हाथों तथा पैरों के तल और उसके पीछे न्यास ॐकार से करें। ह्रस्व एवं दीर्घ स्वर वर्ण प्रारम्भ में लगाकर 'क' से 'म' तक पच्चीस वर्णों का तथा 'य' से 'क्ष' तक दश वर्णों से अंगुष्ठा से प्रारम्भ कर दोनों हाथों की अंगुलियों तथा करतल और करपृष्ठ में इस प्रकार न्यास करें-

अं आं कं खं गं घं ङं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः।
इ ईं चं छं जं झं ञं तर्जनीभ्यां स्वाहा।
उ ऊं टं ठं डं ढं णं मध्यमाभ्यां वषट्।
ऋं ॠं तं थं दं धं नं अनामिकाभ्यां हुम्।
ऌं ॡं पं फं बं भं मं कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्।
एं ऐं यं रं लं वं करतलाभ्यां फट्।
ओं औं शं षं सं हं हौं क्षं करपृष्ठाभ्यां फट्।

न्यासस्ततः षडङ्गानां भवत्येवं प्रकल्पना।
हृदि मूर्ध्नि शिखायां च सर्वाङ्गे नेत्रयोरपि।।5।।
दिक्ष्वस्त्रं च नमः स्वाहा वषट् वौषडप्यथा।
अस्त्राय फडित्येवं षडङ्गानाञ्च पल्लवम्।।6।।
तत्तत् स्थाने चतुर्थ्यन्ते तत्तत् पल्लवयोगतः।
तत्तदङ्गतो न्यासस्तत्तदङ्गो नियोज्यते।।7।।

तब षडङ्गन्यास की विधि इस प्रकार करनी चाहिए। हृदय, शिर, शिखा, सर्वाङ्ग और दोनों नेत्रों में। दिशाओं में अस्त्र (फट्), नमः स्वाहा, वषट् तथा वौषट् तथा अस्त्राय फट् से षडङ्गन्यास का विस्तार किया जाता है। इसके बाद अपने बीजों का विस्तार उन अंगों के चतुर्थ्यन्त पद से उन अंगों का विनियोग होता है। जैसे- हृदयाय नमःए शिरसे स्वाहा, शिखायै वषट्, सर्वाङ्गे वौषट्, नेत्रयोः वौषट्, दिक्षु अस्त्राय फट्।

अथान्तर्मातृकान्यासः कण्ठहृन्नाभिगुह्यके।[1]
पायौ भ्रूमध्यके पद्मे षोडशद्वादशच्छदम्।।8।।
दशपत्रे च षट्पत्रे चतुःपत्रे द्विपत्रके।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः पत्रसंख्याक्रमाद् भवेत्।।9।।
एकैकवर्णमेकैकपत्रान्ते विन्यसेन्मुने।

इसके बाद अन्तर्मातृकान्यास कण्ठ, हृदय, नाभि, लिंगमूल, गुदा एवं भ्रूमध्य में होता है। क्रमशः षोडशदल कमल, द्वादशदल कमल, दशदलकमल, षड्दलकमल स्वरूप यन्त्र, चतुर्दल कमल तथा द्विदल कमल में दलों की संख्या में पचासों वर्णों का न्यास करना चाहिए। एक एक वर्ण को एक एक दल पर न्यास करें।

जैसे-

अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः षोडशदलकमलाय कण्ठाय नमः।
कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं द्वादशदलकमलाय हृदयाय स्वाहा।
डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं दशदलकमलाय नाभये वषट्।
बं भं मं यं रं लं षड्दलकमलाय लिङ्गमूलाय वौषट्।
वं शं षं सं चतुर्दलकमलाय मूलाधाराये गुदायै वौषट्।
हं क्षं द्विदलकमलाय भ्रूमध्याय फट्।

एवमन्तः प्रविन्यस्य मनसातो बहिर्न्यसेत्।।10।।
शिरोवदनवृत्ते च चक्षुश्श्रोत्रयुगेऽपि च।
नासाकपोलयुगलं तथोष्ठाधरयोरपि।।11।।
ऊर्ध्वाधो दन्तपङ्क्तौ च मूर्द्धास्ये षोडशस्वरान्।[2]
कचवर्गे द्वयं बाह्वोः पञ्चसन्धिस्थले न्यसेत्।।12
टतवर्गद्वयं पादे सन्ध्यग्रेऽपि तथा न्यसेत्।[3]
पवर्गं पार्श्वयुगले पृष्ठनाभ्युदरेऽपि च।।13।।
हृदोर्मूलककुत्कक्षे[4] **हृदयादिकरद्वयोः।**[5]
जठराननयोश्चैव व्यापकं विनियोजयेत्।।14।।
पञ्चाशद्वर्णविन्यासः क्रमेणैवं विधीयते।

---

1. घ. कण्ठहृन्नाड़ीगुह्यके।2. घ. द्वादशस्वरान्। 3. घ. पुनः। 4. स्कन्धे। 5. घ. हृदयादिकरपद्द्वये।

इस प्रकार अन्तर्मातृका न्यास कर मन ही मन बहिर्मातृकान्यास करें। शिर, मुखवृत्त, दोनों नेत्रों और कानों में, दोनों नाकों और दोनों गालों, अधर एवं ओष्ठ, ऊर्ध्वदन्त पंक्ति, अधोदन्त पंक्ति, मूर्द्धा एवं मुख इन सोलह अंगों में सोलह स्वरों का न्यास करें। इसके बाद क वर्ग एवं च वर्ग से क्रमशः दक्षिण और वाम बाहु के पाँच सन्धि स्थलों (बाहुमूल, कूर्प्पर, मणिबन्ध, अंगुलिमूल एवं अंगुल्यग्र) में न्यास करें। इस प्रकार ट वर्ग एवं त वर्ग से दक्षिण एवं वामपाद के पाँच सन्धिस्थलों (पादमूल, कूर्प्पर, मणिबन्ध, पादमूल एवं पादमूलाग्र) पर न्यास करें। प वर्ग से क्रमशः दक्षिणपार्श्व, वामपार्श्व, पृष्ठ, नाभि एवं उदर में न्यास करें। हृदय, दक्षिण बाहुमूल, ककुत्, वामबाहुमूल, हृदादिदक्षकर, हृदादिवामकर, हृदादिमुख में क्रमशः य से क्ष तक वर्णों का न्यास करें। पचास मातृकावर्णों का इस प्रकार न्यास विहित है।

ॐ माद्यन्तो नमोंतो वा सबिन्दुर्बिन्दुवर्जितः।।15।।
मायालक्ष्मीकामबीजपूर्वो न्यस्तव्य उच्यते।
केशवाय च कीर्त्यै च तथा नारायणाय च।।16।।
कान्त्यै तथा माधवाय तुष्ट्यै नम इति न्यसेत्।।
गोविन्दाय च तुष्ट्यै[1] च विष्णुर्धृत्यै वदेत् ततः।।17।।
मधुसूदनाय शान्त्यै च त्रिविक्रमाय क्रियायै च।
वामनाय च पुष्ट्यै[2] च श्रीधराय वदेत्तदा।।18।।
मेधायै हृषीकेशाय हृष्ट्यै[3] चापि नमस्तथा।
पद्मनाभाय श्रद्धायै[4] तथा दामोदराय च।।19।।
लज्जायै वासुदेवाय लक्ष्म्यै संकर्षणाय च।
सरस्वत्यै प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नम इतीरयेत्।।20।।
अनिरुद्धाय रत्यै च स्वरान्ते प्रवदेदथ।

मातृकान्यास में आदि और अन्त में ॐ लगाकर अथवा आदि में ॐ और अन्त में नमः लगाकर, बिन्दु सहित अथवा बिन्दु रहित माया बीज (ह्रीं) लक्ष्मीबीज (श्रीं) एवं कामबीज (क्लीं) आदि में जोड़कर न्यास करें।

1. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं केशवाय कीर्त्यै नमः।
2. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं आं नारायणाय कान्त्यै नमः।

---

1. घ. पुष्ट्यै। 2. घ. दयायै। 3. हर्षायै। 4. घ. शुद्धायै।

3. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं इं माधवाय तुष्ट्यै नमः।
4. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ईं गोविन्दाय पुष्ट्यै नमः।
5. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं उं विष्णवे धृत्यै नमः।
6. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऊं मधूसूदनाय शान्त्यै नमः।
7. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऋं त्रिविक्रमाय क्रियायै नमः।
8. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॠं वामनाय पुष्ट्यै नमः।
9. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं लृं श्रीधराय मेधायै नमः।
10. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ॡं हृषीकेशाय हृष्ट्यै नमः।
11. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं एं पद्मनाभाय श्रद्धायै नमः।
12. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं दामोदराय लज्जायै नमः।
13. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ओं वासुदेवाय लक्ष्म्यै नमः।
14. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं औं संकर्षणाय सरस्वत्यै नमः।
15. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अं प्रद्युम्नाय प्रीत्यै नमः।
16. ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अः अनिरुद्धाय रत्यै नमः।

ये स्वर मातृकाओं के अन्त में बोलें।

यहाँ श्लोक संख्या 18 में 'वामनायं' के बाद 'दयायै' शब्द 'क' पाण्डुलिपि में है। ध्यातव्य है कि यहाँ विष्णु के 16 रूपों के साथ षोडशमातृकाओं का उल्लेख हुआ है। 'पुष्टि' को छोड़कर शेष 15 मातृकाएँ स्पष्ट हैं, अतः यहाँ 'पुष्टयै च' पाठ माना जाना चाहिए।

चक्रिणे विजयायै च गदिने शार्ङ्गिणे तथा।।21।।
दुर्गायै च प्रभायै च [सत्यायै] खड्गिने [तथा]।
[शंखिने च चण्डायै नमो तदनन्तरं वदेत्]।।22।।
हलिने च तथा वाण्यै नमो मुसलिने वदेत्।
विलासिन्यै शूलिने च जयायै तदनन्तरम्।।23।।
पाशिने विरजायै च तथा चाङ्कुशिने वदेत्।
विश्वायै च मुकुन्दाय विमदायै नमस्ततः।।24।।
नन्दजाय सुनन्दायै नन्दिने स्मृतये नमः।
नराय ऋद्ध्यै तद्वच्च नरकजिते तथा वदेत्।।25।।
समृद्ध्यै हरये शुद्ध्यै कृष्णाय तुष्ट्यै तथा।

सत्याय मत्यै सात्विताय सत्यै नमो वदेत्।।26।।
शौरये च क्षमायै च शूराय परमायै नमः।
जनार्दनाय चोमायै ततः स्याद् भूधराय च।।27।।
क्लेदिन्यै च विश्वमूर्त्यै क्लिन्नायै तदनन्तरम्।
वैकुण्ठाय नमस्तद्वद् वसुदायै नमस्ततः।।28।।
पुरुषोत्तमाय वसुधायै बलिनेऽपराजितायै।
तथा बलानुजाय परायणायै नम इतीरयेत्।।29।।
वृषभाय च सूक्ष्मायै वृषाय सन्ध्यायै नमः।
हंसाय च प्रज्ञायै वराहाय प्रभायै तथा।।30।।
विमलाय निशायै च नृसिंहाय तदन्तरम्।
अमोघायै नमस्तद्वद् वैष्णवीं मातृकां न्यसेत्।।31।।
क्रमेण कामबीजं च मातृकाक्षरमेव च।
[1]केशवं चापि कीर्तिं च नमोऽन्तं विन्यसेत् पुनः।।32।।
[2]शिरोवदनवृत्तादिस्थानेष्वेवं विधिः स्मृतः।

1 ॐ क्लीं कं चक्रिणे विजयायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
2 ॐ क्लीं खं गदिने दुर्गायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
3 ॐ क्लीं गं शार्ङ्गिणे प्रभायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
4 ॐ क्लीं घं खड्गिने सत्यायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
5 ॐ क्लीं ङं शङ्खिने चण्डायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
6 ॐ क्लीं चं हलिने वाण्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
7 ॐ क्लीं छं मुसलिने विलासिन्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
8 ॐ क्लीं जं शूलिने जयायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
9 ॐ क्लीं झं पाशिने विरजायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
10 ॐ क्लीं ञं अङ्कुशिने विश्वायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
11 ॐ क्लीं टं मुकुन्दाय विमदायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
12 ॐ क्लीं ठं नन्दजाय सुनन्दायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
13 ॐ क्लीं डं नन्दिने स्मृतये केशवाय कीर्त्यै नमः।
14 ॐ क्लीं ढं नराय ऋद्धयै केशवाय कीर्त्यै नमः।
15 ॐ क्लीं णं नरकजिते समृद्धौ केशवाय कीर्त्यै नमः।

1.-2. घ. में अनुपलब्ध।

16 ॐ क्लीं तं हरये शुद्धौ केशवाय कीर्त्यै नमः।
17 ॐ क्लीं थं कृष्णाय तुष्ट्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
18 ॐ क्लीं दं सत्याय मत्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
19 ॐ क्लीं धं सात्विताय सत्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
20 ॐ क्लीं नं शौरये क्षमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
21 ॐ क्लीं पं शूराय परमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
22 ॐ क्लीं फं जनार्दनाय उमायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
23 ॐ क्लीं बं भूधराय क्लेदिन्यै केशवाय कीर्त्यै नमः।
24 ॐ क्लीं भं विश्वमूर्तये क्लिन्नायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
25 ॐ क्लीं मं वैकुण्ठाय वसुदायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
26 ॐ क्लीं यं पुरुषोत्तमाय वसुधायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
27 ॐ क्लीं रं बलिने अपराजितायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
28 ॐ क्लीं लं बलानुजाय परायणायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
29 ॐ क्लीं वं वृषघ्नाय च सूक्ष्मायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
30 ॐ क्लीं शं वृषाय सन्ध्यायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
31 ॐ क्लीं षं हंसाय च केशवाय कीर्त्यै प्रज्ञायै नमः।
32 ॐ क्लीं सं वराहाय प्रभायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
33 ॐ क्लीं हं विमलाय निशायै केशवाय कीर्त्यै नमः।
34 ॐ क्लीं क्षं नृसिंहाय अमोघायै केशवाय कीर्त्यै नमः।

इस प्रकार वैष्णव मन्त्रों से मातृकान्यास करें। क्रम से कामबीज (क्लीं) एवं मातृका के अक्षर बोलकर केशवाय कीर्त्यै नमः यह जोड़कर न्यास करें। शिर, मुखवृत्त आदि स्थानों में यह विधि कही गयी है।

(केशवादिन्यास के स्थल पर मूल 'क' पाण्डुलिपि का वाचन कष्टसाध्य होने के कारण पाठोद्धार के लिए म. म. गोविन्द ठाकुर (14वीं शती) कृत पूजा-प्रदीप के केशवादिन्यास का सहयोग लिया गया है, जो परम्परा की दृष्टि से प्रामाणिक है तथा पाण्डुलिपि 'क' के अनुरूप है। ये सम्पादित अंश कोष्ठ के अन्तर्गत हैं। बंगाल से प्रकाशित प्रति घ. में यह केशवादिन्यास बहुधा भिन्न है, अतः इसे पृथक् उद्धृत किया जा रहा है–

[चक्रिणे दयायै च गदिने शार्ङ्गिणे तथा।।21।।
दुर्गायै च प्रभायै च खड्गिने विन्यसेदथ।

सत्यायै शङ्खिने चैव चण्डायै च नमो नमः।।22।।
हलिने वाण्यै दद्याच्च तथा मुषलिने वदेत्।
विलासिन्यै शूलिने विजयायै तदनन्तरम्।।23।।
पाशिने विरजायै च तथा चाङ्कुशिने वदेत्।
विश्वायै च मुकुन्दाय विनदायै नमस्ततः।।24।।
नन्दजाय सुनन्दायै नन्दिने स्मृतये नमः।
नराय ऋद्ध्यै च तथा तद्वन्नरकजिते तथा।।25।।
समृद्ध्यै हरये शुद्ध्यै कृष्णाय बुद्ध्ये तथा।
सत्याय भुक्त्यै सात्वताय मत्यै नम इतीरयेत्।।26।।
शौराय च क्षमायै च शूराय रमायै नमः।
जनार्दनाय चोमायै ततः स्याद् भूधराय च।।27।।
क्लेदिन्यै च विश्वमूर्त्यै क्लिन्नायै तदनन्तरम्।
वैकुण्ठाय नमस्तद्वद् वसुदायै नमस्ततः।
पुरुषोत्तमाय वसुधायै बलिने परायै ततः।।28।।
बलानुजाय परायणायै नम इतीरयेत्।
महाबलाय सूक्ष्मायै नमः स्यात्तदनन्तरम्।
वृषघ्नाय सन्ध्यायै वृषाय प्रज्ञायै नमः।।29।।
हंसाय च प्रभायै वराहाय निशायै तथा।
विमलाय अमोघायै नृसिंहाय तदन्तरम्।
विद्युतायै नमस्तद्वद् वैष्णवीं मातृकां न्यसेत्।।30।।
क्रमेण कामबीजञ्च मातृकाक्षरमेव च।]

[1]ॐकारं कामबीजं च मातृकाक्षरमेव च।।33।।
[2]एकं देवं तथा शक्तिमेकां नम इति क्रमः।

ॐकार, कामबीज, मातृकाक्षर इसके बाद एक देव एक शक्ति तथा इसके बाद नमः बोलें यहीं क्रम है।

केशवादिरयं न्यासो न्यासमात्रेण देहिनाम्।।34।।
अच्युतत्वं ददात्येव सत्यं सत्यं न संशयः।

यह केशवादि न्यास कहलाता है। केवल इस न्यास से प्राणयों को अच्युतत्व मिल जाता है, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

1.-2. घ. में अनुपलब्ध।

सुतीक्ष्ण तत्त्वं बक्ष्यामि तत्त्वन्यासमतः शृणु।।35।।
यत्तत्वन्यासमात्रेण तत्त्वमेव प्रजायते।
मादयः प्रतिलोमेन कान्ताः स्युस्तत्त्वसंज्ञया।।36।।

हे सुतीक्ष्ण! अब मैं तत्त्व को बतलाता हूँ। इसलिए तत्त्वन्यास सुनो। केवल तत्त्वन्यास से तत्त्व उत्पन्न होता है। मकार से प्रारम्भ कर 'क' से अन्त कर किया गया न्यास तत्त्वन्यास कहलाता है।

नमः पराय पूर्वन्तु प्रणवान्ते व्यवस्थिताः।
जीवः प्राणाश्च बुद्धिश्चाहंकारो मनस्तथा।।37।।
सर्वाङ्गे हृदि विन्यस्य श्रोत्रादीनीन्द्रियाण्यपि।[1]
मूर्ध्नि घ्राणे च हृदयेऽप्युपस्थे पादयोरपि।।38।।

'नमः पराय' इस मन्त्र को सबसे पहले प्रणव के बाद जोड़कर जीव, प्राण, बुद्धि, अहंकार एवं मन को सर्वाङ्ग एवं हृदय में न्यास कर श्रोत्र आदि पाँच इन्द्रियों को भी मूर्द्धा, घ्राण, हृदय, उपस्थ एवं दोनों पैरों में न्यास करें।

श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वा च घ्राणरूपाणि देहिनाम्।
ज्ञानेन्द्रियाणि पञ्चापि तत्तत्स्थाने न्यसेत् पुनः।।39।।
वाक्पाणिपायुपादाश्च कर्माख्यानि ह्युपस्थकम्।
तथैव तत्तत् स्थानेषु तत्तदेव प्रविन्यसेत्।।40।।

दोनों कान, त्वचा, दोनों आँखें, जीभ, और नासिका, ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है तथा वाणी, दोनों हाथ, दोनों पैर, गुदा, और जननेन्द्रिय, ये पाँच कर्मेन्द्रिय हैं। उन उन स्थानों में न्यास करें। इसी क्रम से उन उन स्थानों उन उन तत्त्वों का न्यास करें।

शिरोमुखे च हृदये तथा गुह्येपि पादयोः।
आकाशानिलतेजांसि सलिलं पृथिवी तथा।।42।।
विन्यसेत् पूर्ववच्चैव न्यासविद्भिरुदीरितम्।[2]

शिर, मुख, हृदय, गुह्य एवं दोनों पैरों में क्रमशः आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथिवी का न्यास पूर्ववत् मन्त्र के साथ न्यास के ज्ञानियों के द्वारा कही गयी विधि से करें।

---

1. घ. शब्दादीनि ततः परम्। 2. घ. °रुदाहृतम्।

सहौ शरौ च यश्चापि षश्च लश्च वलावपि।।43।।
क्षौं चेति दश वर्णाश्च प्रणवान्ते च पूर्ववत्।[1]

स एवं ह, श एवं र, य, ष, ल, व, ल तथा क्षौं ये दश वर्ण हैं, जो पूर्वोक्त विधि से प्रणव ॐकार के बाद लगाये जायेंगे।

हृत्पद्मे सोमसूर्याग्निस्वकलायुक्तमण्डलम्।।44।।
त्रयं हृद्येव विन्यस्य वासुदेवादयस्तथा।
परमेष्ठी च पुरुषो विश्वस्यापि निवर्तकः।[2]।45।।
नारायणो नृसिंहश्च सर्वकोपाख्यपूर्वकौ।
मूर्द्धास्ये हृदि गुह्ये च पादयोर्व्यापकं तथा।।46।।
तदात्मने नम इति तत्तत्स्थाने न्यसेत् ततः।

हृदय रूपी कमल में, अपनी कलाओं के साथ सोममण्डल, सूर्यमण्डल एवं अग्निमण्डल की कल्पना कर इन तीनों का हृदय में ही न्यास करें और वासुदेवादि न्यास करें। वासुदेव, परमेष्ठी, पुरुष, विश्वनिवर्तक, नारायण और नृसिंह, ये छह देव हैं। यहाँ दोनों प्रकार के न्यासों में कोप-मन्त्र (हुम्) को पूर्व में व्यवहार करें। इसमें 'तदात्मने नमः' यह योग कर मूर्द्धा, मुख, हृदय, गुह्य, दोनों पैर एवं सर्वांग में न्यास करें। जैसे–

ॐ हुं वासुदेवाय मूर्द्धात्मने नमः इति मूर्ध्नि।
ॐ हुं परमेष्ठिने मुखात्मने नमः इति मुखे।
ॐ हुं पुरुषाय हृदयात्मने नमः इति हृदि।
ॐ हुं विश्वनिवर्तकाय गुह्यात्मने इति गुह्ये।
ॐ हुं नारायणाय पादात्मने इति पादयोः।
ॐ हुं नृसिंहाय सर्वाङ्गात्मने नमः इति सर्वाङ्गे।

अतत्त्वस्याप्यपूज्यस्य तत्प्राप्तेर्हेतुना[3] पुनः।।47।।
तत्त्वन्यासमिदं प्राहुर्न्यासं तत्त्वविदो बुधाः।

जो तत्त्व नहीं है और पूज्य भी नहीं है उसकी प्राप्ति के लिए कारण के साथ उन तत्त्वों के न्यास को मनीषियों ने तत्त्व-न्यास कहा है।

यः कुर्यात् तत्त्वविन्यासं स एव भवति ध्रुवम्।।48।।
तदात्मनानुप्रविश्य भगवानिह तिष्ठति।
यतः स एव तत्त्वानि तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।।49।।

1. घ. प्रणम्यान्ते च पूर्ववत्।2. घ. विश्वकोऽपि निवृत्तिकः।3. क. तत्प्राप्तौ हेतना।

जो तत्त्वविन्यास करता है, वह तत्त्व ही हो जाता है। इन स्थानों में आत्मस्वरूप में प्रवेश कर भगवान् अवस्थित होते हैं; क्योंकि तत्त्व वही है, जिसमें सबकुछ अवस्थित है।

तन्मूर्तिपञ्जरं न्यासस्तस्य तन्मूर्तिसिद्धये।
आकर्णयैकचित्तः सन् यतोऽस्ति न फलान्तरम्।।50।।

भगवान् मूर्तिरूपी शरीर का यह न्यास उनके स्वरूप की सिद्धि के लिए एकाग्र होकर सुनो; क्योंकि इससे अधिक फल कही भी नहीं है।

नमो भगवते ब्रूयाद् वासुदेवाय इत्यथ।
ॐआदिरस्य[1] मन्त्रस्य आदायैकाक्षरं ततः।।51।।
एकैकमक्षरं तद्वत् श्रीरामाख्यमनोरपि।
द्विरावृत्याक्षरादानं विष्णोर्द्वादशनामसु।।52।।
नामैकैकमुपादाय सूर्यस्यापि च नामसु।

सबसे पहले ॐ नमो भगवते कहें। इसके बाद वासुदेवाय कहें। फिर इस मन्त्र के ॐकारसहित इस मन्त्र के एक एक अक्षर लें। इसी प्रकार श्रीराम के षडक्षर मन्त्र दो-दो बार लेकर विष्णु के बारह नामों में से एक-एक नाम जोड़कर फिर सूर्य के बारह नामों में से भी एक-एक नाम लगाकर मन्त्र बनायें।

ओमन्तश्च स्वरस्तद्वद् वासुदेवाक्षरं ततः।।53।।
श्रीराममन्त्रवर्णश्च ततः स्युः केशवादयः।
धात्रादयो नमोऽन्तोयं न्यस्तव्यो न्यासयोगतः।।54।।

इस मन्त्र में सबसे पहले ॐकार, तब स्वर-वर्ण, तब उसी प्रकार वासुदेव-मन्त्र के वर्ण, तब श्रीराममन्त्र के वर्ण तब केशव आदि बारह नाम, तब धाता आदि सूर्य के नाम तब अन्त में नमः लगाकर न्यास के योग से अङ्गन्यास करें।

ललाटे नाभिहृदये कण्ठपार्श्वांशकन्धरे।
पार्श्वान्तरांशे स्कन्धे च पृष्ठे ककुदि च क्रमात्।।55।।

इस मन्त्रों को क्रमशः ललाट, नाभि, हृदय, कण्ठ, पार्श्वभाग, कन्धर, वामपार्श्व, दक्षिणपार्श्व, स्कन्ध, पृष्ठ, ककुत् में न्यास करें।

---

1. घ. ओमादावस्य मन्त्रस्य।

केशवस्य ततो ब्रूयान्नारायण इति स्वयम्।
माधवश्चैव गोविन्दो विष्णुश्च मधुसूदनः।।56।।
त्रिविक्रमो वामनश्च श्रीधरो नवमः स्मृतः।
हृषीकेशः पद्मनाभस्तथा दामोदरः प्रभुः।।57।।
विष्णोर्द्वादशनामानि चेमानि मुनिसत्तम।

हे मुनिश्रेष्ठ! भगवान् विष्णु के ये बारह नाम हैं– केशव, नारायण,माधव, गोविन्द, विष्णु, मधुसूदन, त्रिविक्रम, वामन, श्रीधर, हृषीकेश, पद्मनाभ, दामोदर।

धातार्यमा च मित्रः वरुणो हंसो भगस्तथा।[1]।58।।
विवश्वदिन्द्रः पूषा च पर्जन्यः दशमः स्मृतः।
त्वष्टा च विष्णुरित्येवं नामानि द्वादशात्मनः।।59।।
तन्मूर्तिपंजरन्यासोऽभिहितः परमेष्ठिना।

द्वादशात्मन् सूर्य के ये बारह नाम हैं– धाता, अर्यमा, मित्र, वरुण, हंस, भग, विवस्वान्, इन्द्र, पूषा, पर्जन्य, त्वष्टा, विष्णु। इस प्रकार मूर्तिपंजर-न्यास ब्रह्मा ने कहा है।

इस न्यास के मन्त्र इस प्रकार बनते हैं–

ॐ अ ॐ ॐ केशवाय द्वादशात्मने नमः। इति ललाटे

ॐ आ न रा नारायणाय धात्रे नमः। इति नाभौ

ॐ इ मो मा माधवाय अर्यम्णे नमः। इति हृदये

ॐ ई भ य गोविन्दाय मित्राय नमः। इति कण्ठे

ॐ उ ग न विष्णवे वरुणाय नमः। इति श्वासे

ॐ ऊ व मः मधुसूदनाय शोभगाय नमः। इति प्रश्वासे

ॐ ऋ ते ॐ त्रिविक्रमाय विवस्वते नमः। इति कन्धरे

ॐ लृ वा रा वामनाय इन्द्राय नमः। इति ललाटे वामपार्श्वे

ॐ ए सु मा श्रीधराय पूषणे नमः। इति ललाटे दक्षिणपार्श्वे

ॐ ऐ दे य हषीकेशाय पर्जन्याय नमः। इति ललाटे स्कन्धे

ॐ ओ वा न पद्मनाभाय त्वष्ट्रे नमः। इति ललाटे पृष्ठे

ॐ औ य मः दामोदराय विष्णवे नमः। इति ललाटे ककुदि

1. घ. वरुणोऽहंशुभगस्तथा, क. वरुणोसोभगस्तथा।

शिरोभ्रूमध्यहृदयनाभिगुह्यपदस्थले ।।60।।

मूलमन्त्राक्षरैर्न्यासं षडङ्गमपि विन्यसेत्।

इसके अतिरिक्त मूलमन्त्र के अक्षरों से शिर, भ्रूमध्य, हृदय, नाभि, गुदा एवं दोनों पैरों में षडङ्गन्यास भी करें। जैसे–

ॐ नमः पराय इति शिरसि।

रा नमः पराय भ्रूमध्ये

मा नमः पराय हृदये

य नमः पराय नाभौ

न नमः पराय गुदायाम्।

मः नमः पराय पादयोः।

एवं विन्यस्य विधिवत् साक्षान्नारायणो भवेत्।।61।।

जरारोगाभिचाराद्याः[1] प्रलयं यान्ति नान्यथा।

भूतप्रेतपिशाचाश्च तथैव ब्रह्मराक्षसाः।।62।।

कूष्माण्डाश्चैव डाकिन्यो नैव द्रष्टुमपि क्षमाः।

य एवं विन्यसेद्धीमान् रामः साक्षात् स्वयं भवेत्।।63।।

[2]नातः परतरं किञ्चित् पावनं पुण्यमस्ति हि।

इस प्रकार का न्यास कर वह साधक प्रत्यक्ष नारायणस्वरूप हो जाता है। बुढ़ापा, रोग, दूसरे के द्वारा किये गये अभिचार आदि नष्ट हो जाते हैं। भूत, प्रेत, पिशाच, ब्रह्मराक्षस, कूष्माण्ड, डाकिनी आदि तो उसे देखने में भी समर्थ नहीं होते हैं। जो बुद्धिमान् इस प्रकार न्यास करते हैं, वे साक्षात् श्रीराम-स्वरूप हो जाते हैं। इससे अधिक पवित्र पुण्य कुछ भी नहीं है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये शरीरन्यासे द्वादशोऽध्यायः।

अथ त्रयोदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण पात्राण्यासाद्य ततः पूजार्थमादरात्।

शङ्खमस्त्रेण संशोध्य सदाधारे निधाय च।।1।।

1. घ. ज्वररोगाभिचाराद्याः। 2. क. में अनुपलब्ध।

पूजयेदग्निसूर्येन्दुबीजैस्तत्तत्कलान्वितैः ।
तत्तत्कलानां संख्या च दश द्वादश षोडश।।2।।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण पूजा-पात्रों को एकत्रित कर पूजा के लिए आदर पूर्वक शंख को अस्त्र-मन्त्र से शोधित कर से सुन्दर आधार पर रखकर कलाओं के साथ अग्निबीज (रं) सूर्यबीज (सं) एवं चन्द्रबीज (सं) से पूजा करें। उनकी कलाएँ क्रमशः दस, बारह एवं सोलह हैं।

आधारशङ्खतीर्थेषु तत्तन्मण्डलमर्चयेत्।[1]
तीर्थावाहनमन्त्रैश्च तीर्थान्यावाह्य पूजयेत्।।3।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपाद्यैरति भक्तितः।
शङ्खे पाणितलं दत्त्वा जपेन्मन्त्रं षडक्षरम्।।4।।

आधार शंख के जल में उन उन मण्डलों की पूजा करें। तीर्थावाहन मन्त्रों से तीर्थों का आवहन कर गन्ध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि से अत्यन्त भक्तिपूर्वक पूजा करें। इसके बाद शंख के ऊपर तलहत्थी रखकर षडक्षर मन्त्र का जप करें।

चिन्मयं चिन्तयेत्तीर्थमानीयाङ्कुशमुद्रया।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थाभ्यां धेनुमुद्रां प्रदर्श्य च।।5।।
शङ्खमुद्रां चक्रमुद्रां गरुडाख्याञ्च दर्शयेत्।

ब्रह्माण्ड के उदर से तथा पवित्र तीर्थों से अंकुश मुद्रा के द्वारा तीर्थों का धेनु-मुद्रा दिखाकर शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा और गरुडमुद्रा दिखावें।

परमीकृत्य यत्नेन पावनं[2] तद्विचिन्तयेत्।।6।।
देवस्य मूर्ध्नि तत्सिञ्चेत् पूजाद्रव्येषु चात्मनः।

इस प्रकार यत्न पूर्वक अमृतीकरण कर उस शंख जल को परम पवित्र मानें और उसे देवता के मस्तक पर, पूजा सामग्रियों पर तथा अपने ऊपर छिड़कें।

अवेक्षणं प्रोक्षणञ्च वीक्षणं ताडनं तथा।।7।।
अर्चनं चैव सर्वेषां पावनत्वं प्रकल्पयेत्।
पूतमेवाखिलं पूजायोग्यं भवति सार्थकम्।।8।।

उस शंखजल के दर्शन की क्रिया में प्रोक्षणमुद्रा दिखाकर तथा पुनः दर्शन में ताड़न मुद्रा दिखावें किन्तु दोनों क्रियाओं में अर्चन मुद्रा दिखाकर उसकी पवित्रता की कल्पना करें।

1. क. तत्तदात्मानमर्चयेत्।2. घ. परमं

अर्घ्यपाद्यप्रदानार्थं मधुपर्कार्थमप्यथ।
तथैवाचमनार्थञ्च न्यसेत् पात्रचतुष्टयम्।।9।।
आत्मनः पुरतः शङ्खं पूर्वतः साधयेत्ततः।
अर्घ्यपात्रे पाद्यपात्रे सम्पूर्य[1] सलिलं शुभम्।।10।।
तथार्घ्यपात्रे दातव्याः गन्धपुष्पयवाक्षताः।
कुशाग्रतिलदूर्वाश्च सर्षपाश्चार्थसिद्धये।।11।।

अर्घ्य, पाद्य, मधुपर्क एवं आचमन समर्पण के लिए चार पात्र स्थापित करें। अपने सामने में शंख को पूर्व दिशा से रखें। अर्घ्यपात्र और पाद्यपात्र में पवित्र जल भरकर अर्घ्य पात्र में चन्दन, पुष्प, यव, अक्षत, कुश का अगला भाग, तिल, दूर्वा और सरसो कामनाओं की पूर्ति के लिए डालें।

पाद्यपात्रे प्रदातव्यं श्यामाकं दूर्वमेव च।
अब्जं च विष्णुक्रान्तां च पाद्यसिद्ध्यै प्रयोजयेत्।।12।।

पाद्यपात्र में साँवा, दूर्वा, कमल एवं अपराजिता ये पाद्य के प्रयोजन के लिए डालें।

तथाचमनपात्रेऽपि दद्याज्जातीफलं मुने।
लवङ्गमपि कङ्कोलं शस्तमाचमनीयकम्।।13।।
दध्ना च मधुसर्पिभ्यां मधुपर्को भविष्यति।

आचमनपात्र में जायफल, लौंग, कंकोल डालें जो आचमन के लिए प्रशस्त हैं। दही, मधु और घृत मिलकर मधुपर्क बनता है।

स्नानं पुरुषसूक्तेन शुद्धशङ्खोदकेन च।।14।।
क्षीरदध्याज्यमधुभिः खण्डेन च पृथक् पृथक्।
नारिकेरोदकेनापि तथान्यच्च फलाम्बुना।[2]।15।।

शुद्ध शंख जल से, दूध, दही, घी, मधु और शर्क्करा से पृथक् पुरुषसूक्त से स्नान कराना चाहिए। अथवा नारियल के जल से तथा अन्य फलों के रस से।

[3]क्षीरस्नानं प्रकुर्वन्ति ये नराः राममूर्द्धनि।
शताश्वमेधजं पुण्यं बिन्दुना बिन्दुना शतम्।।16।।

1. घ. संपूज्य। 2. घ. तथा तालफलाम्बुभिः।3. यहाँ से श्लोक सं. 16 एवं 17 'घ' में अनुपलब्ध।

क्षीरं दशगुणं दध्ना घृतञ्चैव दशोत्तरम्।
घृताद् दशगुणं क्षौद्रं क्षौद्राद्दशगुणोत्तरम्।।17।।

जो मनुष्य श्रीराम की मूर्द्धा पर दूध से अभिषेक करते हैं, वे प्रत्येक बूँद से सौ सौ अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त करते हैं। दही से अभिषेक की अपेक्षा दुग्धाभिषेक दश गुणा फलदायी है तथा घृताभिषेक सौ गुणा। घृताभिषेक का दशगुणा मधु-अभिषेक का फल है।

गन्धद्रव्यैश्च बहुभिस्तथा गन्धोदकेन च।
ऐक्षवेणोदकेनापि कर्प्पूरादिसुगन्धिना।।18।।
कदलीपनसाम्रोत्थजलेनापि सुगन्धिना।
शतं सहस्रमयुतं भक्त्या[1] चाप्यभिषेचयेत्।।19।।

चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों से चन्दन मिश्रित जल से अभिषेक करना चाहिए। ईख का रस, कर्पूर आदि सुगन्धित पदार्थ से अथवा केला, कटहल, आम आदि के सुगन्धित रस से सौ बार, हजार बार और दस हजार बार भक्तिपूर्वक अभिषेक करना चाहिए।

शङ्खं सम्पूर्य्य तेनैव सपुष्पेण रघूत्तमम्।
सकृष्णागरुधूपेन धूपयेदन्तरात्मना।।20।।
ततः शुद्धजलेनैव स्नापयेत् तमनन्यधीः।
राज्यार्थी राज्यसिद्ध्यर्थमेवं वत्सरमादरात्।।21।।
एवमेवाभिषिञ्चेत राजा भवति नान्यथा।

शंख को उन रसों से भरकर उसमें फूल डालकर अभिषेक करें। गुग्गुल का धूप बीच बीच में हृदय से अर्पित करे। तब शुद्ध जल से राज्य की कामना से एकाग्र होकर स्नान कराएँ। इस प्रकार, राज्यसिद्धि के लिए आदरपूर्वक एक वर्ष तक अभिषेक करे, तो वह राजा होता है, इसमें सन्देह नहीं।

दत्वाप्याचमनीयं च वाससी परिधापयेत्।।22।।
ततो भूषणादानञ्च सोत्तरीयेण वाससा।
यज्ञोपवीतं दत्वा च दद्याच्चन्दनमादरात्।।23।।

इसके बाद आचमन समर्पित कर जोड़ा वस्त्र पहनावें। तब आभूषण आदि देकर दुपट्टा के साथ वस्त्र ओढ़ावें। फिर यज्ञोपवीत देकर आदरपूर्वक चन्दन दें।

1. घ. शक्त्या।

पुष्पाणि पुष्पमाल्यानि विविधानि समर्पयेत्।
धूपं दीपञ्च नैवद्यं ताम्बूलं च प्रदक्षिणम्।।24।।
नमस्कारञ्च पूजायामुपचारास्तु षोडश।

अनेक प्रकार के पुष्प और पुष्पमालाएँ समर्पित करें। तब धूप, दीप, नैवेद्य देकर प्रदक्षिणा (चार बार परिक्रमा) करें। पूजा के क्रम में अन्त में प्रणाम करें; ये षोडश उपचार हैं।

आवाहनादिकाश्चैव तथैकादश पञ्चधा।।25।।
भवन्त्येवोपचारास्तैः पूजां कुर्यादहर्निशम्।

आवाहन आदि एकादशोपचार और पञ्चोपचार भी होते हैं। इनसे भी दिन रात पूजा करें।

स्नानाद्यैरपि गन्धाद्यैः शक्त्या भक्त्योपकल्पितैः।।26।।
द्वारपीठामरानादौ अभ्यर्च्यैव पुनस्ततः।
राममाराध्य विधिना सर्वैरप्युपचारकैः।।27।।
अङ्गावरणदेवाश्च सम्पूज्यान्यायुधानि च।

स्नान आदि से तथा चन्दन आदि से सामर्थ्यानुसार भक्तिपूर्वक द्वार और पीठ के देवताओं की पूजा करके ही विधिपूर्वक सभी उपचारों से श्रीराम की पूजा कर अंग देवताओं तथा आवरण की पूजा कर, श्रीराम के सभी शस्त्रास्त्रों की पूजा करें।

एवं सम्यक् समाराध्य साङ्गावरणवाहनम्।।28।।
स्तोतव्यमपि यत्नेन रामं शश्वत्प्रणम्य च।
यन्त्रस्था अपि मन्त्रैश्च सम्यक् पूज्या प्रयत्नतः।।29।।

इस प्रकार प्रतिदिन अंगदवताओं, आवरण देवताओं तथा वाहनों के साथ श्रीराम की पूजा कर बार बार प्रणाम कर श्रीराम की स्तुति करें तथा यन्त्र पर अवस्थित देवताओं की पूजा मन्त्रों से अच्छी तरह करें।

एवमेव यजेदग्नौ होमादावपि राघवम्।
तर्पणादावपि[1] जलेष्येवमाराध्य तर्पयेत्।।30।।

इसी प्रकार होम आदि में भी पहले श्रीराम की पूजा अग्नि में करें। तर्पण आदि के क्रम में भी जल में इसी प्रकार पूजा कर तर्पण करें।

1. घ. दर्पणादा

शालग्रामशिलायां च तुलसीदलकल्पिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका।।31।।
प्रतिमायां च यन्त्रे वा भूमावग्नौ विवस्वति।
तले वा हृदये वापि विधायाराधयेद्[1] रहः।।32।।

शालग्राम की शिला पर तुलसीदास से श्रीराम की पूजा करोड़ो करोड़ गुणा फल देती है। प्रतिमा पर अथवा यन्त्र पर, भूमि पर अथवा अग्नि में, सूर्य में, हाथ की तलहत्थी पर अथवा अपने हृदय में श्री राम की पूजा एकान्त में करें।

कालेनैवोपचाराणां[2] पूजयेत्तुलसीदलैः।
घण्टां च वादयेद् दद्याद् देवायाचमनीयकम्।।33।।
मध्ये मध्ये च तद्वच्च नत्वा नत्वा समर्पयेत्।

समयानुसार सभी उपचारों के स्थान में तुलसीदल डालें; घंटा बजावें तथा देवता को आचमनीय समर्पित करें। बीच बीच में उन अर्घ्य वस्तु को नमन कर समर्पित करें।

मुकुलैः पतितैश्चैव खण्डितैः शोषितैरपि।।34।।
अनर्हैरपि पुष्पैश्च दलैः पत्रैश्च नार्चयेत्।[3]।

मुरझाए हुए, गिरे हुए, टूटे हुए, सूखे हुए तथा पूजा के अयोग्य पुष्प, पत्र और दल से पूजा न करें।

येन केनापि पुष्पेण पत्रेणापि फलेन वा।।35।।
यतः कुतश्चिदानीय यत्रकुत्रोद्भवेन च।
भवार्थं जीवितार्थं च नोऽर्चयेद् गर्हितस्थले।।36।।

जिस किसी भी फूल, पत्र एवं फल से जो इधर उधर जन्में हों और इधर उधर से अर्थात् अपवित्र स्थान से लाये गये हों, उनसे अशुभ स्थान में सांसारिक सुख और जीवन के लिए पूजा नहीं करनी चाहिए।

गंगायां गोप्रदानेन दिव्यवर्षशतत्रयम्।
तत्फलं प्राप्यते नित्यमाराध्याप्नोति तद्धरिम्।।37।।

गंगा के तट पर गोदान करने से जो तीन सौ दिव्य वर्ष तक स्वर्गवास का फल मिलता है वही फल उसे भी मिलता है जो प्रतिदिन श्री हरि की पूजा करें।

1. घ. विधायावाहयेद्रहः। 2. घ. अभावे चोपचाराणां। 3. घ. पत्रैर्न पूजयेत्

पत्रं पुष्पं फलं वापि रामाराधनसाधनम्।
दद्यादाराधितं यो वै तस्य पुण्यफलं शृणु।।38।।
कुरुक्षेत्रे च गंगायां प्रयागे पुरुषोत्तमे।
गोसहस्रप्रदानेन यत्पुण्यं समवाप्यते।।39।।
तदेतदखिलं पुण्यं प्राप्नोत्येव न संशयः।
समग्रमसमग्रं वा यो दद्यात् पूजितं हरिम्।।40।।
कदाचिदपि नित्यं वा पत्रपुष्पादिकं बहून्।
किं तीर्थसेवया दानैरन्यैर्बहुभिरीरितैः।।41।।
आराधनासमर्थश्चेद् दद्यादर्चनसाधनम्।

श्रीराम की आराधना के साधन पत्र, पुष्प, फल आदि जो दान करते हैं उनके पुण्य का फल सुनें। कुरुक्षेत्र, गंगा के तट, प्रयाग क्षेत्र और पुरुषोत्तम क्षेत्र में हजारों गाय दान करने का फल जो मिलता है, वही समग्र फल वह भी प्राप्त करता है, वही समग्र फल वह भी प्राप्त करता है। पूजा की सभी वस्तुएँ अथवा कुछ वस्तुएँ जो प्रतिदिन अथवा कभी कभी अथवा अधिक मात्रा में पत्र-पुष्प आदि जो दान करते हैं, उनके लिए अन्य स्थलों पर विहित दान और तीर्थ में निवास करना सब व्यर्थ है। स्वयं आराधना करने में जो असमर्थ हों वे आराधना के साधनों का दान करें।

[1]प्रदातुं वै नरान् कोऽस्ति कुर्यादर्चनदर्शनम्।।42।।
निस्ताराय तदेवालं भवाब्धेः मुनिसत्तम।
नैकं च यस्य विद्येत सोऽधो यात्येव नान्यथा।।43।।

अथवा मनुष्य को दान करने में भी भला कौन समर्थ है! इसलिए आराधना का दर्शन ही करना चाहिए। संसार के समुद्र में पार लगाने के लिए वही पर्याप्त है। इनमें से जो एक भी नहीं करते उनका अधःपतन निश्चित है।

नियमव्यतिरेकेण यः कुर्याद् देवतार्चनम्।
किञ्चिदप्यस्य न फलं भस्मनीव हुतं मुने।।44।।
योऽर्चयेद् विधिवद् भक्त्या परानीतैश्च साधनैः।
पूजा फलार्द्धमेवास्य न समग्रफलं लभेत्।।45।।

1. घ. में अनुपलब्ध।

नियमों के विपरीत जो देवता की अर्चना करते हैं, उन्हें राख में हवन करने के समान कुछ भी फल नहीं होता है। जो विधानों के अनुसार भक्तिपूर्वक दूसरे के द्वारा लाये गये साधनों से पूजा करते हैं उन्हें आधा फल ही मिलता है; पूरा नहीं।

[1]यस्तु भक्त्या प्रयत्नेन स्वयं सम्पाद्य चाखिलम्।
साधनं चार्चयेद् विद्वान् समग्रफलभाग् भवेत्।।46।।
यो धनव्ययमायासमविचार्यार्च्चयेद् हरिम्।
स्वयं सम्पाद्य तत्सर्वं सवरं तत्फलं लभेत्।[2]।47।।

जो भक्तिपूर्वक स्वयं यत्न करके सभी सामग्रियों की व्यवस्था कर अर्चन करते हैं, उन्हें समग्र फल की प्राप्ति होती है। जो धन का व्यय और प्रयत्न दोनों की परवाह किए विना श्रीहरि की आराधना स्वयं साधन जुटाकर करते हैं तथा उन्हें नैवेद्य आदि अर्पित करते हैं, वे वर के साथ सम्पूर्ण फल पाते हैं।

स्वयमानीय चोत्पाद्य पूजोपकरणानि यः।
पूजयेत्तद्विधेयं स्यादुत्तमं प्रार्थदं हरिम्।[3]।48।।

स्वयं लाकर और स्वयं उगाकर पूजा सामग्रियों से श्रीहरि की पूजा करते हैं वह उत्तम विधि है इससे अच्छी प्रकार प्रयोजनों की सिद्धि होती है।

कलत्रपुत्रशिष्यादि[4] तत्तत् सम्पादितं च यत्।
मध्यमं चार्चनं तेन तैः सार्द्धं तत्फलं लभेत्।।49।।

पत्नी, पुत्र, शिष्य आदि के द्वारा व्यवस्था किए जाने पर मध्यम प्रकार की पूजा होती है उससे आधा फल मिलता है।

अन्यैः सम्पाद्य यद्दत्तं क्रयक्रीतेन तेन वा।
गौणमाराधितं तेन पादमात्रफलं लभेत्।।50।।

दूसरे के द्वारा व्यवस्था कर दान की गयी सामग्रियों से अथवा खरीदकर की गयी पूजा तुच्छ होती है इससे चौथाई फल ही मिलता है।

परारोपितवृक्षेभ्यः पुष्पाण्यानीय वार्चयेत्।
अविज्ञाप्यैव तैर्यस्तु निष्फलं तस्य पूजनम्।।51।।

दूसरे के द्वारा लगाये गये वृक्ष से विना सूचना दिये हुए फूल लाकर जो पूजा करते हैं वह निष्फल होती है।

---

1. चार चरण तक 'क' में अनुपलब्ध। 2. घ. सर्वं तत् सफलं भवेत्। 3. घ. मुनिसत्तम। 4. घ. नियोज्य यत्र शिष्यादि।

राममाराध्य संस्थाप्य सन्निरुध्य च मुद्रया।[1]
प्रतिष्ठाप्यार्चयेद् विष्णुं न च तन्निष्फलं भवेत्।।52।।

मुद्रा के द्वारा श्रीराम का आराधना स्थापन एवं सन्निरौधन कर प्रतिष्ठित कर विष्णु की पूजा करते हैं तो वह निष्फल नहीं होता।

ततो[2] मुद्रान्तराण्येव दर्शयेच्चैव सादरम्।
प्रसाद्य सम्मुखीकृत्य सन्निधाप्य च पूजयेत्।।53।।
सकलीकृत्य प्राणास्तु तदानीमिन्द्रियाण्यपि।
यद्येवं पूजयेद्रामं भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।54।।

इसके बाद आदरपूर्वक दूसरी मुद्राएँ भी दिखावें। प्रसादजी, सम्मुखीकरणी और सन्निधापनी मुद्रा दिखाकर पूजा करें। उनके प्राण को सकलीकरण कर उनकी इन्द्रियों का भी सकलीकरण करें। यदि इस प्रकार श्रीराम की पूजा करें तो भुक्ति और मुक्ति दोनों प्राप्त करते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामपूजाविधिर्नाम त्रयोदशोऽध्यायः।।

अथ चतुर्दशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

विधिवत् संस्कृतेप्यग्नौ देवमावाह्य पूजयेत्।
पूर्वोक्तेनैव विधिना साङ्गावरणवाहनम्[3]।।1।।

विधानपूर्वक मार्जन, उल्लेखन आदि से संस्कार की गयी अग्नि में देवता का आवाहन कर पूर्वोक्त विधि से अंग और आवरण के साथ पूजन करें।

विधिं तस्य प्रवक्ष्यामि येनेष्टं साध्यतेऽखिलम्।
विहितं येऽनुतिष्ठन्ति त एव फलभाजनाः।।2।।

अब इसकी विधि कहूँगा, जिससे सब कुछ सिद्ध होता है। जो विधानपूर्वक अनुष्ठान करते हैं, वे ही सभी इच्छित फलों के भागी होते हैं, अन्यथा नहीं।

1. घ. इसके बाद घ. में प्रसाद्य सम्मुखीकृत्य इत्यादि चार चरण हैं।। 2. घ. तत्तन्मुद्रा()। 3. घ. साङ्गावरणमन्वहम्।

सर्वेषामीप्सितार्थानामन्यथा वै तथा नहि।
न्यायार्ज्जितैः साधनैश्च दानहोमार्चनादिकम्।।3।।
कुर्य्यान्न चेदधो याति भक्त्या कुर्वन्नपि द्विजः।

न्यायपूर्वक स्वयं अर्जित साधनों से दान, होम, अर्चना आदि करें, नहीं तो भक्तिपूर्वक इन्हें करते हुए भी अधोगति प्राप्त करते हैं।

भूमिस्थानं समीकृत्य षट्चतुष्काङ्गुलोत्तरम्[1]।।4।।
तावत् तन्निखनेदन्तश्चतुष्कोणन्तथान्ततः।
दिशि दिश्यन्तरञ्चैव पार्श्वस्थलचतुष्टयम्।।5।।

भूमि को समतल कर दश अंगुल ऊँची वेदिका बनाएँ। तब अन्दर की ओर चौकोर खनें। तब चारो दिशाओं और कोणों में भी चार पार्श्व बनावें। (इस प्रकार नीचे अष्टकोण बन जाएगा।)

एवं सलक्षणं[2] कृत्वा बहिः कुर्याच्च मेखलाः।
द्वादशाष्टचतुर्मानां स्वाङ्गुलैश्च क्रमान्मुने।।6।।
एवमुत्सेध आयामश्चतुराङ्गुलमेव' तत्।
आयामोत्सेधरूपेण चतुष्काधिक्यतः क्रमात्।।7।।
चतुष्कत्रितयं कुयदिवं हि मेखलाक्रमः।

इस प्रकार के लक्षणों से कुण्ड बनाकर तब बाहर तीन मेखला क्रमशः बारह अंगुल आठ अंगुल और चार अंगुल मान से बनावें। इस प्रकार उठाकर विस्तार चार अंगुल ही रखें। चौड़ाई और ऊँचाई दोनों क्रमशः चार-चार अंगुल क्रमशः होगी। चार अंगुल की तीन मेखला बनावें; यही क्रम है।

कुण्डस्य पश्चिमे भागे योनिं कुर्यात्सलक्षणाम्।।8।।
अश्वत्थपत्रसदृशीं कुण्डे किञ्चित् प्रतिष्ठिताम्।
षट्चतुर्द्व्यङ्गुलाक्षा[3] च क्रमान्निम्ना भवेत्पुनः।।9।।
विस्तारेणापि सा योनिर्भवत्येव दशांगुला।[4]
मूलं नालं तथाग्रं च व्युत्क्रमात् षट्चतुस्त्रिकम्।।10।।
तन्मानाङ्गुलमानं स्यादेतत् कुण्डस्य लक्षणम्।
एकहस्तस्य कुण्डस्य[5] प्रकारोऽयं प्रकाशितः।।11।।

1. घ. षट्चतुर्द्व्यङ्गुलोत्तरम्। 2. घ. सुलक्षणम्। 3. घ. षट्चतुस्त्र्यङ्गुला सापि।4. योनिर्भवेत् पञ्चदशाङ्गुला।5. घ. चतुष्कोणैकहस्तस्य।

कुण्ड के पश्चिम भाग में लक्षण के अनुसार योनि बनावें। पीपल के पत्ते के आकार की योनि कुण्ड पर प्रतिष्ठित करनी चाहिए। छह अंगुल के बाद चार अंगुल, तब दो अंगुल, इस प्रकार क्रमशः योनि आगे की ओर ढालवाली होनी चाहिए। चौड़ाई और दस अंगुल लम्बाई की योनि होती है। योनिमूल में अवस्थित नाल और योनि के अग्रभाग की ऊँचाई नीचे के क्रम में छह अंगुल, चार अंगुल तथा तीन अंगुल की होनी चाहिए। यह कुण्ड का लक्षण है। यह एक हाथ लंबाई-चौड़ाईवाले कुण्ड का प्रकार स्पष्ट किया गया है।

द्विहस्तकुण्डमप्येवं द्विगुणीकृत्य मेखलाम्।
नाभेरप्यथवा कुण्डमेकमेखलकं भवेत्।।12।।
संक्षेपकर्मसु तथा वर्त्तुलं स्यात् सुलक्षणम्।

इसी प्रकार दो हाथ के कुण्ड में मेखला तथा नाभि दो गुनी होगी। अथवा संक्षिप्त कर्म में एक मेखलावाला कुण्ड हो सकता है तथा सभी लक्षणों से सम्पन्न वर्तुल कुण्ड का भी निर्माण किया जा सकता है।

चतुष्कोणैकहस्तस्य मध्ये कुण्डस्य चाङ्कनम्।।13।।
मध्यान्निधाय सूत्रेण भ्रामयेदभितो मुने।
कोणेषु यच्चाप्यधिकं तद्दिक्ष्वेव विनिर्दिशेत्।।14।।
इदञ्च वर्तुलं कुण्डं ततः स्यादर्धचन्द्रकम्।
दिशि चोत्तरतः कुण्डकोणभागार्द्धभागतः।।15।।
बहिरैन्द्र्या च वारुण्या यत्नान्मध्ये तु लांछयेत्।
संस्थाप्य भ्रामयेदेतदर्द्धचन्द्रं शुभ्रप्रदम्।[1]।16।।

एक हाथ के चौकोर भूमि के मध्य में कुण्ड का अंकन करना चाहिए। मध्यभाग से एक धागा लेकर उसे चारो ओर घुमावें। कोणों में और दिशाओं में चिह्न लगावें। यह वर्तुल कुण्ड कहलाता है। इसके बाद अर्द्धचन्द्र कुण्ड भी होता है। कुण्ड में उत्तर की ओर से कोण के आधे भाग पर पुनः पूर्व दिशा से पश्चिम दिशा तक सूत्र रखकर मध्य में स्थापित कर घुमावें। यह अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड शुभ फल देता है।

(महामहोपाध्याय मधुसूदन ओझा ने 'यज्ञमधुसूदन' नामक ग्रन्थ में वर्तुल कुण्ड बनाने की तीन विधियाँ दी हैं, जिनमें एक विधि के अनुसार चौकोर क्षेत्र में

1. घ. सुशोभनम्।

एक कोण से दूसरे कोण तक की दूरी का आधा कोणार्द्ध कहलाता है। उस कोणार्द्ध का आठवाँ भाग के बराबर की दूरी पर चतुष्कोण में चिह्न लगा लेना चाहिए। तब उन चिह्नों से होकर एक वृत्त बनाना चाहिए। यह वर्तुल कुण्ड कहलाता है। अगस्त्य-संहिता का भी यहीं मत प्रतीत होता है, किन्तु इस स्थल पर पाण्डुलिपि 'क' अपठनीय है।)

मेखलास्वष्टपत्राणि वर्तुलस्य तपोनिधे।
पद्माकारं भवेदेतत् कुण्डं सर्वफलप्रदम्।[1]।17।।

वर्तुल कुण्ड की मेखलाओं में आठ दल होंगे। इस प्रकार वह कुण्ड कमल के आकार का होगा, जो सभी प्रकार से फलदायक है।

शतहोमे रत्निमात्रं तदूर्ध्वं मुष्टिसम्मितम्।
सहस्रेप्ययुतेऽप्यर्द्धलक्षे लक्षेऽपि च क्रमात्।।18।।
पञ्चपञ्चाङ्गुलाधिक्याद् वर्द्धतेऽरत्निमात्रतः।
कुण्डञ्च कोटिहोमेऽपि तदूर्ध्वेऽपि कराष्टकम्।।19।।

सौ आहुति वाले होम में मुट्ठी बँधे हाथ की लम्बाई के बराबर, इसके ऊपर मुट्ठी खुले हाथ की लम्बाई के बराबर कुण्ड बनावें। हजार, दश हजार और उससे ऊपर लाखों आहुति के लिए क्रमशः मुट्ठी बँधे हाथ की लम्बाई से पाँच पाँच अंगुल क्रमशः बढ़ाते हुए एक हाथ तक बढ़ावें इस प्रकार कोटि होम तक के लिए कुण्ड बनावें। उसके ऊपर आहुति संख्या होने पर आठ हाथ की लंबाई-चौड़ाई वाला कुण्ड बनावें।

मुष्ट्यरत्निमिते कुण्डे दशद्वादशसंख्यया।
क्रमेणैवाङ्गुलानां च प्रथमा मेखला भवेत्।।20।।

मुट्ठी खोलकर एक हाथ की लम्बाई वाले कुण्ड में बारह अंगुल तथा बन्द मुट्ठी वाले हाथ की लम्बाई के परिमाण के कुण्ड में बारह अंगुल की पहली मेखला होती है।

द्वितीये च तृतीये च त्र्यंशे त्र्यशे विनिर्दिशेत्।
सर्वेषामेव कुण्डानामङ्गुलिद्वयवृद्धितः।।21।।
प्रथमा मेखला कार्या त्र्यंशेऽप्यन्या तु पूर्ववत्।
कण्ठोऽष्टयवमात्रः स्यात् कुण्डे च करमात्रके।।22।।
कुण्डे षड्यवमात्रः स्यात् कण्ठो रत्निप्रमाणके।
तथा चतुर्यवैः कण्ठो मुष्टिमात्रे विनिर्दिशेत्।।23।।

1. घ. में अनुपलब्ध।

दूसरी और तीसरी मेखला भी एक तिहाई भाग में होनी चाहिए। सभी प्रकार के कुण्डों में दो-दो अंगुलियाँ बढ़ाकर मेखला बनानी चाहिए। पहली मेखला एक तिहाई भाग में बनावें और अन्य मेखलाएँ पूर्ववत् परिमाण में बनाएँ। एक हाथवाले कुण्ड में कण्ठ का भाग (योनि का अग्रभाग, जो कुण्ड में निराधार स्थापित किया जाये) आठ यव के परिमाण का होगा तथा रत्निप्रमाण (मुट्ठी बँधा हाथ) के कुण्ड में कण्ठ छह यव के परिमाण का होगा तथा मुट्ठी वाले भाग से रहित एक हाथ के प्रमाण वाले कुण्ड में चार यव के परिमाण का कण्ठ बनावें।

सर्वेषु कुण्डमानेषु चाङ्गुलिद्वयवृद्धितः।
कुण्डो यत्नेन कर्तव्यो भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।।24।।

भोग और मोक्ष की इच्छा रखनेवाले सभी प्रकार के कुण्डों में दो-दो अंगुल बढ़ाकर यत्नपूर्वक कुण्ड का निर्माण करें।

सात्विकी राजसी चैव तामसी च क्रमाद् भवेत्।
प्रथमा च द्वितीया च तृतीया मेखला स्मृता।।25।।

कुण्ड तीन प्रकार के होते हैं– सात्विकी, राजसी एवं तामसी तथा मेखला भी प्रथमा, द्वितीया एवं तृतीया के नाम से तीन होतीं हैं।

योनिः कुण्डानुसारेण कुर्यादाद्यन्तमध्यतः।
उक्ताङ्गुलिप्रमाणेन द्विगुणाञ्च चतुर्गुणाम्।।26।।
होमसंख्यानुविधिना सर्वलक्षणलक्षितम्।
स्रुवं बाहुप्रमाणेन होमार्थं विदधीत वै।।27।।

कुण्ड के परिमाण के अनुसार कुण्ड की योनि आरम्भ, अन्त और मध्य भाग का निर्माण पूर्वोक्त अंगुल के प्रमाण से दो दुना या चारगुना करें। होम-संख्या के अनुसार सभी लक्षणों से सम्पन्न मेखलाओं का निर्माण करें। होम के लिए एक हाथ का स्रुव बनावें।

चतुरस्रं विधायादौ सप्तपञ्चाङ्गुलं क्रमात्।
तृतीयांशेन गर्तः स्यादन्तर्वृत्तशोभितम्।।28।।
खनित्वा समं तिर्यगूर्द्ध्वं तदधः शोधयेद् बहिः।
चतुर्थांशं चाङ्गुलस्य शेषं त्वर्द्धं[1] तदन्ततः।।29।।

1. घ. शेषाच्चार्द्धम्।

कुण्ड निर्माण के लिए सबसे पहले समतल भूमि पर बारह अंगुल पर्यन्त चौकोर गड्ढा बनावें। इसके बाद एक तिहाई भाग वृत्ताकार बनावें। इसके बाद टेढ़ा कर ऊपर की ओर खनें। इस क्रम में पहले एक अंगुल के चौथाई भाग तक खनें तथा अन्त तक आधा अंगुल टेढ़ा खनें।

रम्यां च मेखलां खाते शिष्टेनार्द्धेन कारयेत्।
कुर्य्यात् त्रिभागविस्तारां चाङ्गुष्ठेन समायुताम्।।30।।
सार्द्धमङ्गुष्ठकं चास्य तदग्रे तु मुखं भवेत्।
चतुरङ्गुलविस्तारं पञ्चाङ्गुलमथापि वा।।31।।
द्वित्रयाङ्गुलकं तस्य मध्यान्तं च शोभनम्।
सुषिरं कुण्डदेशे स्याद् विशेद्यावत्कनीयसी।।32।।
शेषं दण्डं च कर्त्तव्यं यथारुचि विचित्रकम्।[1]

तब शेष भाग के बीच में सुन्दर मेखला बनानी चाहिए। यह मेखला तीन अंगूठे की चौड़ाई लेकर बनावें। तब इसके आगे डेढ़ अंगूठे का मुख बनावें। यह मुख चार अंगुल अथवा पाँच अंगुल चौड़ा होगा। दो अथवा तीन अंगुल चौड़ा इसका मध्य भाग तथा अन्तिम भाग होगा, जिसे वह देशने में सुन्दर लगे। कुण्ड के समीप एक छिद्रयुक्त नालिका रखें, जिनमें कनिष्ठा अंगुली घुस सके। एक डंडा भी अपनी रुचि के अनुसार रंग-बिरंगा रखें।

चतुःकोणसमायुक्तो हस्तमात्रः स्रुवो भवेत्।।33।।
चतुष्कं शोभनं वृत्तं द्व्यङ्गुलं विदधीत वै।
यथाल्पपङ्के गोः पादं रुचिरं दृश्यते तथा।।34।।

एक हाथ की लम्बाई वाला चौकोर स्रुव होता है। दो अंगुल परिमाण के सुन्दर चार वृत्त दो अंगुल के परिमाण में रहना चाहिए। जैसे थोड़े कीचड़ में गाय के खुर की सुन्दर आकृति बन जाती है, उसी प्रकार स्रुव का आकार होना चाहिए।

पलाशपत्रे निच्छिद्रे रुचिरे स्रुक्स्रुवौ मुने।
विदध्याद् वाश्वत्थपत्रे संक्षिप्ते होमकर्मणि।।35।।

संक्षिप्त हवन में विना छिद्र वाले पलाश अथवा पीपल के पत्ते का उपयोग स्रुव एवं स्रुक् के अनुकल्प में करना चाहिए।

---

1. घ. यथाकिञ्चिद विचित्रकम्।

ततः कुण्डस्थलं सम्यग् गोमयेनोपलिप्य च।
शालितण्डुलचूर्णैश्च नीलपीतसितासितैः।।36।।
शोभोपशोभासंयुक्तं मण्डलं व्यक्तमुज्ज्वलम्।
कुण्डस्य सन्निधौ[1] सम्यग् वायव्ये विदधीत वै।।37।।

तब कुण्ड के स्थल को भलीभाँति गाय के गोबर से लीप कर चावल के नील, पीला, सफेद और काला पीठा से विभिन्न प्रकार से सजाकर स्पष्ट एवं चमकीला यन्त्र कुण्ड के समीप वायुकोण (पश्चिमोत्तर कोण) में लिखें।

तत्राष्टपत्रं कमलं वृत्तत्रयपरिवृतम्।
सोमसूर्याग्निबिम्बे द्वे तथा कुर्याद् विचक्षणः।।38।।

वहाँ अष्टदल कमल लिखें, जो तीन वृत्तों से घिरा हुआ हो तथा उसपर चन्द्रमा, सूर्य और अग्नि के दो बिम्ब बनाएँ।

चतुरस्रं बहिस्तस्य षट्कोणं कर्णिकान्तरे।
पीतं पूर्वे सितं देयं पश्चिमेऽप्युत्तरे तथा।।39।।
रक्तं तु दक्षिणे कृष्णं पाटलं वह्निसंस्थितम्।
निर्ऋते नीलवर्णन्तु वायव्ये धूम्रवर्णकम्।।40।।
ऐशे गौरं विनिर्दिष्टमष्टपत्रे त्वयं क्रमः।

इसके बाहर चतुर्भुज बनाएँ तथा कर्णिका (मध्यभाग) में षट्कोण बनाएँ।

शङ्खचक्रगदापद्मं धनुर्बाणाश्च[2] मण्डले।।41।।
विलिखेद् वर्णकैः सम्यक् तत्र रामं समर्चयेत्।

शंख, चक्र,गदा, पद्म, धनुष और बाण इस षट्कोण में सुन्दर ढंग से बनाएँ और वहाँ श्रीराम की अर्चना करें।

कुण्डान्तरेष्वेवमेवमाराध्य श्रद्धया मुने।[3]।42।।
आदौ वह्निमुखं कुर्यादुपविष्टः सुविष्टरे।

दूसरे कुण्डों में भी इसी प्रकार श्रद्धा से आराधना कर सुन्दर विष्टर (25 कुशों से निर्मित अधःकेश पुंज) पर बैठकर सबसे पहले अग्निमुख करें।

प्राणानायम्य मनसा जपेन्मन्त्रमनन्यधीः।।43।।
यावन्मरुत् संचरति सर्वाङ्गेष्वपि निश्चलः।

1. घ. दक्षिणे। 2. घ. धनुर्बाणानि । 3. घ. शृणुयान्मुने।

प्राणायाम कर मन ही मन एकाग्र होकर मन्त्र का जप तब तक करें, जबतक कि वायु सभी अंगों में निश्चल होकर संचरण न करने लगे।

सङ्कल्प्य स्थण्डिले कुण्डे कृत्वा लेखाश्च मध्यमाः।।44।।
ऊर्ध्वं तिर्यक् तिस्र एव वह्निमत्रादधीत वै।
प्रोक्ष्योपसार्य्य[1] तत्पश्चाद्दत्वा विष्टरमादरात्।।45।।

स्थण्डिल अथवा कुण्ड में संकल्प कर मध्य में तीन रेखाएँ नीचे से ऊपर की ओर तथा तीन दायें से बाये आलेखन करें। तब यहाँ अग्नि का आधान करें। इसके बाद अग्नि का प्रोक्षण और अपसारण कर कुश से परिस्तरण करें।

लक्ष्मीमृतुमतीं तत्र प्रभोर्नारायणस्य च।
ग्राम्यधर्मेण सञ्जातमग्निं तत्र विचिन्तयेत्।।46।।

वहाँ लक्ष्मी को रजस्वला के रूप में ध्यान करें और प्रभु नारायण के संयोग से उत्पन्न अग्नि का स्मरण करें।

प्रमथ्य विधिनैवाग्निमाहिताग्नेर्गृहादपि।
आनीय चादधीतात्र कुशैः प्रज्वाल्य यत्नतः।।47।।

अग्नि का विधानपूर्वक मन्थन कर अथवा आहिताग्नि के घर से लाकर कुश से अग्नि प्रज्वलित कर यहाँ आधान करें।

सम्प्रोक्ष्य याज्ञिकैः काष्ठैः पुनः प्रज्वालयेदपि।
प्राणायामन्ततः कुर्यात् परिस्तार्य कुशाङ्कुरैः।।48।।

यज्ञीय काष्ठ से प्रोक्षण कर पुनः उसे प्रज्वलित करें, तब कुश से परिस्तरण कर प्राणायाम करें।

स्वगृह्योक्तविधानेन वासुदेवादिभिर्मुने।
पात्राण्यासाद्य विधिवदिध्ममन्त्रेण तन्त्रवित्।।49।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! मन्त्र के ज्ञानी अपनी शाखा के गृह्यसूक्त की विधि के अनुसार अथवा वासुदेव आदि की पद्धति के अनुसार पात्रों को यथास्थान विधानपूर्वक इध्ममन्त्र से रखें।

तान्यवेक्ष्य पवित्रेण चोत्तमानि विधाय च।
पुनः प्रोक्ष्यानयेत् पात्रं परिपूर्य शुभाम्बुना।।50।।

1. घ. प्रोक्ष्य प्रसार्य्य।

पवित्री कुश हाथ में रखकर उन पात्रों का अवेक्षण (अवलोकन) कर उन्हें उत्तान स्थापित कर फिर प्रोक्षण (धोकर) कर पात्रों को शुभ जल से भरकर रखें।

कृत्वा कुशपवित्रं च तत्रोत्पूर्य निधाय तत्।
दिश्युत्तरस्यां तत्पात्रं प्रणीतेत्युच्यते बुधैः।।51।।

कुश की दो पवित्री का निर्माण जल भरे पात्र के ऊपर रखें। उत्तर दिशा में रखे गये उस पात्र को प्रणीता कहा जाता है।

तत्रार्चयेत् प्रभुं विष्णुं ब्रह्माणं ब्रह्मणार्चयेत्।[2]
आज्यं[2] **संस्कृत्य विधिवत् स्रुक्स्रुवावोमिति ब्रुवन्।।52।।**

वहाँ प्रभु विष्णु तथा ब्रह्मा की अर्चना ब्रह्मसूक्त से करें तथा घृत का संस्कार तापन एवं उद्धरण विधि से कर ॐकार का उच्चारण करते हुए स्रुक् और स्रुव का संस्कार करें।

गर्भाधानादिकं वह्नेर्विवाहान्तं समाचरेत्।
अष्टावष्टौ च तारेण चैकैकस्य तु कर्मणः।।53।।

तब अग्नि के गर्भाधान से विवाह पर्यन्त की विधि करें। इनमें आठ आठ बार ॐकार का उच्चारण प्रत्येक विधि में करें।

जुहुयादर्चिते वह्नौ वौषडन्तं समाप्य च।
कर्मान्तरं समारभ्य तदप्येवं समापयेत्।।।54।।

इस प्रकार पूजित अग्नि में वौषट् से समाप्त कर हवन करें। अन्य कर्म भी प्रारम्भ कर इसी प्रकार समाप्त करें।

एवमग्नौ सुसम्पन्ने वैष्णवं स्रपयेच्चरुम्।
इध्माधानादग्निमुखावाज्यभागौ जुहुयात् पुनः।।55।।

इस प्रकार सम्यक् प्रकार से अग्नि-पूजन समाप्त कर विष्णु को समर्पित करने योग्य चरु पकायें। तब अग्नि का आधान से अग्निमुख कर्म पर्यन्त कर दोनों आज्यभाग हवन करें।

साङ्गावाहनमन्त्राग्नौ पूजयेद्रघुनन्दनम्।[3]
समिदाज्यचरूणां च प्रत्येकं षोडशाहुतीः।।56।।
जुहुयान्मूलमन्त्रेण परिवारेभ्य एव च।
तिस्रो विनायकादिभ्यः सर्वेभ्योऽप्याहुतीर्मुने।।57।।

---

1. घ. ब्राह्मणोऽर्चयेत्। 2. घ. कामं। 3. घ. पूजयेद्रघुनायकम्

मूल मन्त्र से परिवार देवताओं को आहुति देकर गणेश आदि सभी देवताओं को आहुति दें।

द्वाराङ्गपरिवारेभ्यः सुरेभ्यो जुहुयात्पुनः।
हुत्वाज्येनाहुतीस्तत्तत् प्रदद्यात्तत्तदाप्तये।।58।।

द्वारदेवता, अंगदेवता, परिवार देवता एवं अन्य देवताओं को भी आहुति देकर पुनः घृत से उन उन देवताओं की कृपा पाने के लिए आहुतियाँ दें।

तत्तद्द्रव्यैश्च जुहुयात् सर्वं चारुमनोहरैः।
द्वारपीठसुरेभ्यश्च हुत्वादौ जुहुयात्ततः।।59।।
अङ्गादिवैष्णवान्तेभ्यः तिस्र आज्याहुतीः पृथक्।

देवताओं के लिए विहित उन मनोहर द्रव्यों से द्वारदेवता एवं पीठदेवता को आहुति देकर तब हवन करें। अङ्ग देवताओं से आरम्भ कर विष्णु-भक्तों तक तीन तीन आहुतियाँ पृथक् पृथक् दें।

ततः स्विष्टकृतं हुत्वा घृतेन मुनिसत्तम।।60।।
जलेन विधिना सम्यक् परिषिञ्च्य[1] समं ततः।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! तब स्विष्टकृत् होम घृत से करें और विधानपूर्वक जल से परिषेचन करें।

प्रणीतामार्जनं कृत्वा दद्याच्च ब्रह्मदक्षिणाम्।।61।।
स्वस्ववित्तानुसारेण लोभमोहविवर्जितः।
ततो ब्रह्माणमुद्वास्य ब्राह्मणान्भोजयेत्तथा।।62।।

प्रणीतापात्र को खँघाल कर अपने विभव के अनुसार लोभ और मोह का परित्याग करते हुए ब्रह्मा को दक्षिणा दें। तब ब्रह्मा को विसर्जित करें और ब्राह्मणों को भोजन कराएँ।

अग्निमध्यगतं देवं पुनः स्वात्मनि योजयेत्।
एकीभूतं विचिन्त्येव वाचयेत् स्वस्तिवाचनम्।।63।।
आशीर्वचोभिर्विदुषामेध्यमानः सुखी भवेत्।

तब अग्नि के मध्य में स्थित देव श्रीराम का आधान अपने हृदय में करें और श्रीराम के साथ एकाकार हो जाने का चिन्तन करें। तब स्वस्तिवाचन कराएँ। विद्वानों के आशीर्वचन से यजमान वृद्धि करता हुआ सुखी रहता है।

---

1. घ. चाभिषिञ्च्य।

हुतशेषं ततः प्राश्य कुक्कुटाण्डप्रमाणकम्।।64।।
मन्त्रितं रामगायत्र्या ततस्तस्मै बलिं हरेत्।
सन्निधावपि देवस्य बाह्यान्तर्दिक्षु चान्धसा।।65।।

तब हवन करने से शेष बचे पदार्थ में से मुर्गी के अंडे बराबर मात्रा में लेकर रामगायत्री से अभिमन्त्रित कर भक्षण करें। तब देवता के समीप, बाहर-भीतर एवं सभी दिशाओं में लिए भात (अन्धस्) से बलि दें।

नित्ये नैमित्तिके काम्येऽप्येतदग्निमुखं स्मृतम्।
सर्वत्राभ्युदयश्राद्धमङ्कुरारोपणं तथा।
आदावन्ते प्रकुर्वन्ति कर्माण्यभ्युदयार्थिनः।[1]।66।।

नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य तीनों कर्मों में इस प्रकार हवन स्मृतियों में कहा गया है। इन सभी कर्मों के आरम्भ एवं अंत में आभ्युदयिक श्राद्ध और अंकुरारोपण भी उन्नति के आकांक्षियों के लिए स्मृत है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये कुण्डमान-
होमान्तादिविधिप्रकरणं नाम चतुर्दशोऽध्यायः।।14।।

अथ पञ्चदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ प्रयोगं[2] वक्ष्यामि चतुर्णामिष्टदं[3] मुने।
मन्दभाग्योऽपि येनेष्टमायासेनैति वांछितम्।।1।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि सुतीक्ष्ण, अब चारो वर्णों को वांछित फल देने वाला प्रयोग बतलाता हूँ, जिसे करने मन्दभाग्य भी इच्छित वस्तु प्राप्त कर लेता है।

निधाय विधिवत्सम्यगग्निभागान्तमुक्तवत्।
ततोऽग्नौ देवमावाह्य पूजयेदुपचारकैः।।2।।
पञ्चभिर्वा षोडशभिः पूज्योपकरणैः पृथक्।
पलाशाश्वत्थखदिरोदुम्बराम्रवटेन्धनैः ।।3।।
अग्निं प्रज्वालयेत् सम्यग्याज्ञिकैर्वाथ वेन्धनैः।
तत्रैव पूजयेत् सम्यग् जुहुयादपि राघवम्[4]।।4।।

1. घ. कर्मणोऽभ्युदयार्थतः। 2. घ. प्रयोगान्।3. घ. चतुर्णामिष्टदान्। 4. घ. माधवम्।

लक्षं तदर्द्धमथवा जपित्वा तद्दशांशतः।
तिलैर्वामलकैर्हुत्वा[1] यद्यदिष्टं तदश्नुते।।5।।

विधानपूर्वक पीछे कही गयी विधि से होमकर्म पर्यन्त कर अग्नि में देवता का आवाहन कर पाँच या सोलह उपचारों से पृथक्-पृथक् पूजा कर पलाश, पीपल, खैर, गूलर, आम, बड़, या अन्य यज्ञीय की समिधा से अग्नि प्रज्वलित करें। वहीं 'श्रीराम की पूजा सम्यक् रूप से कर एक लाख अथवा पचास हजार जप कर उसका दशांश हवन करें। तिल से अथवा आँवला से हवन कर अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति होती है।

बिल्वप्रसूनैरैश्वर्य्यमर्चितेऽग्नौ हुतैर्भवेत्।
पलाशकुसुमैर्हुत्वा मेधावी वेदविद् भवेत्।।6।।
दूर्वाभिश्च गुडीचीभिः[2] प्रत्येकमपि चाक्षतैः।
निरामयोऽपि दीर्घायुर्भवत्येव तपोधन[3]।।7।।

पूजित अग्नि में बेल के फूल से हवन करने पर ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। पलाश के फूल से हवन कर वह मेधावी और वेद ज्ञानी होता है। दूर्वा या गुरुच के साथ अक्षत मिलाकर हवन करने से यजमान नीरोग और दीर्घायु होते हैं।

सम्यक् चन्दनतोयेन प्रत्यग्रैश्च समुक्षितैः।
जातीप्रसूनैर्हुत्वा तु राजानं वशमानयेत्।।8।।

चन्दन के जल से सुगन्धित खिलेहुए तथा उचित रीति से तोड़े गये ताजे जूही के फूल से हवन कर राजा को वश में करे।

ध्यात्वा च मन्मथं रामं[4] सीतामपि रतिं स्मरेत्।
सर्ववश्यप्रयोगेषु जपहोमादिकर्मसु।।9।।

श्रीराम का कामदेव के रूप में तथा सीता को रति के रूप में सभी वशीकरण के प्रयोग में, जप होम आदि में स्मरण करें।

रामं नवोपयन्तारं स्मरेणाराध्य[5] भक्तितः।
उपैति सदृशीं कन्यां लाजहोमेन साधकः।।10।।

कामबीज (क्लीं) से नव विवाहित श्रीराम की भक्तिपूर्वक आराधना कर धान के खील से हवन करने से साधक श्रीसीता के समान कन्या पत्नी के रूप में प्राप्त करता है।

---

1. घ. कमलैर्हुत्वा। 2. घ. गुलूचीभिः। 3. घ. तपोनिधे। 4. घ. ध्यात्वापि राघवं कामं।5. घ. स्मरन्नाराध्य।

वाञ्छितं फलमाप्नोति हुत्वा रक्तोत्पलैर्नवैः।
हुत्वा नीलोत्पलैः सम्यग् वशयेदखिलं जगत्।।11।।

ताजे लाल कमल से हवन कर इच्छित फल प्राप्त करता है तथा नीलकमल से हवन कर समग्र संसार को वश में करता है।

रामं विधिवदाराध्य ज्वलितेग्नौ प्रयोगवित्।
मधुरत्रययुक्तेन पायसेन हुतेन तु।।12।।
सर्वाधिपत्यं वैदुष्यं भवत्येव न संशयः।
तिलैश्च तण्डुलैराज्यैर्हुत्वा लोकस्य पूज्यताम्।।13।।

प्रज्वलित अग्नि में श्रीराम की विधिपूर्वक आराधना कर प्रयोग जानने वाला तीन मधुर (मधु, गुड़ एवं मिसरी) मिले खीर से हवन कर सभी पर आधिपत्य और वैदुष्य प्राप्त करता है और तिल, चावल एवं घृत से हवन कर संसार में पूजित होता है।

आराध्य वत्सरं यावत्[1] षट्सहस्रं दिने दिने।
जपेच्च जुहुयादग्नौदशांशं तद्व्रतान्धसा।।14।।
अयमेवान्नदो लोके सर्वेषामपि जायते।
बिल्वप्रसूनैः कुमुदैस्तथा बिल्वदलैरपि।।15।।
हुत्वा स लभते लक्ष्मीमचिरान्मन्त्रसाधकः।

प्रतिदिन छह हजार मन्त्र का जप कर अग्नि में पूर्वोक्त विधि उससे युक्त भात (अन्धस्) से दशांश हवन करें। यहीं इस संसार में सबके लिए अन्न देने वाला प्रयोग है। बेल का फूल, कुमुद तथा बिल्वपत्र से हवन कर मन्त्रसाधक शीघ्र लक्ष्मी प्राप्त करता है।

आराध्य रामं चण्डांशुमण्डले वत्सरं मुने।।16।।
उदयास्तमने तं च जपेद्राममन्त्रमनन्यधीः।[2]
फलं भवति तस्याशु देवानामपि दुर्लभम्।।17।।
वैदुष्येणाधिपत्येन सभ्यानामुत्तमो[3] भवेत्।
पूर्णिमासु निशीथिन्यामुदयास्तमयव्रतम्।।18।।

1. घ. आरात् संवत्सरं यावत्। 2. घ. उदयास्तमनं यावत् जपेन्मन्त्रमनन्यधीः। 3. घ. समानामुत्तमो।

संवत्सरं प्रकुर्वीत जपहोमादिकं विभोः।
रात्रौ जपेद्दिवा होमं कुर्यादिवापरेऽहनि।।19।।
ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु व्रतमेतत् समापयेत्।
सोमसूर्यात्मकं यस्तु व्रतं कुर्वीत मानवः।।20।।
इह भुक्तिं च मुक्तिञ्च लभते नात्र संशयः।

एक वर्ष तक सूर्य के प्रभामण्डल में उदय और अस्त के समय श्रीराम की आराधना कर एकाग्रचित्त होकर श्रीराम के मन्त्र का जप करे, तो इसका जो फल शीघ्र उसे मिलता है, वह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। वह विद्वत्ता और आधिपत्य से सभा में स्थित लोगों में श्रेष्ठ हो जाता है। साथ ही पूर्णिमा की रात में चन्द्रोदय एवं चन्द्रास्त के समय यह व्रत जप, होम आदि विधि में वर्ष पर्यन्त करे। रात्रि में जप कर दूसरे दिन हवन करे; ब्राह्मण भोजन कराकर यह व्रत जो मनुष्य करे, वह इस संसार में भोग और मुक्ति प्राप्त करे, इसमें सन्देह नहीं।

रक्तपद्मैश्च बन्धूकैस्तथा रक्तोत्पलैरपि।।21।।
अभीष्टलोकवश्यार्थो जुहुयादर्चितेऽनले।

लाल कमल, बन्धूक (दुपहरिया फूल) और लाल उत्पल से अभीष्ट व्यक्ति के वशीकरण के लिए पूजित अग्नि में हवन करें।

राज्यैश्वर्य्योपभोगार्थी गिरौ[1] लक्षमनन्यधीः।।22।।
पद्मैर्बिल्वप्रसूनैर्वा दशांशं जुहुयान्मुने।

राज्य और ऐश्वर्य के उपभोग का इच्छुक एकचित्त होकर पर्वत पर लाख जप कर लाल कमल या बिल्वपुष्प से दशांश हवन करे।

समुद्रतीरे गोष्ठे वा लक्षजापी पयोव्रतः।।23।।
पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत्।

समुद्र के तट पर अथवा गाय के घर में केवल दूध पीकर एक लाख जप कर धृत डालकर पायस से हवन कर विद्वान् होता है।

परिक्षीणाधिपत्यो[2] यः शाकाहारी जलान्तरे।।24।।
जपेल्लक्षं च जुहुयाद् बिल्वपत्रैर्दशान्ततः।
तदेव पुनरायाति स्वाधिपत्यं न संशयः।।25।।

1. घ. जपेत्। 2. घ. परिक्षताधिपत्यो।

राज्यच्युत व्यक्ति यदि केवल साग*खाकर जल में खड़ा होकर एक लाख जप करे और बिल्वपत्र से दशांश हवन करे, तो उसका शासन पुनः लौट आता है; इसमें सन्देह नहीं।

उपोष्य गङ्गादिजलान्तरस्थो
रामं समाराध्य जपेच्च लक्षम्।
हुत्वा दशांशं कमलैस्तिलैर्वा
बिल्वप्रसूनैर्मधुरत्रयाक्तैः ।।26।।
राज्यश्रियं विन्दति मन्दभाग्योऽ-
प्यमुष्य दास्यं वरवाञ्छितं स्यात्।
[1]वैदुष्यमिष्टञ्च सुतादिलाभो
युद्धे जयः सर्व्वसमृद्धिवृद्धिः।।27।।

गंगा आदि पवित्र नदी के जल में उपवास करते हुए खड़ा होकर श्रीराम की आराधना कर एक लाख जप करे और तीन मधुर से युक्त तिल अथवा बिल्वपत्र से दशांश हवन करे, तो मन्दभाग्य को भी श्रीराम की दासता और वाञ्छित वर मिले।

राममाराध्य विधिवदर्चितेऽग्नौ जपेदपि।
सूर्यबिम्बेऽपि तोयस्थो जुहुयादिक्षुदण्डकैः।।28।।
राज्यलक्ष्मीमवाप्नोति शरत्काले तपोधन।।29।।

जल में खड़ा होकर सूर्य विम्व में श्रीराम की विधिवत् आराधना कर जप भी करे और शरद् ऋतु में पूजित अग्नि में ईख के टुकड़े से हवन भी करे तो हे तपोधन! सुतीक्ष्ण! वह राज्यलक्ष्मी प्राप्त करता है।

वैशाखे राघवं सूर्य्ये सम्पश्यन्ननिमेक्षणः।
निराहारो जपेल्लक्षं मौनी पञ्चाग्निमध्यतः।।30।।
दशांशं कमलैर्हुत्वा सार्वभौमो भवेद् ध्रुवम्।

वैशाख मास में निराहार रहकर, मौन धारण कर, पंचाग्नि व्रत करते हुए (चारो ओर अग्नि जलाकर तथा पाँचवें सूर्य को देखते हुए) सूर्य में श्रीराम को अपलक देखते हुए एक लाख मन्त्र का जप करे और उसका दशांश कमल से हवन कर निश्चय सार्वभौम बन जाता है।

1. क. **यहाँ से दो चरण** अनुपलब्ध।

माघमासे जले स्थित्वा कन्दमूलफलाशिनः[1]।।31।।
जपेल्लक्षं च जुहुयात् पायसेनार्चितेऽनले।
दशांशं पुत्रपौत्राय[2] तच्छेषं प्राशयेत् प्रियाम्।।32।।
श्रीरामसदृशः पुत्रः पौत्रौ वाप्यस्य जायते।

माघ मास में कन्द, मूल, फल खाकर व्रत करते हुए जल में खड़ा होकर जो लाख जप करे और पूजित अग्नि में पायस से दशांश हवन करे और पुत्र पौत्र आदि की प्राप्ति के लिए आहुति शेष पत्नी को विधिपूर्वक खिलावे तो श्रीराम के समान पुत्र अथवा पौत्र प्राप्त होता है।

बलिष्ठैः शत्रुभिर्मन्त्री परिभूतोऽवमानितः।।33।।
तदा हनहनेत्युक्त्वा नामान्ते वैरिणो जपेत्।
ध्यात्वा रघुपतिं क्रुद्धं कालानलमिवापरम्[3]।।34।।
आकर्णान्तशराकृष्टकोदण्डभुजमण्डलम्।
रणाङ्गणे रिपून् सर्वांस्तीक्ष्णमार्गणवृष्टिभिः।।35।।
संहरन्तं महावीरमुग्रमैन्द्ररथस्थितम्[4]।
लक्ष्मणादिमहावीरैर्युतं हनुमदादिभिः।।36।।
कोटिकोटिमहावीरैः शैलवृक्षकरोद्धतैः।
वेगात् करालहुङ्कारभौभौकारमहारवैः।।37।।
नदद्भिरभिधावद्भिः समरे रावणं प्रति।
एवं ध्यात्वा निराहारो मारणाय[5] रिपोः पुनः।38।।
जुहुयात् शाल्मलीपुष्पैर्दशांशं मन्त्रसाधकः।
अत्यैश्वर्यसमृद्धोऽपि[6] न शत्रुरवशिष्यते।।39।।

यदि मन्त्र साधक शक्तिशाली शत्रु से हारकर अपमानित हुआ हो तो 'हन हन' यह कहकर शत्रु का नाम अन्त में जोड़कर जप करे। जो श्रीराम क्रोधित हैं, दूसरे कालाग्नि के समान हैं, कान तक खिंचे हुए बाण वाले धनुष हाथ में धारण किए हुए हैं तथा युद्ध-क्षेत्र में तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से सभी शत्रुओं का संहार करनेवाले हैं; इन्द्र के रथ पर स्थित हैं। वे लक्ष्मण, हनुमान आदि महान् वीरों से घिरे हुए हैं तथा चट्टानों और वृक्षों को लेकर उठे हाथ वाले, हुंकार करते हुए युद्ध

1. घ. फलाशनः। 2. घ. पुत्रपौत्रास्यै।3. घ. कालाग्निमुव चापरं। 4. घ. महावीरं राममुग्ररथस्थितम्। 5. घ. मरणाय। 6. घ. राज्यैश्वर्य०

में रावण की ओर दौड़ते हुए "भौ भौ" शब्द करते हुए करोड़ों करोड़ो महान् वीरों से भी घिरे हुए हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान कर शत्रु को मारने के लिए सेमल के फूल से दशांश हवन करे। इससे अत्यन्त ऐश्वर्य प्राप्त होता है और शत्रु शेष नहीं रहता।

वैरिणं रावणं ध्यात्वा तथात्मानं रघूद्वहम्।
विधाय पूर्ववत्सर्वमनायासेन मारयेत्।।40।।
येनैव संहृतः[1] कोपात् स यात्येव यमालयम्।

रावण के रूप में शत्रु का ध्यान कर स्वयं को श्रीराम मानकर पूर्वोक्त विधि से जप आदि सब कुछ कर सभी शत्रुओं का अनायास मारण करे। क्रोध से जिस पर सन्धान किया जाए वह यमलोक पहुँच जाता है।

सीताहरणशोकाब्धिस्तम्भीभूतमचेतनम्[2] ।।41।।
जपेद् रघुपतिं ध्यायन् निराहारो जले वसेत्।
दशांशतस्तिलैर्हुत्वा स्तम्भयेच्छत्रुसंहतिम्।।42।।

सीता के अपहरण के कारण शोक रूपी समुद्र में स्तब्ध चित्त वाले श्रीराम का ध्यान करते हुए निराहार रहकर जल में अवस्थित होकर जप करें। उसका दशांश तिल से हवन कर शत्रु के समूह का वह स्तम्भन करे।

निधाय वायुबीजान्ते तन्नाम भ्रामयेति च।
जपेल्लक्षं निराहारो जुहुयाच्च तिलैरपि।।43।।
रामं ध्यात्वा विषण्णञ्च सीतान्वेषणकातरम्।
भ्रामयत्यचिरं साक्षाद्धेमाद्रिमपि वैरिणम्।।44।।

मन्त्र के अन्त में वायु वीज (वं) लगाकर अभीष्ट व्यक्ति का नाम बोलकर 'भ्रामय' यह कहे। इस प्रकार निराहार रहते हुए एक लाख जपकर तिल से हवन करें। इस पुरश्चरण में विषादग्रस्त और श्रीसीता की खोज में व्याकुल श्रीराम का ध्यान करे तो वह साक्षात् सुमेरु के समान दृढ़ शत्रु का भी 'भ्रामण' करे।

समुद्रतीरे लङ्कायां हैमप्राकारसन्निधौ।
सुग्रीवादिभिरन्यैश्च देवैर्जाम्बवदादिभिः।।45।।
उपास्यमानं सदसि ध्यात्वा रामं सलक्ष्मणम्।

1. घ. तेनायं संहतः। 2. घ. स्तब्धीभूत°।

विभीषणायायाचिते प्रसन्नं शरणार्थिने।।46।।
वरदं तु जपेल्लक्षं जुहुयात्पङ्कजैरपि।
स्वस्थानमानयेच्छीघ्रं राजानमथवा प्रभुम्।।47।।

समुद्र के तट पर, लंका में, सोने की अट्टालिका के समक्ष, सुग्रीव जाम्बवान् आदि से घिरे हुए, सभा में आराधित, ऐसे श्रीराम और लक्ष्मण का ध्यान करें, जिनसे विभीषण याचना कर रहे हों और जो शरण चाहनेवालों पर प्रसन्न हों। इस प्रकार ध्यान कर एक लाख जप करें और कमल के फूल से हवन करें, तो अपने निवास स्थान पर राजा अथवा प्रभु का आकर्षण कर लाने में समर्थ हों।

निमील्य चक्षुषी स्नेहादुपलाप्य पुनः पुनः।
प्रमोदयन्तं सहसा मोदन्तं मैथिलीं प्रियाम्।।48।।
रामं ध्यात्वा जपेल्लक्षं हुत्वा रक्ताम्बुजैरपि।
सम्मोहयति वेगेन राजानमथवा प्रभुम्।।49।।

दोनों आँखें बन्द कर स्नेहपूर्वक बार बार आलाप कर प्रिया सीता को वरवस प्रफुल्लित करते हुए स्वयं भी प्रसन्न श्रीराम का ध्यान कर लाख मन्त्र जपें और लाल कमल से हवन कर शीघ्र ही राजा अथवा प्रभु को सम्मोहित करता है।

सुतीक्ष्णमुनिवर्यात्र षट्प्रयोगप्रदर्शनम्।
सर्वाभीष्टार्थतत्त्वस्य द्योतनाय मनोः पुनः।।50।।
नैव कर्त्तव्यमित्येव मुक्तिर्दूरतरा[1] यतः।
किञ्च प्रयोगकर्तॄणां परलोको न विद्यते।।51।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! यहाँ मैंने सभी अभीष्ट तत्त्वों को स्पष्ट करने के लिए छह प्रयोगों का प्रदर्शन किया फिर कहता हूँ कि इन्हें करना नहीं चाहिए; क्योंकि इससे मुक्ति दूर चली जाती है साथ ही, प्रयोग करनेवालों को परलोक नहीं मिलता।

प्रयोगसिद्धिरेतेषां फलं नान्यद् भवत्यपि।
नैष्कामानां तु भक्तानां जपहोमादिकर्मसु।।52।।
मुक्तिरेव फलं तेषामिह किञ्चिन्न विद्यते।
एकैकस्य विधानस्य न कुत्रापि फलद्वयम्।।53।।

1. घ. मुक्तिर्भारतरा।

इनके करने से प्रयोगों की ही सिद्धि होती है; अन्य फल उन्हें नहीं मिलता। किन्तु निष्काम भक्तों का जप, होम आदि कर्मों में मुक्ति ही फल होता है; उन्हें इस संसार में कुछ नहीं मिलता क्योंकि एक विधि के कहीं भी दो फल नहीं हो सकते।

सुतीक्ष्ण दृश्यते तस्मानिष्कामो राममर्चयेत्।
विद्वान् ब्रह्मास्त्रमादाय शशादौ न विमोचयेत्।[1]
नायं मुक्तिपदो मन्त्रो मारणादौ प्रयुज्यताम्।।54।।

इसलिए हे सुतीक्ष्ण! इस प्रकार स्पष्ट है कि कामना रहित होकर ही श्रीराम का अर्चन करना चाहिए। विद्वान् ब्रह्मास्त्र लेकर खरगोश पर न छोड़ें। मुक्ति प्रदान करनेवाला षडक्षर राम-मन्त्र का मारण आदि के लिए प्रयोग न करें।

इत्यगस्त्यसंहितापरमरहस्ये प्रयोगविधिर्नाम
पञ्चदशोऽध्यायः।

अथ षोडशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ वक्ष्ये विधानानि पौरश्चरणिके विधौ।
विना येन न सिद्धः स्यान्मत्रो वर्षशतैरपि।।1।।

अगस्त्य बोले- अब पुरश्चरण की विधि के विधानों को कहता हूँ, जिनके विना मन्त्र की सिद्धि सौ वर्षों में भी नहीं होगी।

भक्तिश्रद्धेष्टदानानि चिरोपास्ति प्रसादितात्।
गुरोर्मन्त्रं वरं लब्ध्वा सर्वाभीष्टप्रदं बुधः।।2।।
पूर्ववत् पूजयेन्नित्यं जपेत नियतव्रतः।
षट्सहस्रं सहस्रं वा शतं वाष्टोत्तरं शुचिः।।3।

1. घ. ब्रह्मन् ब्रह्मास्त्रमादाय शशादौ न विमोचय।

भक्ति, श्रद्धा और इच्छित दान कर चिरकाल तक की उपासना (सेवा) से प्रसन्न किये हुए गुरु से सभी इच्छाओं की पूर्ति करनेवाला मन्त्रश्रेष्ठ षडक्षर मन्त्र का ग्रहण कर योग्य साधक पूर्वोक्त विधि से नित्य पूजन करें और नियमों का पालन करते हुए पवित्र होकर प्रतिदिन छह हजार, एक हजार अथवा एक सौ आठ बार जप करें।

एवमाराधितो रामः परां[1] भक्तिं प्रबोधयेत्।
पुरश्चरणकृत्याय पूर्वमेवं विधीयते।।4।।

इस प्रकार आराधित श्रीराम परम भक्ति जगाते हैं। पुरश्चरण के लिए इस प्रकार पूर्वकृत्यों का विधान किया जाता है।

यथाशक्ति नियम्यान्ते बहिरात्मानमात्मवित्।
पुरश्चरणवत्सर्वं कुर्याद् होमं विधानतः[2]।।5।।
ततः संकल्प्य कुर्वीत पुरश्चरणमादरात्।
चिरं निरन्तरेणैव नियतात्मा दृढव्रतः।।6।।

आत्मज्ञानी यथाशक्ति प्राणायाम कर बाह्य और अन्तःशुद्धि पुरश्चरण की विधि के समान करें। तब विधानपूर्वक हवन करें। इसके बाद संकल्प कर आदर भाव से अधिक दिनों तक लगातार एकाग्र भाव से दृढ़तापूर्वक नियमों का पालन करते हुए पुरश्चरण करें।

शैलाग्रे जलमध्ये वा तीरे वा लवणाम्बुधेः।
नदीतीरेऽश्वत्थमूले रम्ये बिल्ववनान्तरे।।7।।
प्रत्यङ्मुखशिवस्थाने वृषभादिविवर्जिते।
अश्वत्थबिल्वतुलसीवने पुष्पान्तरावृते।।8।।
गवां गोष्ठेषु तीर्थेषु पुण्यक्षेत्रेषु शस्यते।

यह पुरश्चरण पर्वत शिखर पर, जल में, समुद्र के तट पर, नदी के तट पर, पीपल वृक्ष की जड़ में, बेल के रमणीय वन में, पूर्वाभिमुख शिवालय में जहाँ वृषभ आदि न हों, पीपल, बेल तुलसी के वन में जहाँ अन्य फूलों के वृक्ष हों, गाय के घर में, तीर्थों में और पुण्यस्थानों में पुरश्चरण प्रशस्त है।

वैदिकाचारयुक्तानां श्रुतानां श्रीमतां सताम्।।9।।
स्वकुलस्थानजातानां[3] भिक्षाशी चाग्रजन्मनाम्।

1. घ. यदा। 2. घ. विधाय तत्। 3. घ. सत्कुलस्थानजातानां।

भुञ्जानो वा हविष्यान्नं शाकं यावकमेव वा।।10।।
पयो मूलं फलं वापि यत्र कुत्रोपलभ्यते।[1]

वैदिक आचार से युक्त, वेदज्ञानी, धनवान्, सज्जन, अपने कुल के निवास स्थान में उत्पन्न, ब्राह्मणों के घर से मिली भिक्षा का भोजन करता हुआ, हविष्यान्न, शाक अथवा यव का सत्तू, दूध, कन्द-मूल, जो अनायास उपलब्ध होते हैं, उनका भोजन करना चाहिए।

धूपस्तथाभिधार्य्यैतत्[2] संस्कृत्य प्रोक्षणादिभिः।।11।।
वाचयेद् वैदिकैर्मन्त्रैः पुनर्मन्त्रेण मन्त्रवित्।[3]
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं[4] कुर्वीतैवाश्रमोदितम्।।12।।
वर्जयेत् काम्यकर्माणि स्वाश्रमाविहितं च यत्।

पुरश्चरण के लिए धूप जलाकर प्रोक्षण आदि से संस्कार कर वैदिक मन्त्र से स्वस्तिवाचन करें, तब षडक्षर मन्त्र का जप करें। नित्य, नैमित्तिक और काम्य कर्म जो अपने आश्रम के लिए विहित हो उसे करें। अपने आश्रम के लिए निषिद्ध जो काम्य कर्म हो, उसका त्याग करना चाहिए।

लवणं च फलं वापि क्षारं क्षौद्रं रसान्तरम्।।13।।
माषमुद्गमसूराद्यान् कोद्रवांश्चणकानपि।
असद्भाषणमन्योन्यं वर्जयेदन्यपूजनम्।।14।।

नमकीन फल, मधु, खारा स्वाद युक्त भोजन एवं अन्य रस, उड़द, मसूर, मूँग, कोदो एवं चना का भक्षण न करें। परस्पर मिथ्या भाषण तथा अन्य देवता की पूजा त्याग दें।

तदेव कर्म कुर्वीत तन्मनास्तत्परायणाः।
अधःशयानः शुद्धात्मा जितक्रोधो जितेन्द्रियः।।15।।
लघुमृष्टहिताशी च विनीतः शान्तचेतनः।
दान्तस्त्रिसवनास्नायी मौनी सम्मानितं मतः[5]।।16।।

भूमि पर शयन करते हुए आत्मा को शुद्ध कर, क्रोध पर काबू पाकर, इन्द्रियों को जीतकर उसी देवता का ध्यान करते हुए, एकाग्रचित्त होकर कम मात्रा में पवित्र और शरीर के लिए पंथ्य भोजन करते हुए, विनयी, शान्त चित्त, उदात्त

---

1. घ. यदुपलभ्यते। 2. घ. उपस्तीर्याभिधार्य्यैतत्। 3. घ. पावयेद् वैष्णवैर्मन्त्रैः पुनर्मूलेन मन्त्रवित्।4. घ. यद्यत्।5. घ. सम्मानितान्तरः।

विचारों से ओतप्रोत, तीनों सन्ध्याओं, प्रातः, मध्याह्न एवं सायं में स्नान करनेवाले, मौन धारण करनेवाले तथा सम्मानित साधक पुरश्चरण के योग्य माने जाते हैं।

स्त्रीशूद्रपति तद्व्रात्यनाग्निकोच्छिष्टभाषणम् ।
अन्यत्संभाषितं[1] जिह्मभाषणं परिवर्जयेत्।।17।।

स्त्री, मूर्ख, पतित, कर्मच्युत, नास्तिक के साथ तथा जूठे मुँह से संभाषण का त्याग करें, अप्रत्यक्ष व्यक्ति के प्रति भाषण, कुटिल भाषण का त्याग करें।

सभ्यैरपि न भाषेत जपहोमार्चनादिषु।
यदि[2] भाषेत तत्काले सभ्यैः प्रस्तुतसाधकम्।।18।।
अन्यथानुष्ठितं[3] सर्वं भवत्येव निरर्थकम्।

जप, होम, अर्चना आदि के बीच सभ्यों के साथ भी बातचीत न करें। यदि इस बीच उपस्थित कार्य का साधक भाषण करते हैं, तो सभी अनुष्ठान व्यर्थ हो जाते हैं।

वाङ्मनःकर्मभिर्नित्यमस्पृहो वनितादिषु।।19।।
वर्जयेद् गीतकाव्यादिश्रवणं नृत्यदर्शनम्।
ताम्बूलं गन्धलेपञ्च पुष्पधारणमेव च।।20।।
मैथुनं तत्कथालापं तद्गोष्ठीरपि वर्जयेत्।
कौटिल्यं क्षीरमभ्यङ्गमनिवेदितभोजनम्।।21।।
असंकल्पितकृत्यं च वर्जयेन्मर्दनादिकम्।
त्यजेदुष्णोदकस्नानं सुगन्धामलकादिकम्।।22।।

वाणी, मन एवं कर्म से स्त्री आदि में अनासक्त रहें। गीत, काव्य आदि सुनना, नाच देखना, पान खाना, सुगन्धित लेप लगाना, फूल धारण करना, मैथुन, उसकी कथा, आलाप, शृंगारिक गोष्ठी, आदि भी छोड़ दें। कुटिलता, दुग्धपान, तेल मलना, देवता को समर्पित किए विना भोजन, संकल्प के विना कोई कर्म और मालिश आदि छोड़ दे। गर्म दूध तथा सुगन्धा, आँवला आदि से स्नान करना भी छोड़ दें।

शिरोरुहं[4] पञ्चगव्येन पावयेद् बहिरन्तरम्।
स्नायाच्च पञ्चगव्येन केवलामलकेन वा।।23।।

---

1. घ. असत्यभाषणं। 2. घ. यद्यत्। 3. घ. अन्यथाभाषितं।4. घं. शिरोहं, क. शिरोगं।

श्रुतिस्मृतिपुराणोक्तमन्त्रैः स्नायादनन्तरम्।
अनुतिष्ठेदनुष्ठेयं शुचिव्रततपोऽनिशम्।।24।।

शिर के बाल को पंचगव्य से भीतर बाहर पवित्र करें। पंचगव्य से अथवा केवल आँवले के रस से स्नान करें। इसके बाद वेद, स्मृति, पुराण में कहे गये मन्त्र से स्नान करें। पवित्रता और नियम से दिन रात तप करते हुए अनुष्ठान करें।

सितैकविधं हेमन्ते शाल्यन्नं स्वीयसञ्चितम्[1]।
आशुद्धानिर्हतं प्राद्यादनुतिलमाहृतं घ यत्[2]।।25।।
दधिक्षीरघृतं गव्यं ऐक्षवं गुडवर्जितम्।
तिलाश्चैव सिता मुद्गा कन्दः केमुकवर्जितम्।।26।।
नारिकेलफलं वापि कदली लवली तथा।
आम्रमामलकं चैव पनसार्द्रं हरीतकी।।27।।
व्रतान्तरप्रशस्तं च हविष्यं मन्यते बुधः।
अवैष्णवमसभ्यं वै यत्प्रशस्तं व्रतान्तरे।।28।।
त्याज्यमेवात्र तत्सर्वं यदीच्छेत् सिद्धिमात्मनः।[3]

एक एक कण करके स्वयं संचित किया हुआ श्वेत रंग के, एक प्रकार के अगहनी धान का चावल, जो सर्वथा शुद्ध हो और पैरों से मसला न गया हो, भोजन करें। गाय का दही, दूध एवं घी, गुड़ को छोड़कर ईख से प्राप्त पदार्थ, सफेद तिल, उजला मूँग, केमुक अर्थात् अरुइ अथवा पेंची से भिन्न कन्द, नारियल का फल, केला, लवली, आम, आँवला, कटहल, आदि, हर्रे तथा अन्य व्रतों में जो भोज्य पदार्थ प्रशस्त माने गये हैं वे हविष्यान्न हैं। किन्तु जो विष्णु को समर्पित न किये गये हों, भले लोग न खाते हों वे हविष्यान्न नहीं हैं। यदि अपनी सिद्धि चाहते हों, तो ऊपर कही गयी त्याज्य वस्तुओं का त्याग करें।

जपे तु[4] वैष्णवं कर्म स्थिरधीः कर्त्तुमास्थितः।
जपेच्च नियतो नित्यं त्रिकालं पुरुषोत्तमम्।।29।।

जप में विष्णु-परम्परा के कर्म करने के लिए स्थिरचित्त होकर बैठकर प्रतिदिन, नियमपूर्वक पुरुषोत्तम श्रीराम का जप प्रातः, मध्याह्न और सन्ध्या में करें।

क्षमाहिंसादयाशीलो गृहीतस्थिरनिश्चयः।।30।।
अर्चयन् राममव्यग्रो[5] यावत् षड्लक्षमादितः।[6]

1. घ. स्वीयसम्भूतम्। 2. घ. अशूद्रावहतं प्राद्यादन्यतो नाहृतं च यत्। 3. घ. सिद्धिमुत्तमाम्।4. घ. यजेत।5. घ. अर्चयन्नेव चाव्यग्रो।6. घ. षड्लक्षमादरात्।

तर्पयेच्च विधानेन दशांशं शुद्धवारिणा।।31।।
पुष्पाक्षतादियुक्तेन जले संपूज्य पूर्ववत्।
ततो बिल्वफलैः पुष्पैः पत्रैरपि हुताशने।।32।।
राममाराध्य चावाह्य पूर्ववज्जुहुयात् स्वयम्।
मधुरत्रययुक्तैश्च पद्मैर्वा पायसेन वा।।33।।
तिलैर्वान्यन्तरैरेषां ब्राह्मणान् भोजयेत् ततः।

क्षमाशील, अहिंसाव्रती और दयालु होकर दृढ़निश्चयी साधक आरम्भ से छह लाख मन्त्र जप सम्पन्न होने तक व्याकुलता का त्याग कर श्रीराम की अर्चना करता हुआ उसका दशांश तर्पण शुद्ध जल से विधानपूर्वक करे। पूर्वोक्त विधि से जल में (कलश पर) पुष्प, अक्षत आदि से श्रीराम की पूजा करे। तब अग्नि में आवाहन कर, श्रीराम की आराधना कर, बेल का फल, पुष्प और पत्र से पूजा कर तीन मधुरों से युक्त कमल फूल, पायस, तिल अथवा अन्य सामग्री से पूवोक्त विधि से हवन करें। तब ब्राह्मण भोजन कराये।

पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च।।34।।
होमो ब्राह्मणभुक्तिश्च पुरश्चरणमुच्यते।
गुरोर्ल्लब्धस्य मन्त्रस्य प्रसन्नाच्च यथाविधि।।35।।
पञ्चाङ्गोपासनं सिद्धेः पुरश्चैतदधीयते।
निष्कामानामनेनैव साक्षात्कारो भवेदिति।[1]।36।।
अथ सिद्धिः सकामानां सर्वं तन्निष्फलं भवेत्।

त्रिकाल पूजन, नित्य जप एवं तर्पण, हवन एवं ब्राह्मण भोजन को पुरश्चरण कहते हैं। सिद्ध एवं प्रसन्न गुरु से विधानपूर्वक प्राप्त मन्त्र की पंचांग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। निष्काम साधक का ईश्वर से साक्षात्कार केवल इतना ही करने से हो सकता है। सकाम साधकों को कामनाएँ सिद्ध होती है, किन्तु ईश्वर से साक्षात्कार निष्फल हो जाता है।

पञ्चाङ्गमेतत् कुर्वीत यः पुरश्चरणं बुधः।।37।।
सर्वं विजयते लोके विद्यैश्वर्य्यसुतादिभिः।
दाता भोक्ता वरिष्ठोऽयं[2] जायते ज्ञातिषु स्वयम्।।38।।
व्याख्याता लुप्तशास्त्रस्य[3] श्रुतानामेव[4] भूतले।

1. घ. भवेदपि। 2. घ. बलिष्ठोऽयं। 3. घ. श्रुतिशास्त्राणां।4. घ. श्रुतानामपि।

चिरायुर्भाग्यवान् पुत्रपौत्रसौभाग्यवान् सुखी।।39।।
निधानमय एव स्याद् धर्मस्य यशसः श्रियः।
यदिच्छति लभेदेतन्मनसापि तपोधन।।40।।
असाध्यमपि देवानां द्वीपान्तरगतं च यत्।
पञ्चाङ्गोपासनं कृत्वा यद्यदिष्टं तदाप्नुयात्।।41।।

जो सकाम ज्ञानी साधक पंचांग पुरश्चरण करते हैं, वे विद्या, ऐश्वर्य पुत्र आदि सभी वस्तुओं इस लोक में विजयी होते हैं; अपने परिचितों के बीच दाताओं और भोग करनेवालों में श्रेष्ठ होते हैं; लुप्त शास्त्रों तथा वेदों के व्याख्याता, दीर्घायु, भाग्यवान्, पुत्र-पौत्रवान् सौभाग्यशाली तथा सुखी होते हैं; धर्म, यश, लक्ष्मी के भण्डार बन जाते हैं। वे मन में भी जो इच्छा करते हैं वह भले दूसरे द्वीप में भी क्यों न हो; देवताओं के लिए भी दुर्लभ क्यों न हो उन्हें प्राप्त करते हैं। पंचांग उपासना कर जो जो इच्छा हो उसे प्राप्त करें।

आदावन्ते च मध्ये च ब्राह्मणान् भोजयेद् बहून्।
दिने दिने यथाशक्त्या राममुद्दिश्य भक्तितः।।42।।
दधिक्षीरघृतापूपव्यञ्जनैस्तृप्तिहेतुभिः।
ऐक्षवैरपि पानीयैर्नारिकेलफलैरपि।।43।।
सुपक्वकदलीसारपनसाम्रतिलैरपि।
अन्यैश्च षड्रसोपेतैः पदार्थैः भोजयेद् द्विजान्।।44।।
सुभोजितेषु विप्रेषु तत्साङ्गं सफलं भवेत्।
यो विप्रं भोजयेन्नित्यं राममुद्दिश्य भक्तितः।।45।।
दरिद्रो मन्दभाग्यो वा कुले तस्य न जायते।

आदि, अन्त और मध्य में अथवा प्रतिदिन श्रीराम को समर्पित कर भक्ति-भाव से अपनी शक्ति के अनुसार अनेक ब्राह्मण-भोजन कराएँ। तृप्त करनेवाले दही, दूध, घी, पुआ, व्यंजन, ईख से प्राप्त रस, नारिकेल का जल आदि पेय पदार्थ एवं फल जैसे पका केला, सार (मलाई), कटहल, आम आदि, तिल आदि अन्न तथा अन्य छह रसों से युक्त पदार्थों से ब्राह्मणों को भोजन कराएँ। ब्राह्मण यदि भलीभाँति भोजन कर लें, तो अंगों के साथ पुरश्चरण सफल हो

जाता है। जो प्रतिदिन श्रीराम के नाम पर ब्राह्मण भोजन कराते हैं, उसके कुल में दरिद्र अथवा मंदभाग्य का व्यक्ति कोई नहीं होता।

उपोष्य द्वादशीष्वेकां द्विजं यो भोजयेद् द्विजः।।46।।
गन्धैः पुष्पाक्षतैर्भक्त्या राममाराध्य भक्तितः।
नैव तत्कुलजातानां दुःखं दारिद्र्यमेव च।।47।।

एक भी द्वादशी तिथियों में भी व्रत कर जो द्विज चन्दन, फूल और अक्षत से भक्तिपूर्वक श्रीराम की आराधना कर द्विजों को भोजन कराते हैं,उनके कुल में जन्म लेनेवालों को इस संसार में दुःख और दरिद्रता नहीं होती है।

संक्रान्तौ पुण्ययोगे च[1] पर्वस्वपि कदाचन।
रामं यो[2] भोजयेद् विप्रं स वै नरपतिर्भवेत्।।48।।

संक्रान्ति में, अन्य पुण्यमय योग में या पर्वों (अमावस्या, पूर्णिमा, अष्टमी तथा चतुर्दशी) में श्रीराम के स्वरूप विप्रों को जो भोजन कराते हैं, वे राजा बन जाते हैं।

यः पुरश्चरणं कुर्यात् सर्वेषां स विशिष्यते।
विद्यया पुत्रपौत्रैश्च धनधान्यादिसंपदा।।49।।

जो पुरश्चरण करते हैं, वे सबमें विद्या, पुत्र, पौत्रादि तथा धन-धान्य, सम्पत्ति से सभी लोगों में विशिष्ट बन जाते हैं।

संसारे दुःखभूयिष्ठे य इच्छेत् सुखमात्मनः।
पञ्चाङ्गोपासेनैव रामं भजत भक्तितः।।50।।

संसार अनेक प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण है; इसमें जो अपना सुख चाहते हैं वे पंचांग उपासना कर श्रीराम की आराधना करें।

पञ्चाङ्गोपासनं भक्त्या पुरश्चरणमुच्यते।
एतद्धि विदुषां श्रेष्ठं संसारोच्छेदकारणम्।।51।।
नानेन सदृशो धर्मो नानेन सदृशं तपः।
नानेन सदृशः किञ्चिदिष्टार्थस्य तपोधन।।52।।

हे विद्वानों में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! भक्तिपूर्वक पंचांग उपासना को पुरश्चरण कहते हैं। यह संसार में पुनर्जन्म का नाश करता है। इसके समान कोई धर्म, तपस्या और अभीष्ट सिद्धि का दूसरा कोई मार्ग नहीं है।

1. घ. संक्रान्त्यां पुण्ययोगेषु। 2. घ. कामं च।

यदि होमे त्वशक्तः स्यात् पूजायां तर्पणेऽपि वा।।52।।
तावत्संख्याजपेनैव ब्राह्मणाभ्यसनेन[1] च।
भवेदङ्गद्वयेनैव पुरश्चरणमार्य वै।।53।।

हे आर्य! यदि हवन, पूजा और तर्पण करने की शक्ति न हो, तो उतनी संख्या में जप एवं ब्राह्मण भोजन- इन दो अंगों से ही पुरश्चरण पूरा हो जाता है।

यद्यदङ्गं विहायैतत्[2] संख्याद्विगुणो जपः।
कर्तव्यः साङ्गसिद्ध्यर्थं तदशक्तेन भक्तितः।।54।।
न चेदङ्गं विहायैतत्[3] ततश्चेष्टमवाप्नुयात्।।55।।

यदि शक्ति के अभाव में अंगों को छोड़कर पुरश्चरण किया जाता है, तो अंगों की भी सिद्धि के लिए भक्ति-भाव से जप की संख्या दोगुनी होनी चाहिए। यदि अशक्त भक्तिपूर्वक अंगों को छोड़कर भी पुरश्चरण करें, तब भी इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती है।

अङ्गहीनं भवेद्यद्यत् कर्म नेष्टार्थसाधकम्।
सर्वथा भोजयेद् विप्रान् कृतसाङ्गत्वसिद्धये।।56।।

अंगहीन कर्म जो जो होते हैं, उनसे इच्छित की सिद्धि नहीं होती है; अतः सांगत्व की सिद्धि के लिए ब्राह्मण भोजन कराना चाहिए।

विप्राराधनमात्रेण व्यङ्गं साङ्गं तदाप्नुयात्।
न्यूनातिरिक्तकर्माणि न फलन्ति मनोरथान्।।57।।

केवल ब्राह्मणों की आराधना करने से अंगहीन भी अंगसहित के समान फलदायी होता है, अन्यथा कमी-बेशी जिस कर्म में हुआ हो, उससे मनोरथ पूरे नहीं होते।

तेष्वेव यदि पूज्येष्वपर्याप्तानि सन्ति च।
अतो यत्नेन विदुषो भोजयेत् सर्वकर्मसु।।58।।

विप्रों की आराधना कर लेने पर जो अपर्याप्त अर्थात् अंगहीन पुरश्चरण कर्म हैं, वे भी फलदायी होते हैं; अतः सभी कर्मों में विद्वानों को भोजन कराना चाहिए।

---

1. घ. ब्राह्मणाराधनेन च। 2. घ. विहीयेत। 3. घ. विहीयेत।

यानि यान्यपि[1] कर्माणि हीयते द्विजभोजनैः।
निरर्थकानि तानि स्युः पथि बीजाङ्कुरा इव।।59।।

जो कोई कर्म ब्राह्मण-भोजन के अभाव में च्युत हो जाते हैं, वे रास्ते पर गिरे बीज के अंकुर के समान निरर्थक हो जाते हैं।

तस्यैव स्तुतिलक्षेषु शस्यते बहिरर्चनम्।
रामाराधनकोटिभ्यः स ध्यानजप उत्तमः।।60।।

लाखों स्तुतियों के द्वारा की गयी अर्चनाओं में बाह्यार्चन प्रशस्त है और श्रीराम की आराधना की अनेक श्रेणियों में ध्यान के साथ जप उत्तम है।

मन्त्रार्थलोचनात्मायं स्वयमेवेष्टसाधकः।
योऽर्चयेद् बहुशो[2] नित्यं रामं तेष्वेव चिन्तयन्।।61।।
इह भुक्तिश्च मुक्तिश्च भवेत्तस्य न संशयः।।62।।

मन्त्रार्थ रूपी आँखों वाला, इष्टसाधक, स्वयं ही, अनेक प्रकार से, प्रतिदिन, मन्त्रों में हीं श्रीराम की सत्ता का चिन्तन करते हुए, आराधना करते हैं, उन्हें संसार में भोग और जीवनान्त में मोक्ष उन्हें मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पुरश्चरणविधिर्न्नाम षोडशोऽध्यायः।

अथ सप्तदशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथाभिषेकं वक्ष्यामि दीक्षाविधिमनुत्तमम्।
उपासनाशतेनापि विना येन न सिद्ध्यति।।1।।

अगस्त्य बोले- 'अब मैं दीक्षा विधान के अन्तर्गत अभिषेक की विधि बतलाता हूँ, जिसके विना सैकड़ो उपासना ... से भी प्रयोजन की सिद्धि नहीं होती है।'

1. घ. यान्यनल्पानि। 2. घ. विदुषो।

उपासकस्तु शुद्धात्मा गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
स्वचित्तवित्तकायैश्च भक्तिश्रद्धासमन्वितः।।2।।

साधक शुद्ध चित्त से भक्ति और श्रद्धापूर्वक अपने तन, मन और धन से गुरु को यत्नपूर्वक सन्तुष्ट करे।

यदा ददाति सन्तुष्टः प्रसन्नवदनो मनुम्।
स्वयमेव तथा चैवमिति कर्त्तव्यताक्रमः।।3।।

गुरु संतुष्ट होकर प्रसन्न मुख से स्वयं वर प्रदान करनेवाला मन्त्र शिष्य को देते हैं, यह कर्तव्य का क्रम है।

विशुद्धकाले देशेषु शुद्धात्मा नियतो गुरुः।
संकल्प्योपोष्य कर्तव्यमङ्कुरारोपणं मुने।।4।।

हे मुने! पवित्र समय में पवित्र स्थलों पर निर्मल चित्त वाले तथा नियमों का पालन करते हुए गुरु संकल्प एवं उपवास कर बीजारोपण करें।

कुर्य्यान्नान्दीमुखश्राद्धमादौ च स्वस्तिवाचनम्।
स्वगृह्योक्तप्रकारेण[1] तदेतद् विदधीत वै।।5।।

सबसे पहले अपने गृह्यसूत्र की विधि से नान्दीमुख श्राद्ध करे, तब स्वस्तिवाचन करें। तब यह कर्तव्य करना चाहिए।

मधुमासे भवेद् दुःखं माधवे रत्नसञ्चयः।
मरणं भवति ज्येष्ठे आषाढे बन्धुनाशनम्।।6।।
समृद्धिः श्रावणे न्यूनं भवेद् भाद्रपदे क्षयः।
प्रजानामाश्विने मासे सर्वतः शुद्धिमेव हि।।7।।
ज्ञानं स्यात् कार्तिके सौख्यं मार्गशीर्षे भवेदपि।
पौषे ज्ञानक्षयो माघे भवेन्मेधाविवर्द्धनम्।।8।।
फाल्गुने तु समृद्धिः स्यान्मलमासं विवर्जयेत्।

चैत्र मास में दुख, वैशाख में रत्न-संग्रह, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ में बन्धु-नाश, श्रावण में अल्प समृद्धि, भाद्रपद में नाश, आश्विन मास में सन्तति की शुद्धि, कार्तिक मास में ज्ञान, अग्रहण में सुख, पौष में ज्ञान का क्षय तथा माघ मास में

1. घ. विधानेन।

दीक्षा लेने से ज्ञान-वृद्धि तथा फाल्गुन में समृद्धि की प्राप्ति होती है। दीक्षा-ग्रहण में मलमास का त्याग करना चाहिए।

रवौ गुरौ सिते सोमे कर्त्तव्यं बुधशुक्रयोः।।9।।

शुक्लपक्ष में रवि, गुरु, सोम, बुध और शुक्र को दीक्षा लेनी चाहिए।

अश्विनीरेवती[1] स्वाती विशाखा हस्त एव च।[2]

पुष्यं शतभिषक् चैव श्रवणा च धनिष्ठिका।[3]।10।।

ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेव कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम्।

अश्विनी, रेवती, स्वाती, विशाखा, हस्त, पुष्य, शतभिषा, श्रवणा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा एवं उत्तरात्रय इन नक्षत्रों में मन्त्राभिषेक करना चाहिए।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा।।11।।

द्वादश्यामपि कर्त्तव्यं षष्ठ्यामपि विशेषतः।[4]

त्रयोदशी च नवमी[5] प्रशस्ताः सर्वकामदाः।।12।।

पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, द्वादशी, षष्ठी, त्रयोदशी और नवमी तिथियाँ प्रशस्त हैं, ये सभी कामनाओं की पूर्ति करती हैं।

पञ्चाङ्गशुद्धदिवसे सोदये शशितारयोः।

गुरुशुक्रोदये शुद्ध-लग्ने द्वादशशोधिते।।12।।

चन्द्रतारानुकूले च शस्यते सर्वकर्मसु।

तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इन पांचों अंगों की से पवित्र दिन में चन्द्रमा और नक्षत्रों के उदित रहने पर, गुरु एवं शुक्र के उदित रहने पर, शुद्ध लग्न एवं द्वादश लग्नों का शोधन कर चन्द्र एवं नक्षत्र के अनुकूल समय में दीक्षा सभी कर्मों में प्रशस्त होती है।

सूर्यग्रहणकाले तु नेदमन्वेषणं भवेत्।।13।।

सूर्यग्रहणकालेन समानो नास्ति कश्चन।

तत्र यद्यत् कृतं सर्वमनन्तफलदं भवेत्।।14।

न मासतिथिवारादिशोधनं सूर्य्यपर्वणि।

ददातीष्टं गृहीतं यत् तस्मिन् काले मुनीश्वर।।15।।

1. घ. रोहिणी। 2. घ. हस्तभेषु च। 3. घ. में अनुपलब्ध।4. घ. में अनुपलब्ध। 5. घ. दशमी।

सिद्धिर्भिवति मन्त्रस्य विनायासेन वेगतः।
अतस्तत्रैव रामस्य मन्त्रतीर्थाभिषेचनम्।।16।।

सूर्यग्रहण के समय में इन योगों का अन्वेषण नहीं किया जाता है। सूर्यग्रहण के समान कोई काल नहीं है। उस समय में जो कर्म किये जाते हैं, उनसे अनन्त फल मिलता है। मास, तिथि, दिन आदि की अपेक्षा सूर्यग्रहण में नहीं होता। इस समय जो मन्त्र-ग्रहण किया जाता है, वह सभी इच्छित वस्तुओं को पूरा करता है। विना प्रयास का ही वह मन्त्र सिद्ध हो जाता है; अतः सूर्यग्रहण के समय में ही श्रीराम के मन्त्ररूपी तीर्थ से अभिषेक करना चाहिए।

कतव्यं सर्वयत्नेन मन्त्रसिद्धिमभीप्सुभिः।
चतुर्भिर्वर्णकैः सम्यक् नीलपीतसितासितैः।।17।।
पूर्ववन्मण्डलं कृत्वा तत्र धान्याञ्जलिद्वयम्।
नारिकेलफलोपेतं माङ्गलैः परितोज्ज्वलम्।
निधाय कलशं तत्र तीर्थतोयसुपूरितम्।।18।।
[1]वेष्टितं वस्त्रयुग्मेन पञ्चरत्नसमन्वितम्।
आम्राश्वत्थप्रसूताभिः शाखाभिरुपशोभितम्।।19।।
नारिकेलफलोपेतं मण्डलैः परितोज्ज्वलम्।
सर्वोत्सवसमायुक्तं कृत्वा तत्रार्चयेद्धरिम्।।।20।।

मन्त्र सिद्धि की इच्छा रखनेवाले सभी प्रकार के उपाय करें। नीले, पीले, उजले एवं काले इन चारों रंगों के सुगन्धित पदार्थों से पूर्वोक्त विधि से यन्त्र का निर्माण कर बीच में दो अंजलि धान रखकर उस पर नारियल के फल से युक्त तथा मंगलमय पदार्थों को उसके चारों ओर रखकर कलश स्थापित कर तीर्थ के जले से भली भाँति भर दें। उसमें पंचरत्न डालकर जोड़ा वस्त्र से लपेट दें। कलश को आम और पीपल की शाखाओं से सुसजित करें। नारिकेल के फल से भी सुज्ञित कर दीप जलाकर तथा इसे चारो ओर से घेरकर सभी प्रकार का उत्सव करते हुए वहाँ श्रीहरि की अर्चना करें।

ऋग्यजुःसामसूक्तैश्च स्मार्तैः पौराणिकैरपि।
मन्त्रैरागमिकैश्चैव वैष्णवैर्देवमर्चयेत्।।21।।

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद के सूक्तों से स्मृति और पुराणों तथा आगम के विष्णु-मन्त्रों से देवता की अर्चना करें।

1. घ. यहाँ से चार चरण घ. में अनुपलब्ध।

वरयेद् ब्राह्मणान् वासः कुण्डलाङ्गुलिभूषणैः।
श्रावयेत् तैः सुसूक्तानि मन्त्रान् विष्णूत्सवे मुने।।।22।।

इसके बाद वस्त्र, कुण्डल, अंगूठी और अन्य आभूषणों से ब्राह्मणों का वरण करें और उनसे इस विष्णु के समारोह में सुन्दर सूक्तों को सुनाएँ।

गुरुः पूर्वोक्तविधिना भूतशुद्ध्याद्यमाचरेत्।
न्यासजालं प्रविन्यस्य पूजयेत् तत्र पूर्ववत्।।23।।
पूजनीयैश्च पूर्वोक्तसाधनैः पुरुषोत्तमम्।
पूर्वोक्तनृत्यगीताद्यैरुत्सवं तत्र कारयेत्।।24।।

गुरु पूर्वोक्त विधि से भूतशुद्धि आदि करें तथा सभी न्यासों को कर के वहाँ पूर्वोक्त विधि से पूजन करें। पूर्वोक्त पूजा सामग्रियों से विष्णु की पूजा करें तथा पूर्वोक्त नृत्य, गीत, वाद्य आदि से वहाँ उत्सव करें।

पुण्यस्त्रीभ्यो गृहस्थेभ्यो दद्यात् सुबहुविस्तरम्।
गन्धपुष्पाम्बु ताम्बूलं सद्वासो भूषणादिकम्।।25।।
भोजनञ्चान्नपानीयैरन्येभ्योऽपि तपोनिधे।

इस समारोह में पवित्र स्त्रियों और गृहस्थों को चन्दन, पुष्प, जल, पान, सुन्दर वस्त्र, गहने, भोजन, अन्न, पेय पदार्थ आदि दें तथा दूसरे को भी ये वस्तुएँ प्रदान करें।

एवं तत्रोत्सवं कृत्वा रात्रौ जागरणं चरेत्।।26।।
एवं दिवा च रात्रौ च त्रिकालं पूजयेत् प्रभुम्।

इस प्रकार उत्सव कर रात्रि में जागरण करें। इस तरह दिन और रात्रि में तीनों समय प्रभु का पूजन करें।

षट्सहस्रं जपेन्मन्त्रं[1] पूजान्तेऽहर्निशं मुने।।27।।
परेऽहनि तथा प्रातः पूर्ववत्सर्वमाचरेत्।

दिन-रात पूजा के अन्त में छह हजार मन्त्र का जप करें। दूसरे दिन भी प्रातःकाल में पूर्व दिन के अनुसार ही सारे कर्म करें।

सम्पूज्य विधिवद्राममग्निकार्यमथाचरेत्।।28।।
पूर्ववत् कुण्डमुत्खाय कुर्य्यात् तत्रापि मण्डलम्।
तत्राप्यग्निं समाधाय रामं तत्रार्चयेत् प्रभुम्[2]।।29।।

---

1. घ. जपेत् तत्र।   2. घ. हरिम्।

साङ्गावरणमावाह्य पूर्ववच्च यथाविधि।
तदग्निस्थापनाद्यं च सर्वं पूर्ववदाचरेत्।।30।।
दधिदुग्धाज्यसंयुक्तैर्दशांशं जुहुयात् तिलैः।
हुत्वा पूर्णाहुतिं कृत्वा ततस्तं कलशेऽर्चयेत्।।31।।
ततो दिक्षु बलिं दत्वा कृत्यमेतत् समाचरेत्।

श्रीराम की विधिवत् पूजाकर तब हवन कार्य आरम्भ करें। पूर्वोक्त विधि से कुण्ड खनकर वहाँ भी यन्त्र बनाएँ। वहाँ अग्नि-स्थापन कर प्रभु श्रीराम की अर्चना करें। पूर्वोक्त विधि से अंग देवता और आवरण देवता का आवाहन कर विधिपूर्वक अर्चना करें और अग्निस्थापन आदि भी पूर्वोक्त विधि से करें। दही, दूध और घी मिलाकर तिल से जप का दशांश हवन करें। हवन कर पूर्णाहुति देकर तब कलश पर प्रभु की अर्चना करें। तब सभी दिशाओं में दिक्पालों को बलि देकर आगे वर्णित कार्य करें।

ततः शिष्यमुपानीय भक्तिनम्रमकल्मषम्।
प्राणानायम्य[1] विधिवद् भूतशुद्धिं विधाय च।।32।।
सुरास्त्वामितिमन्त्रेण[2] बहुभिर्ब्राह्मणैः सह।

---

1. घ. प्राणायमञ्च।
2. 'सुरास्त्वां' इत्यादि मन्त्र इस प्रकार है-

सुरास्त्वामभिसिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः। वासुदेवो जगन्नाथस्तथासङ्कर्षणो विभुः।। प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च भवन्तु विजयाय ते। आखण्डलोग्निर्भगवान् यमो वै निर्ऋतिस्तथा। वरुणः पवनश्चैव धनाध्यक्षस्तथा शिवः। ब्रह्मणासहितश्शेषो दिक्पालाः पान्तु ते सदा।। कार्तिर्ल्लक्ष्मीर्धृतिर्मेधा पुष्टिः श्रद्धा क्रिया मतिः। बुद्धिर्ल्लज्जावपुः शान्तिस्तुष्टिः कान्तिश्च मातरः।। एतास्त्वामभिसिञ्चन्तु देवपत्न्यस्समागताः। आदित्यश्चन्द्रामाभौमो बुधजीवसितार्क्कजाः। ग्रहास्त्वामभिसिञ्चन्तु राहुः केतुश्च तर्प्पिताः। देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः। ऋषयो मनवो गावो देवमातर एव च।। देवपत्न्यो द्रुमा नागा दैत्याश्चाप्सरसां गणाः। अस्त्राणि सर्वशस्त्राणि राजानो वाहनानि च।। औषधानि च रत्नानि कालस्यावयवाश्च ये। सरितस्ससागराः शैलास्तीर्थानि च ह्रदा नदाः। एतेस्त्वामभिसिञ्चन्तु सर्वकर्मार्थसिद्धये।। **—विद्यापति कृत दुर्गाभक्तितरंगिणी का पाठ।**

अभिषिञ्चेच्च तन्मूर्ध्नि तदेतत्कलशोदकम्।।33।।
नारायणः स्वयं रामः शिष्ये संनिदधीत वै।
सर्वगः सर्वतोऽप्यस्ति प्रसीदति दयानिधिः।।34।।
इति संस्मृत्य संस्मृत्य तज्जलैरभिषेचयेत्।

इसके बाद भक्ति के कारण विनीत एवं निष्पाप शिष्य को लाकर विधिवत् प्राणायाम कराकर भूतिशुद्धि कर 'सुरास्त्वां.' इत्यादि मन्त्र से अनेक ब्राह्मणों के साथ इस कलश के जल से उसके मस्तक पर अभिषेक करें। स्वयं नारायण श्रीराम इस शिष्य में सन्निहित हों, जो सर्वत्र गमन करनेवाले हैं तथा सभी ओर से वे विराजमान हैं तथा वे दयानिधि प्रसन्न हो रहे हैं'- ऐसा बार-बार स्मरण कर कलश जल छिड़कें।

परिधाप्य च वासश्च चन्दनादि विलिप्य च[1]।।35।।
कुण्डले चाङ्गुलीयञ्च धारयित्वा न्यसेत् ततः।
वैष्णवीं मातृकां चैव तत्त्वन्यासञ्च पूर्ववत्।।36।।
तन्मूर्तिपञ्जरन्यासमृष्यादिन्यासमेव , च।
पूर्ववद् विधिवच्छिष्यतनावेवं प्रविन्यसेत्।।37।।

तब शिष्य को वस्त्र पहनाकर चन्दनादि का लेप कर दोनों कानों में कुण्डल तथा अंगूठी पहना कर पूर्वोक्त विधि से तत्त्वन्यास तथा वैष्णव-मातृका का न्यास करें। श्रीराम का मूर्तिपंजर-न्यास कर ऋष्यादि-न्यास भी पूर्वोक्त विधि से शिष्य के शरीर पर करें।

ततस्तच्छिरसि स्वस्य हस्तं दत्वा शतं जपेत्।
अष्टोत्तरं ततो मन्त्रं दद्यादुदकपूर्वकम्।।38।।
प्रसन्नवदनस्तस्मै शिष्याय मुनिपुङ्गव।
स्वतो ज्योतिर्मयीं विद्यां गच्छन्तीं भावयेद् गुरुः।।39।।
आगतां भावयेच्छिष्यो धन्योऽस्मीति विशेषतः।।40।।

तब शिष्य के शिर पर हाथ रखकर गुरु स्वयं एक सौ आठ बार जप करें तब पहले जल देकर प्रसन्न होकर शिष्य को मन्त्र दें साथ ही गुरु यह भावना करें कि यह ज्योतिःस्वरूप विद्या स्वयं शिष्य के प्रति जा रही है। शिष्य भी यह भावना करें कि विद्या मेरे प्रति आ रही है और इससे मैं धन्य हो गया हूँ।

1. घ. चन्दनाद्यनुलिप्य च।

कृतकृत्यस्ततः शिष्यस्तस्मै सर्वं निवेदयेत्।
यच्च यावच्च यद्भक्त्या गुरुवे हृष्टचेतनः।।41।।
गोभूहिरण्यं विपिनं गृहं क्षेत्रादिकं मुने।
न चेदर्द्धं तदर्द्धं वा दशांशमपि वापि वा।।42।।
अक्लेशादन्नवस्त्रादि दद्याद् वित्तानुसारतः।।43।।
प्रकारान्तरमालम्ब्य गुरुं यत्नेन तोषयेत्।
गुरुपुत्रकलत्रादीन् तोषयेद् बहुभक्तितः[1]।।44।।
अर्हणादिश्च बहुभिर्भक्त्याच्छादनभूषणैः।

तब शिष्य चेतना का दर्शन कर कृतकृत्य होकर प्रसन्न चित्त से गुरु को भक्तिपूर्वक सब कुछ गाय, भूमि, सोना, वन, घर, खेत आदि समर्पित करे। यदि न हो, तो इसका आधा, आधे का आधा या दशांश भी दे। स्वयं कष्ट न कर धन के अनुसार अन्न वस्त्र आदि गुरु को समर्पित करें। अन्य विधि से भी यत्नपूर्वक गुरु को सन्तुष्ट करें। गुरु की पत्नी उनके पुत्र आदि को भी भक्तिभाव से वस्त्राभूषण देकर उनकी पूजा कर सन्तुष्ट करें।

एवमुक्तप्रकारेण गुरवे दत्तदक्षिणः।
कृतकृत्यं तथात्मानं मत्वा विप्रांश्च भोजयेत्।।45।।
तेभ्यश्च[2] दक्षिणां दत्त्वा सर्वं तत्प्रतिपूजयेत्[3]।
ब्राह्मणाशीर्वचोभिश्च गुर्वाशीर्भिः समेधितः।।46।।
विसर्जयेच्च गुर्वादीन् ततो भुञ्जीत मन्त्रवित्।

इस प्रकार ऊपर कही गयी विधि से गुरु को दक्षिणा देकर स्वयं को कृतकृत्य मानकर ब्राह्मण भोजन कराएँ। उन्हें दक्षिणा देकर उनका अभिवादन करें। इस प्रकार ब्राह्मणों और गुरु के आशीर्वाद से पवित्र होकर गुरु आदि को विदा करें तब साधक स्वयं भोजन करें।

एवं लब्धमनुर्विप्रः कृतार्थः स्यान्न संशयः।।47।।
तदादि संध्यां कुर्वीत नियतो गुर्वनुज्ञया।
सायं प्रातश्च मध्याह्ने रामं ध्यात्वा मनुं जपेत्।।48।।

1. घ. बहुभिः स्वयम्। 2. घ. तेभ्योऽपि। 3. घ. परिपूरयेत्।

इस प्रकार मन्त्र प्राप्त कर वह विप्र होकर धन्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। इसके बाद वह गुरु की आज्ञा से सायं, प्रातः और मध्याह्न में सन्ध्या कर श्रीराम का ध्यान कर मन्त्र का जप करें।

जलमस्त्रेण संशोध्य कवचेनावगुण्ठ्य च।
चक्रीकृत्य जलं सम्यक् दर्भमूलेन मन्त्रवित्।।49।।
आवाहनादिभुद्राभिस्तीर्थमावाह्य पूजयेत्।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे।।50।।
तेन सत्येन मे देव तीर्थं देहि दिवाकर।
गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति।।51।।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु।

जल को अस्त्र-मन्त्र से शोधित कर कवच मन्त्र से उसे ढँककर चक्रीकरण कर कुश की जड़ से आवाहन आदि की मुद्राओं से तीर्थ का आवाहन कर साधक तीर्थों की पूजा इस मन्त्र से करें-

हे देव सूर्य! "सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के गर्भ में जो तीर्थ हैं, जिन्हें सूर्य के किरण स्पर्श करते हैं, इस शपथ के कारण वे तीर्थ मुझे दें। हे गँगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु, कावेरी इस जल में आप सब निवास करें।"

एवमावाह्य चाराध्य विधिवत् तज्जलं मुने।।52।।
आदायाञ्जलिना सम्यक् जपेन्मालामनुं सकृत्।
जलं दक्षिणहस्तस्थं सव्यहस्ते विनिक्षिपेत्।।53।।
तन्निःसृताम्बुना मूर्ध्नि सिञ्चेन्मालामनुं स्मरन्।
दशाक्षरेण तच्छेषमभिमन्त्र्य जलं क्षिपेत्।।54।।

इस प्रकार तीर्थो का आवाहन कर उनकी आराधना विधिपूर्वक करके उस जल को अंजलि में लेकर माला-मन्त्र का एक बार जप करें। तब दाहिने हाथ के जल को बाये हाथ में लें तब माला-मन्त्र का जप करते हुए बायें हाथ से गिरते हुए जल को मस्तक पर छिड़के। अन्त में दशाक्षर मन्त्र से शेष जल को चारो ओर छिड़क दें।

पुनरञ्जलिमादाय जलं मूर्ध्नि तु तत् क्षिपेत्।[1]
ततो रामोऽहमस्मीति गायत्रीं नियतो जपेत्।।55।।

फिर अंजलि से जल लेकर उसे अपने मस्तक पर छिड़कें। तब 'मैं राम हूँ' यह भावना कर नियमपूर्वक राम-गायत्री का जप करें।

1. घ. जलमूर्द्धं त्रिरुत्क्षिपेत्। इसके बाद क. में 'मण्डलस्थाय रामाय पाद्यार्घ्यं कल्पयाम्यहम्' यह अधिक है, जो अप्रासंगिक है।

जन्मप्रभृति यत्पापं दशभिर्याति सञ्चितम्।
पुराकृतं शतेनैव सहस्रेण जपेन वा।।56।।

पूर्वकाल में जन्मकाल से लेकर दश इन्द्रियों द्वारा जो पहले किये गये पाप संचित हैं, वे सौ बार या हजार बार जप से नष्ट हो जाते हैं।

पदं[2] दशरथायेति विद्महेति पदं ततः।
सीतापदं समुद्धृत्य वल्लभाय ततो वदेत्।।57।।
धीमहीत्यपि तन्नोऽथ रामश्चापि प्रचोदयात्।
एषा स्याद् रामगायत्री भक्तानां भुक्तिमुक्तिदा।।58।।

सबसे पहले 'दशरथाय' यह पद बोलें। तब 'विद्महे' बोले तब 'सीता' पद कहकर तब 'वल्लभाय' कहें। 'धीमहि' ऐसा कहकर 'तन्नो' 'रामः' और 'प्रचोदयात्' कहें। यह रामगायत्री है, जो भक्तों को भोग और मोक्ष प्रदान करती है।

पुरश्चरणमस्याश्च चतुर्लक्षजपावधि।
यच्च यावच्च पूजादि सर्वं पूर्ववदाचरेत्।।59।।

इसका भी पुरश्चरण चार लाख जप का होता है। जो पूजा होगी, वह पूर्वोक्त विधि से करें।

ओमादिरेषा गायत्री मुक्तिमेव प्रयच्छति।
मायादिरपि वैदुष्यं रमादिश्च श्रियं मुने।।60।।
मदनेनापि संयुक्ता सम्मोहयति मेदिनीम्।।
अनयाराधितो रामः सर्वाभीष्टं प्रयच्छति।।61।।

इसके आदि में ॐ लगाकर जप करने से मुक्ति ही मिलती है। माया बीज (ह्रीं) आदि में लगाने से वैदुष्य तथा लक्ष्मी बीज (श्रीं) से धन प्राप्ति होती है। कामबीज (क्लीं) लगाकर जप करने से वह पूरी पृथ्वी को सम्मोहित कर लेता है। इस प्रकार पूजित श्रीराम सभी मनोरथ पूर्ण करते हैं।

तर्पयेच्च ततो मूलमन्त्रोच्चारणपूर्वकम्।
[2]रामं तर्पयामि नमः पीठदेवादिपूर्वकम्।।62।।
चत्वारिंशद्धरीनादौ सीतादींश्चतुरः क्रमात्।

इसके बाद मूलमन्त्र का उच्चारण करते हुए 'रामं तर्पयामि नम' ऐसा कहते हुए पीठस्थ अन्य देवों का भी इसी प्रकार तर्पण करें। पहले चालीस देवताओं का तर्पण (हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न,

1. घ. वदेद्। 2. घ. यहाँ दो श्लोक अनुपलब्ध हैं।

जाम्बवान्, धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्द्धन, अकोप, धर्मपाल और सुमन्त। नल, नील, गवय, गवाक्ष, गन्धमादन, सुरभि, मैन्द और द्विविद। वसिष्ठ, वामदेव, जाबालि, गौतम, भरद्वाज, कौशिक, वाल्मीकि और नारद। दशरथ, कौशल्या, कैकेयी, सुमित्रा। राम लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न।) कर सीता आदि चार (सीता, माण्डवी, उर्मिला एवं श्रुतिकीर्ति) देवों का क्रमिक तर्पण करें।

हृदादींस्तर्पयेत्पश्चान्मध्ये मध्ये रघूद्वहम्।
नाममन्त्रैर्भवेदेवं चत्वारिंशच्छतद्वयम्।।63।।
कृत्वैवं प्रत्यहं सम्यक् त्रिसन्ध्यन्तु यथाविधि।
स्तुवंश्च प्रणमेद् रामं यथाशक्ति मुनीश्वर।
कृतकृत्यो भवेन्मन्त्री सत्यं सत्यं न चान्यथा।।64।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! हृत् आदि को तर्पण बाद में करें; बीच-बीच में श्रीराम को तर्पण करें। इस प्रकार नाम मन्त्रों से यह तर्पण दो सौ चालीस बार होगा। इस प्रकार सम्यक् रीति से प्रतिदिन तीनों सन्ध्याओं में विधानपूर्वक कृत्य सम्पन्न कर तथा श्रीराम की स्तुति करते हुए, उन्हें यथाशक्ति प्रणाम करें। इस प्रकार साधक कृतकृत्य हो जाता है, यह सत्य है, सत्य है इसमें सन्देह नहीं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये पूजाविधानं नाम सप्तदशोऽध्यायः।

अथ अष्टादशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथ पूजाविधानानां लक्षणान्यभिदध्महे।
अम्बुचन्दनपुष्पाणि धूपदीपनिवेदनम्[1]।।1।।
हरेरेतानि[2] मुख्यानि साधनानि मुनीश्वर।
स्थलमप्यर्घ्यपात्राणि शङ्खं चैषाञ्च लक्षणम्।।2।।

अगस्त्य बोले— हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण, अब मैं पूजा-सामग्रियों के स्वरूप बतलाता हूँ। जल, चन्दन, फूल, धूप एवं दीप का समर्पण पूजा के मुख्य साधन हैं तथा पूजा-स्थल, अर्घ्यादिपात्र तथा शंख ये जो साधन हैं, उनका लक्षण मैं कहता हूँ।

---

1. घ. धूपदीपौ निवेदयेत्। 2. क. हविरेतानि।

अन्यानिवेदितं शुद्धं प्रकृतिस्थं सुशीतलम्।
हेमादिकलशान्तस्थं पूजासाधनमिष्यते।।3।।

जो जल दूसरे देवता को न चढाया गया हो तथा कलश में रखा गया हो ऐसा शुद्ध अपने स्वभाव के अनुरूप हो तथा शीतल हो वैसा जल पूजा की सामग्री है।

अनन्यार्पितपूर्वाणि गन्धवन्ति सितानि च।
पीतान्यपि मनोज्ञानि छिद्रेण रहितानि च।।4।।
पुष्पाण्येवात्र शस्यन्ते न चेत् सर्वं निरर्थकम्।

जो पुष्प पूर्व में दूसरे देवता को न चढ़ा हो, पवित्र, सुगन्धित, श्वेत अथवा पीत, सुन्दर, छिद्र से रहित हो वे ही फूल इस पूजन में प्रशस्त हैं, नहीं तो सारा व्यर्थ है।

चन्दनं मलयोत्पन्नमनाघ्रातं सुशीतलम्।।5।।

मलय पर्वत से उत्पन्न श्रीखण्ड चन्दन, जो सूँघा गया न हो और शीतल हो, प्रशस्त है।

कर्पूरागरुकस्तूरीहिमान्यादिसुवासितम्[1]।
पूजायां शस्यते धूपस्ताम्रकांस्यादिनिर्मिते।।6।।
पात्रे वा द्विदले भुग्ननाले पद्माकृतौ मुने।
सारांगारविनिक्षिप्ते गुग्गुल्वगरुवृक्षजे।।7।।
निर्यासादुत्थितैर्धूपैर्गन्धद्रव्यैस्तथोद्गतैः।
अनन्यार्पितगन्धोऽयं शस्यतेऽर्चनकर्मणि।।8।।

कर्पूर, अगरु, कस्तूरी, हिमानी आदि से सुगन्धित किया हुआ धूप पूजा में प्रशस्त है। ताँबा, कांसा आदि से निर्मित कमल की आकृति वाला, जिसमें दो नाल लगे हों और दो पत्र भी हों, इस प्रकार के पात्र में सारिल लकड़ी का अंगार डाला गया हो, गुग्गुल या अगुरु के वृक्ष से उत्पन्न निर्यास से उठते हुए धूपों या सुगन्धित द्रव्यों से भी बना जो धूप दूसरे देवता को अर्पित नहीं किया गया हो, वह अर्चना के कर्म में प्रशस्त है।

दीपोऽपि पूर्ववत्पात्रे मण्डलाकारनिर्मितः[2]।
प्रतिपात्रं प्रदीप्तश्च वर्त्त्या गव्यघृतादिना।।9।।

1. घ. हिमाभादिसुभाषितम्। 2. घ. मण्डलाकारकारितैः।

अन्यानिवेदितः पूजाकर्मण्येव प्रशस्यते।

दीप भी पूर्वोक्त स्वरूप के पात्र में गोलाकार में निर्मित और प्रत्येक दीप गाय के घी से जलते हुए दीप पूजा कर्म में प्रशस्त होते हैं, यदि वह दूसरे देवता को समर्पित न किया गया हो।

पायसापूपसंपक्वफलोपेतं हविर्मुने[1]।।10।।
शुद्धं च षड्रसोपेतं अनन्यार्पितमिष्यते।
नैवेद्यमर्चनायान्तु सताम्बूलं निवेदयेत्।।11।।

खीर, पुआ, पकवान, फल जो शुद्ध हो और छह रसों से परिपूर्ण हो और दूसरे देवता को अर्पित न किया गया हो, वह नैवेद्य पान के साथ पूजा में अर्पित करना चाहिए।

स्थलं प्रासादविपिननदीतीरगतं[3] समम्।
चतुरस्रं चतुर्हस्तं हस्तोन्नतसुवेदिकम्।।12।।
चन्द्रातपपताकादितोरणैः प्रोल्लसच्छविः।
विविक्तं च विशेषेण शस्यतेऽर्चनकर्मणि।।13।।

पूजा-स्थल के रूप में मकान, जंगल, नदी का तट जो समतल, चौकोर, चार हाथ लम्बाई-चौड़ाई वाला, एक हाथ ऊँची वेदी से युक्त, चँदोवा, पताका, बंदनवार आदि से शोभित एकान्त स्थल पूजा-कर्म में प्रशस्त है।

[3]पात्राणि ताम्रहेमादिनिर्मितानि जलान्तरे।
जलजानीव निर्माय पाद्यार्घ्यर्हणादिषु।।14।।
उपचाराणि शुद्धानि शस्यतेऽत्र विशेषतः।

पाद्य, अर्घ्य आदि कार्यों के लिए ताँबा, सोना आदि का पात्र जो जल में कमल के समान स्वच्छ हो प्रशस्त होते हैं। पूजन-कर्म में सभी शुद्ध साधन प्रशस्त होते हैं।

शङ्खो नाम सदावर्तः पृष्ठमध्यसुनालकः।।15।।
सितैश्च पूरितो नीरैः शस्यतेऽर्चनकर्मणि।

सदावर्त नाम का शंख जिसकी पीठ और मध्य भाग में नाल का चिह्न हो वह शुभ्र जल से पूर्ण पूजा-कर्म में प्रशस्त है।

एतान्यन्यानि पूजायां साधनानि बहूनि च।।16।।

1. घ. पायसं पूपमन्नं च सघृतं सह शर्करम्। 2. घ. नदीतटगतं। 3. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध हैं।

तान्युत्तमानि मध्यानि न्यूनानि विधिमन्ति वै।
स्वस्थः समर्थः कुर्वीत चोत्तमैरेव साधनैः।।17।।
मध्यमो मध्यमेनैव न्यूनो न्यूनैस्तपोधन।
आपन्नश्चेत् समर्थोऽपि न्यूनैरेव समाचरेत्।।18।।
पूजाकर्मविशेषेण देशकालानुसारतः।
यथाशक्ति यथान्यायं यथा लोकाविगर्हितम्।।19।।

ऊपर कहे गये अथवा अन्य भी बहुत प्रकार के साधन पूजा में होते हैं, वे उत्तम, मध्यम और न्यून प्रकार के होते हैं। जो साधक स्वस्थ हो, समर्थ हो वे उत्तम साधन से पूजा करें। मध्यम कोटि के साधक मध्यम प्रकार के साधन से पूजा करें तथा न्यून साधक न्यून साधनों से करें। समर्थ भी यदि किसी विपत्ति में हो तो न्यून साधनों से ही पूजा करें। पूजा-कर्म के वैशिष्ट्य से देश एवं काल के अनुसार शक्ति तथा औचित्य के अनुसार ऐसे साधनों का व्यवहार करें, जिसे लोक में निन्दित नहीं माना जाता हो।

एकेन वान्यत्संकल्पः कुर्यादेवार्चनं तथा।[1]
मुद्राश्च[2] **दर्शयेद्यत्नाद् देवसान्निध्यकारिणः।।20।।**
दर्शितास्तास्तु देवानां मोदकाः द्रावकाः[3] **मुने।**
दर्शनीयाः सुतीक्ष्णातो देवतायागकर्मणि।।21।।

अथवा एक ही व्यक्ति दोनों कार्य अर्थात् संकल्प और पूजा करें। देवता के साथ नजदीकी साधनेवाली मुद्राएँ यत्नपूर्वक दिखाएँ। दिखाई गयी मुद्राएँ देवताओं को प्रसन्न तथा द्रवित करतीं हैं। हे सुतीक्ष्ण! अतः देवताओं के याग कर्म में मुद्राएँ दिखानी चाहिए।

आवाहनी स्थापनी च सन्निधीकरणी तथा।
सुसंनिरोधनी मुद्रा संमुखीकरणी तथा।।22।।
सकलीकरणी चैव महामुद्रा तथैव च।
शङ्खचक्रगदापद्मधेनुकौस्तुभगारुडीम्[4] **।।23।।**
श्रीवत्सवनमाले च योनिमुद्रां[5] **च दर्शयेत्।**
मूलाधाराद् द्वादशान्तामानीतां कुसुमाञ्जलिः।।24।।

---

1. घ. कुर्याद् देवार्चनं हरेः। 2. घ. सुमुद्राः। 3. घ. मोदकास्तारकाः। 4. घ. °गारुडाः।5. श्रीवत्सवनमालाख्ययोनिमुद्राश्च।

आवाहनी, स्थापनी, सन्निधीकरणी संरोधिनी, संमुखीकरणी, सकलीकरणी, महामुद्रा, शंखमुद्रा, चक्रमुद्रा, गदामुद्रा, पद्ममुद्रा, धेनुमुद्रा, कौस्तुभमुद्रा, गरुड़मुद्रा, श्रीवत्समुद्रा, वनमालमुद्रा तथा योनिमुद्रा दिखानी चाहिए। मूलाधार से द्वादशार तक लायी गयी कुसुमाञ्जलि मुद्रा भी दिखानी चाहिए।

त्रिस्थानगततेजोभिर्विनीता प्रतिमादिषु।
आवाहनीयं मुद्रा स्याद् देवार्चनविधौ मुने।।25।।
एषैवाधोमुखी मुद्रा स्थापने शस्यते पुनः।

तीनों स्थानों भूः भुवः एवं स्वः में उद्भूत तेज से प्रतिमा में तेज लाने वाली मुद्रा देवार्चन के विधान में आवाहनी कहलाती है। यही अधोमुखी मुद्रा स्थापना में प्रशस्त है।

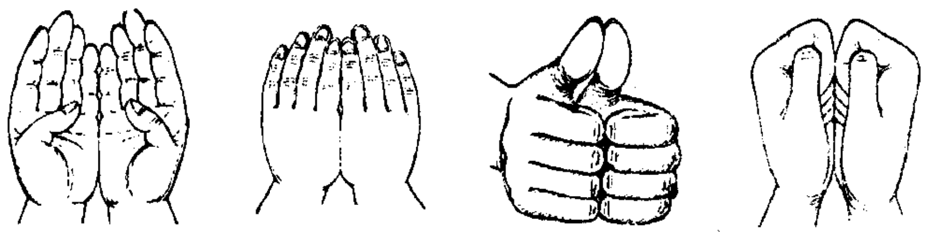

आवाहनी स्थापनी संनिधीकरणी संनिरोधनी

उन्नताङ्गुष्ठयोगेन मुष्टीकृतकरद्वयी।।26।।
सन्निधीकरणी नाम मुद्रा देवार्चने विधौ।

दोनों हाथों के अंगूठे को ऊपर की ओर खड़ा कर मुट्ठी बाँधकर संनिधिकरणी मुद्रा बनती है, जो देव-पूजन में प्रशस्त है।

अङ्गुष्ठगर्भिणी सैव मुद्रा स्यात् संनिरोधनी।।27।।

इसी संनिधीकरणी मुद्रा में यदि अंगूठे मुट्ठी के अंदर दबे हों तो संनिरोधनी मुद्रा कहलाती है।

उत्तानमुष्टियुगला[1] सम्मुखीकरणी तथा।
अङ्गैरेवाङ्गविन्यासः सकलीकरणी भवेत्[2]।।28।।

दोनों मुट्ठी को ऊपर की ओर उठाकर सम्मुखीकरणी मुद्रा बनती है तथा शरीर के सभी अंगों से अंगों का न्यास करना सकलीकरणी मुद्रा कहलाती है।

1. घ. उत्तानमुष्टियोगेन। 2. घ. तथा।

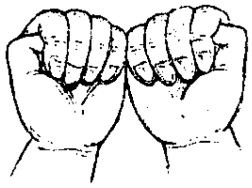

सम्मुखीकरणी

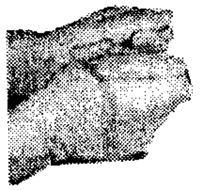

सकलीकरणी

समापनी

अन्योन्याङ्गुष्ठसंलग्ना विस्तारितकरद्वयी।
महामुद्रेयमाख्याता न्यूनाधिकसमापनी।।29।।

दोनों हाथों के अंगूठे को आपस में सटाने और दोनों हाथों को फैलाने से जो महामुद्रा बनती है, वह न्यूनाधिक दोष को समाप्त करनेवाली समापनी मुद्रा कहलाती है।

कनिष्ठानामिकामध्यान्तस्थाङ्गुष्ठेतरागतः ।
गोपिताङ्गुष्ठमूलेन सन्नतान्मुकुलीकृता।।30।।
करद्वयेन मुद्रा स्याच्छङ्खाख्येयं सुरार्चने।

(दाहिने हाथ की) कनिष्ठा अनामिका मध्यमा के बीच में बायें हाथ का अंगूठा रखकर उसे दाहिने हाथ के अंगूठे की जड़ से ढँकें और अन्य अंगुलियों को चारों ओर से फूल की कली तरह बनावें। दोनों हाथों से बनी यह शंखमुद्रा देवार्चन के लिए कहलाती है।

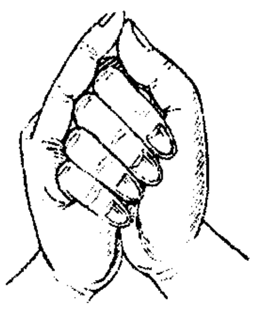

शंखमुद्रा

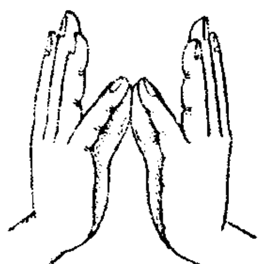

चक्रमुद्रा

गदामुद्रा

अन्योन्याभिमुखस्पृष्टव्यत्ययेन[1] तु वेष्टयेत्।।31।।
अङ्गलीभिः प्रयत्नेन मण्डलीकरणं मुने।
चक्रमुद्रेयमाख्याता

1. घ. अन्योन्याभिमुखं स्पर्शव्यत्ययेन।

हे मुने! दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे के विपरीत कर चारों ओर से प्रयत्नपूर्वक अंगुलियों से घेर लें। यह चक्रमुद्रा कहलाती है।

गदामुद्रा ततः परम्।।32।।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टाङ्गुलिः प्रोन्नतमध्यमा।

इसके वाद गदा मुद्रा कही जाती है। दसो अंगुलियों को एक दूसरे के सम्मुख गूंथ कर मध्यमा को ऊपर उठावें।

अथाङ्गुष्ठद्वयं मध्ये दत्वापि परितः करौ।।33।।
मण्डलीकरणी सम्यगङ्गुलीनां तपोधन।
पद्ममुद्रा भवेदेषा

हे तपोधन सुतीक्ष्ण! बीच में दोनों हाथों के अंगूठे को सटाकर इसके चारों ओर दोनों हाथों की शेष आठ अंगुलियों से मण्डल बनावें। यह पद्ममुद्रा कहलाती है।

पद्ममुद्रा

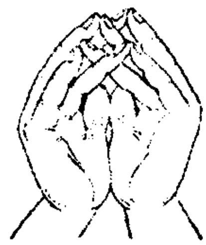
धेनुमुद्रा

धेनुमुद्रा ततः परा।।34।।
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां तर्जनीभ्यां च मध्यमे।
अन्योन्याभिमुखाश्लिष्टे

दोनों हाथों की अंगुलियों को एक दूसरे से गूँथकर अनामिका से कनिष्ठिका, कनिष्ठिका से अनामिका तथा तर्जनी से मध्यमा और मध्यमा से तर्जनी को सटा देने पर धेनुमुद्रा या सुरभि मुद्रा बनती है।

ततः कौस्तुभसंज्ञिका।।35।।
कनिष्ठेन्योन्यसंलग्नेऽभिमुखे च परस्परम्।
वामस्य तर्जनीमध्ये मध्यानामिकयोरपि।
वामानामिकसंस्पृष्टे तर्ज्जनीमध्यशोभिता।
पर्यायेण नताङ्गुष्ठाद्वयी कौस्तुभलक्षणा।।37।।

इसके बाद कौस्तुभ मुद्रा कही गयी है। दोनों कनिष्ठा को आमने-सामने एक दूसरे से सटाकर वाम हाथ के तर्जनी, मध्यमा और अनामिका के बीच बायीं अनामिका को छूती हुई तर्जनियों के बीच रखकर बारी-बारी से दोनों अंगूठा को नीचे झुकाकर कौस्तुभ मुद्रा बनती है।

कनिष्ठान्योन्यसंलग्ना विपरीतं नियोजिता।
अधस्तात् प्रापिताङ्गुष्ठा मुद्रा गारुडसंज्ञका।।38।।

कनिष्ठा अंगुलियों को एक दूसरे के विपरीत संलग्न कर उन्हें अंगूठे के नीचे रखने से गरुड़मुद्रा बनती है।

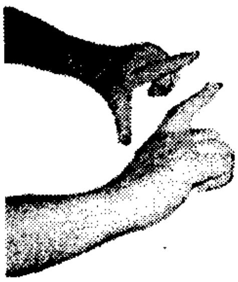
वनमाला मुद्रा

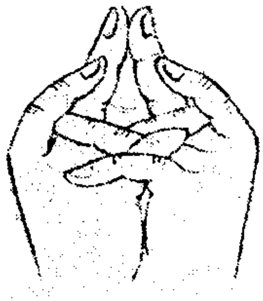
योनिमुद्रा

तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यस्था मध्यमानामिकाद्वयी।
कनिष्ठानामिकामध्ये तर्जन्यग्रकरद्वयी।।39।।
मुने श्रीवत्समुद्रेयं

तर्जनी, अंगूठा, मध्यमा और अनामिका को सटाकर तर्जनी को कनिष्ठा और अनामिका के बीच रखने से श्रीवत्समुद्रा बनती है।

वनमाला भवेत् ततः।
कनिष्ठानामिकामध्या मुष्टिरुन्नीततर्जनी।।40।।
परिभ्रान्ता शिरस्युच्चैस्तर्जनीभ्यां दिवौकसः।

इसके बाद वनमाला होती है। कनिष्ठा, अनामिका के बीच तर्जनी रखकर दोनों हाथों से मुट्ठी बाँधकर दोनों तर्जनी से देवता के हृदय का स्पर्श कर पश्चात् देवता के मस्तक पर तर्जनी को उठाकर घुमावें।

मुद्रा योनिसमाख्याता स्यात् करद्वयदर्शिता।।41।।
तर्जन्याकृष्टमध्यान्ता स्थितानामिकयुग्मका।
मध्यमूलस्थिताङ्गुष्ठा ज्ञेया शस्तार्चने मुने।।42।।

योनि नामक मुद्रा दोनों हाथों से दिखायी जाती है। दोनों मध्यमाओं के नीचे से बायीं तर्जनी के ऊपर दाहिनी अनामिका और दाहिनी तर्जनी के ऊपर बायीं अनामिका रखकर दोनों तर्जनियों से बाँधकर दोनों मध्यमाओं को ऊपर रखने से यह मुद्रा बनती है, जो देवताओं की अर्चना में प्रशस्त है।

एताभिर्दशमुद्राभिः पूर्वोक्ताभिश्च सप्तभिः।
यो रामर्चयेन्नित्यं मोदयेत् स सुरेश्वरम्।।43।।
द्रावयेदपि[1] विप्रेन्द्र ततः प्रार्थितमाप्नुयात्।

पूर्व में कही गयी सात तथा यहाँ कही गयी दश मुद्राओं से जो नित्य श्रीराम की अर्चना करते हैं, वे देवों के ईश्वर विष्णु को प्रसन्न करते हैं, उन्हें द्रवित भी करते हैं और प्रार्थना की गयी वस्तु प्राप्त करते हैं।

लक्षणान्यासनानां हि वक्ष्यामि मुनिसत्तम।।44।।
तानि स्वस्तिकभद्राब्जवीरादीनि भवन्ति वै।

हे मुनिश्रेष्ठ! अब मैं आसनों का लक्षण कहता हूँ। आमन स्वस्तिक, भद्रासन, पद्मासन, वीरासन आदि अनेक प्रकार के होते हैं।

कृत्वौत्तानौ क्षितौ पादौ तत्रैवोरुद्वयं समम्।।45।।
निधाय निश्चलं ह्येतत् स्वस्तिकं कीर्त्यते मुने।

दोनों पैरों को पृथ्वी पर अपने सामने फैलाकर दोनों जंघाओं को समान कर अविचल होकर वैठें। यह स्वस्तिक मुद्रा कहलाती है।

(प्रयोग में बायें पैर को दायीं जंघा की मांसपेशियों के बीच तथा दायें पैर को बांयी जंघा के बीच फंसाकर स्थिर होकर बैठने से यह आसन बनता है।

पादद्वयं समं जानुद्वयोरपि तु कारितम्।।46।।
भद्रासनमिदं श्रेष्ठं जपेत् तत्तत् फलप्रदम्।

दोनों पैरों को समान रूप से दोनों घुटना के ऊपर करने से वज्रासन कहलाता है। इस श्रेष्ठ आसन में जो जप किये जाते हैं वे फलदायी होते हैं।

---

1. आचार्य रामकिशोर कृत 'मुद्राप्रकाश' नामक ग्रन्थ में 'मोदयन्ति द्रावयन्ति देवान् इति मुद्राः' यह परिभाषा दी गयी है।

पादद्वयं समं सम्यगुरुमूलद्वयोपरि।।47।।
कृतं पद्मासनं ह्येतच्छ्रेष्ठं सर्वेषु कर्मसु।

दोनों पैरों को भली भाँति जंघा की जड़ के ऊपर रखकर किया गया पद्मासन सभी कर्मों में श्रेष्ठ है।

वामपादे निधायाङ्कं मूलं पादं च दक्षिणम्।
वामाङ्काग्रे दृतिर्ह्येतद्[1] वीरासनमुदीरितम्।।48।।

बाँये पैर को जमीन पर टिकाकर घुटना पर बाँयी केहुनी को टिका लें। तथा बायें पैर को मोड़कर भूमि पर रखें। इस स्थिति में वाँयीं ओर दृष्टि केन्द्रित करने पर वह वीरासन कहलाता है।

योगासनं चमूष्काधः पार्ष्णिं दत्वा पदान्तरम्।
जङ्घाद्वयोर्निधायैतद्योगेभीष्टं प्रयच्छति।।49।।

(यहाँ भी पाठ सन्देहास्पद है। अन्यत्र विवरण के अनुसार पद्मासन में बैठकर दोनों एँड़ियों को पेट से दबाकर दोनों जंघाओं को एक समान रखकर आगे की ओर कपाल को भूमि से सटाने पर योगासन होता है।)

वामाङ्कपार्श्वे पार्ष्णिञ्च दक्षिणं चेतरं पुनः।
पार्ष्ण्यन्तरं निधायैवं कुर्याज्जानुद्वयं समम्।।50।।
गोमूत्रासनमेतत् स्यात् सर्वाघौघविनाशनम्।

बायीं काँख के को बायीं एँड़ी पर तथा दायें काँख को दायीं एड़ी पर टिकाकर दोनों जंघाओं को समानान्तर कर लें। यह गोमूत्रासन कहलाता है, जिससे सभी पाप विनष्ट हो जाते हैं।

आसनानि बहूनि स्युरेवमेव जपादिषु।।51।।
येन केनासनेनैव वीरः स्थित्वा जपादिकम्।[1]

इस प्रकार जप आदि में अनेक आसन है। किसी भी एक आसन में वीर की तरह निर्वाह करते हुए जप आदि करें।

कुर्वीत भक्तियुक्तस्तु भावयेत् पुरुषोत्तमम्।।
एवं यः कुरुते पूजाजपहोमादिकं मुने।।52।।
सर्वेषामिह पूज्योऽयमिह लोके परत्र च।

1. क. में अनुपलब्ध।

भक्तिभाव के साथ उपर्युक्त कर्म करें और पुरुषोत्तम की भावना करें। जो इस प्रकार पूजा, जप, होम आदि करते हैं, वे इस संसार में और परलोक में सबके द्वारा पूजित होते हैं।

पूजा जपश्च होमश्च मन्त्राणामुद्धृतिस्तथा।।53।।
दीक्षाभिषेकमार्गस्तु दर्शितोऽत्र तपोनिधे।
पूजोपकरणादीनां लक्षणान्यपि सुव्रत।।54।।
दर्शितानि प्रयत्नेन सर्वं भक्त्यावधारय।
सुतीक्ष्णाभिहितं यत्नाद् यदेतद्[1] भुक्तिमुक्तिदम्।।55।।
नावैष्णवेभ्यो वक्तव्यं न श्राव्यमिति मे मतिः।
यत्नेन विष्णुभक्ताय चार्हते[2] देयमित्यपि।।56।।

पूजा, जप, होम, मन्त्रों की आहुति तथा दीक्षा और अभिषेक का मार्ग मैंने मूल रूप से बतला दिया। पूजा में प्रयुक्त होनेवाले उपकरणों के लक्षण भी प्रयत्नपूर्वक मैंने बलता दिया, उन सबको भक्तिभाव से समझो। हे सुतीक्ष्ण! मैंने जो पूजा की विधि तुम्हें बतलायी, उसे किसी वैष्णव से भिन्न व्यक्ति के सामने मत बोलना, न उन्हें सुनाना, यह मेरा मत है। विष्णु के भक्त जो इस विधि को ग्रहण करने में समर्थ हों, उन्हें यत्नपूर्वक देना चाहिए, यह भी मेरा मत है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये आसनमुद्राप्रदर्शनं नामाष्टादशोऽध्यायः।

अथ एकोनविंशोऽध्यायः

अगस्तिरुवाच

सुतीक्ष्ण मन्त्रवर्येषु श्रेष्ठो वैष्णव उच्यते।
गाणपत्येषु शैवेषु शाक्तसौरेष्वभीष्टदः।।1।।
वैष्णवेष्वपि सर्वेषु राममन्त्रः फलाधिकः।
गाणपत्यादिमन्त्रेषु कोटिकोटिगुणाधिकः।।2।।

अगस्त्य बोले– हे सुतीक्ष्ण! गाणपत्य, शैव, शाक्त, सौर मन्त्रों में भी वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है तथा मनोरथ सिद्ध करनेवाला है। वैष्णव-मन्त्रों में भी राममन्त्र गाणपत्य आदि मन्त्रों में करोड़ों गुना अधिक फल देनेवाला है।

1. घ. यद्वद्वैष्णवं। 2. क. चार्थिने। 3. घ. °कामदोऽयं।

मन्त्रेषु तेष्वऽप्यनायासफलदोऽयं[3] षडक्षरः।
षडक्षरोऽयं मन्त्रस्तु सर्वाघौघनिवारणः।।3।।

राममन्त्र भी अनेक हैं; किन्तु उनमें भी अनायास फल देनेवाला यह छह अक्षरों का मन्त्र है। यह छह अक्षरों का मन्त्र सभी पापों का नाश करनेवाला है।

मन्त्रराज इति प्रोक्तः सर्वेषामुत्तमोत्तमः।
दैनन्दिनं च दुरितं पक्षमासर्त्तुवर्षजम्।।4।।

इसे मन्त्रराज कहा गया है जो सभी मन्त्रों में उत्तम है। पक्ष, मास, ऋतु और वर्ष में किये गये पापों को नाश करने के साथ प्रतिदिन किये गये पाप को भी नाश करता है।

सर्वं दहति निःशेषं ऊर्णाजालमिवानलः।[1]
ब्रह्महत्यासहस्राणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च।।5।।

जैसे आग ऊन से बने जाल को निःशेष कर जला देता है, उसी प्रकार यह मन्त्र हजारो ब्रह्महत्या और ज्ञानवश या अज्ञानवश जो पाप किये गये हैं उन्हें जला देता है।

स्वर्णस्तेयसुरापानं गुरुतल्पायुतानि च।।6।।
कोटिकोटिसहस्राणि ह्युपपातकजान्यपि।
सर्वाण्यपि शमं यान्ति[2] राममन्त्रानुकीर्तनात्।7।।

सोने की चोरी, मद्यपान, गुरु की शय्या पर शयन आदि जो करोड़ों करोड़ों महापाप हैं और अनेक उपपातक भी हैं, वे सब श्रीराम के मन्त्र के जप से शान्त हो जाते हैं।

भूतप्रेतपिशाचाद्याः कूष्माण्डाः ग्रहराक्षसाः।
दूरादेव पलायन्ते[3] राममन्त्रप्रभावतः[4]।।8।।

भूत, प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ग्रह, राक्षस श्रीराम के मन्त्र के प्रभाव से दूर भाग जाते हैं।

मालिन्यमपि सांकार्य्यं यच्च यावच्च दूषितम्।
सर्वं विलयमाप्नोति राममन्त्रे तु कीर्तिते।।9।।

---

1. घ. तूर्णाचलमिवानलः। 2. घ. विनश्यन्ति।3. क. प्रधावन्ति।4. राममन्त्रप्रसादतः।
५. शमिताः।

मलिनता, संकरता और जो जितने दोष हैं, सब श्रीराम का मन्त्र जपने से विलुप्त हो जाते हैं।

आब्रह्मबीजदोषाश्च नियमातिक्रमोद्भवाः।
स्त्रीणाञ्च पुरुषाणां स्युर्मन्त्रेणानेन नाशिताः[5]।।10।।

ब्रह्म से लेकर उत्पत्ति के बीज पर्यन्त जो दोष होते हैं या नियम का त्याग करने से स्त्रियों और पुरुषों में जो दोष उत्पन्न होते हैं, वे सब इस मन्त्र से नष्ट हो जाते हैं।

येषु येष्वेष्वपि देशेषु रामः परमुपास्यते।।11।।
दुर्भिक्षादिभयान्येषु न भवन्ति कदाचन।

जिन जिन देशों में श्रीराम परम देवता के रूप में पूजित होते हैं, वहाँ दुर्भिक्ष आदि का भय कभी नहीं रहता।

शान्तः प्रसन्नो वरदोऽक्रोधनो भक्तवत्सलः।।12।।
अनेन सदृशो मन्त्रो जगत्स्वपि न विद्यते।[1]

संसार में इस मन्त्र के समान शान्त, प्रसन्न, वर देनेवाला, सौम्य तथा भक्तों के प्रति संतान का भाव रखनेवाला मन्त्र नहीं है।

अनेनाराधितो रामः प्रसीदत्येव सत्वरम्।।13।।
प्रददात्यायुरैश्वर्य्यं[2] सम्मानोत्तमतामपि।

इस मन्त्र से पूजित श्रीराम शीघ्र ही प्रसन्न होते हैं और आयु, ऐश्वर्य, सम्मान तथा श्रेष्ठता प्रदान करते हैं।

य एवमुक्तमार्गेण मन्त्राराधनतत्परः।14।।
सकामो भुक्तिमाप्नोति निष्कामो मुक्तिमेति च।
प्राप्नोत्युभयकामस्तु भुक्तिं मुक्तिं न संशयः।।15।।

जो इस प्रकार पूर्वोक्त पद्धति से मन्त्र के आराधन में तत्पर होते हैं, वे सकाम होने पर भोग प्राप्त करते हैं और निष्काम होने पर मुक्त हो जाते हैं और दोनों चाहनेवाले भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रुतिस्मृतिपुराणार्थनिश्चय ज्ञानवित्तम।
सन्देहं छिन्धि पृच्छामि तातात्रानुग्रहं कुरु।।16।।

1. घ. में अनुपलब्ध। 2. घ. ददात्यायुष्यमैश्वर्यं।

सुतीक्ष्ण बोले– हे ज्ञानियों में श्रेष्ठ महामुनि अगस्त्य! आपने वेद और पुराणों के प्रयोजन के विषय में सब कुछ जानकर उसका निश्चय कर लिया है। हे तात! मेरे मन में एक सन्देह है। मैं पूछ रहा हूँ। इस सन्देह का निवारण करें। इस विषय में आप कृपा करें।

आत्मानुभवरूपेण साक्षात्कारेण केवलम्।
पुनरावृत्तिरहितं शाश्वतं ब्रह्म यात्यपि।।17।।
इति श्रुत्यादितत्त्वज्ञाः प्रवदन्ति मनीषिणः।

वेद आदि का तत्त्व जाननेवाले मनीषीगण कहते हैं कि आत्मा का जब अनुभव होता है, तब ब्रह्म के साथ साक्षात्कार कहलाता है, उससे इस संसार में पुनर्जन्म से रहित नित्य ब्रह्म की प्राप्ति होती है।,

श्रीमताभिहितं राममन्त्रानुष्ठानतत्पराः।
भुक्तिं मुक्तिं च विन्दन्ति कथमेतन्निबोधय।।18।।

किन्तु आपने कहा है कि श्रीराम के मन्त्र का जो अनुष्ठान करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों पा लेते हैं। यह कैसे होता है यह हमें बतलायें।

निवृत्तिरेव मुक्तिश्च प्रवृत्तिर्भुक्तिरुच्यते।
उभयोरप्येक एव कथं मार्गो भवेद् वद।।19।।

जब विमुख होना मुक्ति है और प्रवृत्त होना भुक्ति है, तब दोनों विपरीत वस्तुओं का एक मार्ग कैसे हो सकता है?

अगस्तिरुवाच

त्वया चैव यदुक्तं यत् सत्यं सत्यविदां वर।
सर्वजन्मसुखोच्छित्तिर्दुःखोच्छित्तिश्च तत्त्वतः।20।।
निवृत्तिलक्षणा ह्येषा मुक्तिरित्यभिधीयते।

अगस्त्य ने कहा– हे सत्यवादियों में श्रेष्ठ, सुतीक्ष्ण! तुमने जो कहा वह सत्य है। वस्तुतः जन्म-ग्रहण सम्बन्धी सभी सुखों तथा दुखों का नाश, जो एक प्रकार का त्याग है, मुक्ति के नाम से जाना जाता है।

विषयात्यन्तसंसर्गः करणानां हृदा सह।।21।।
भुक्तिः प्रचक्ष्यते लोके वैषम्यमुभयोरपि।

भोग के साधनों का हृदय के साथ जो अत्यन्त संयोग है, वह संसार में भोग कहा जाता है। इस प्रकार दोनों एक दूसरे से अलग है।

तथाथात्मानुसन्धानमुभयत्रापि दृश्यते।।22।।
मुक्तिरात्मानुसन्धाने चात्मावस्थानमेव हि।
एतदस्त्येव तत्त्वञ्च सर्वतत्त्वविदां सताम्।।23।।
प्रवृत्तौ च निवृत्तौ च सर्वदात्मानुभाविनाम्।

चूँकि आत्मा का अनुसंधान दोनों ही स्थलों पर है और आत्मा के अनुसंधान के द्वारा आत्मा में स्थित होना मुक्ति है। हे तत्त्वज्ञ! यही कारण है कि प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों में हमेशा आत्मा का ही अनुभव होता है, यही दोनों में साम्य है।

किञ्च रामोऽहमित्येव सर्वदानुस्मरन्ति ये।।24।।
न ते संसारिणो नूनं राम एव न संशयः।

और भी, 'मैं राम हूँ' ऐसा जो हमेशा चिन्तन करते हैं, वे संसारी न होकर राम-स्वरूप हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

राम एवात्र भोक्ता च भोग्यमाद्यं[1] भुजि क्रिया।।25।।
एतस्मिन्नविशिष्टे तु किमसत् सत्प्रसंजनम्।
अतो न मुक्तिमार्गस्य रोधिनी भुक्तिरिष्यते।।26।।

हे आर्य सुतीक्ष्ण! श्रीराम ही भोक्ता हैं, प्रथम भोग्य हैं तथा भोजन रूप क्रिया भी वे ही है। उनके अविशिष्ट अर्थात् सामान्य अर्थात् सबमें उपस्थित रहने पर कौन सा असत् उत्पन्न हो सकता है? अतः भोग मोक्ष के मार्ग का अवरोधक नहीं है।

अनेन विधिना रामं य एवमनुतिष्ठति।
स भुक्तिमपि मुक्तिञ्च लभते नात्र संशयः।।27।।

इस विधि से जो श्रीराम का अनुष्ठान करते हैं, वे भोग और मोक्ष दोनों प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

यथा विधिनिषेधौ तु मुक्तिं नैवापसर्पतः।
तथा न स्पृशतो रामोपासकं विधिपूर्वकम्।।28।।

1. क. एवं घ. भोज्यमाद्यं।

जिस प्रकार विधि और निषेध दोनों मुक्ति की ओर ही जाते हैं, उसी प्रकार विधिपूर्वक रामोपासक को वे दोनों स्पर्श भी नहीं कर पाते।

सदा रामोऽहमित्येव चिन्तयेदप्यनन्यधीः।
न तस्य विहितं लोके निषिद्धं च न विधीयते।।28।।

'मैं सदा श्रीराम हूँ' ऐसा एकाग्र होकर सोचें। ऐसे व्यक्ति के लिए संसार में कोई विधान अथवा निषेध नहीं रह जाता है।

यथा घटश्च कलश एकार्थस्याभिधायकः।
तथा ब्रह्म च रामश्च नूनमेकार्थतत्परः।।29।।

जैसे 'घट' शब्द एवं 'कलश' शब्द दोनों एक ही पदार्थ का अभिधान करते हैं। उसी प्रकार 'ब्रह्म' और 'राम' शब्द का एक ही अर्थ होता है।

अतो रामोऽहमित्येव तात्पर्य्यं प्रवदन्ति ये।
रामनामत एव स्युर्न तेषां विहितादिकम्।।30।।

इसलिए 'मैं राम हूँ' यही भाव जो बोलते हैं, वे श्रीराम के नाम के कारण राम ही हो जाते हैं, उनके लिए विधि-निषेध आदि नहीं होते।

दातव्यमस्मै ददति ये यावत्किञ्चिदन्वहम्।
उदकौदनवस्त्राणि रामायैव न संशयः।।31।।
अतो ब्रह्मविदे दत्तमानन्त्याय प्रकल्प्यते।

'ऐसे भक्त को यह दे रहा हूँ' ऐसा सोचकर जो जितनी मात्रा में जल, भात, वस्त्र आदि दान करते हैं, वे राम को ही समर्पित करते हैं, इसमें सन्देह नहीं। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को दिया गया दान अनन्त फल देनेवाला होता है।

ये दुष्यन्त्यपि निन्दन्ति तत्पापफलभागिनः।।32।।
[1]कुटुम्बिनो दरिद्राः स्युर्दुःखिनः स्युर्न संशयः।

जो ब्रह्मज्ञानियों का दोष निकालते हैं, उनकी निन्दा करते हैं, वे उस पाप के भागी होते हैं। वे दुःखी होते हैं तथा उनके परिवार के लोग भी दुःखी होते हैं।

ततः सुतान् समुत्पाद्य स्वयमेव दहेदपि।।33।।
कारागृहेषु सर्वेषु निर्निमित्तं निगृह्यते।

तब वे अनेक पुत्रों को उत्पन्न कर स्वयं भी जलते रहते हैं तथा सभी प्रकार के बन्धन रूपी कारागार में विना किसी कारण के बाँधे जाते हैं।

1. घ. यहाँ से दो श्लोक तक क. में अनुपलब्ध। 2. घ. कृतेप्सुभिः।

अहो स्वजनभाग्यस्य यथावत्तत् क्षयं भवेत्।।34।।

अतो ब्रह्मविदां द्वेषो न कर्त्तव्यः शुभेच्छुभिः[2]।

निन्दा चैव न कर्त्तव्या हितमेव समाचरेत्।।।35।।

अपने कुटुम्बों के भाग्य की तरह उनका भी ह्रास होता है। अतः जो अपनी भलाई चाहते हों, वे ब्रह्मज्ञानियों से द्वेष न करें. उनकी निन्दा न करें; केवल भलाई का कार्य करें।

ये स्तुवन्त्यनुमोदन्ति ददत्यस्मै मनीषिणः।

तत्पुण्यमखिलं लब्ध्वा तद्गतिं प्राप्नुवन्त्यपि।।36।।

जो उनकी स्तुति करते हैं; उनका समर्थन करते हैं, उन्हें दान देते हैं वे बुद्धिमान् व्यक्ति अपने सभी कर्मों से उनके पुण्यों को पाकर उनकी गति को भी प्राप्त करते हैं।

ज्ञात्वा तमेवमात्मानं कृत्यं कुरु निरन्तरम्।

एतेनैव तवाभीष्टं भविष्यति न संशयः।।37।।

उसी आत्मा को जानकर लगातार कर्म करो। इसी से तुम्हारा अभीष्ट सिद्ध होगा, इसमें सन्देह नहीं।

त्यज[1] दुर्जनगोष्ठीषु विहारेच्छां समाचर।

हितमेव सतां नित्यमहिंसातत्परो भव।।38।।

दुर्जनों की गोष्ठी में स्वच्छन्द होकर रंगरेलियाँ मनाने की इच्छा न करो; प्रतिदिन सज्जनों के कल्याण की बात करो और अहिंसा के लिए कमर कस लो।

तत्प्राप्तिसाधनान्यष्टौ तानि वक्ष्यामि तच्छृणु।

यमो नियमसंज्ञश्च आसनं च तृतीकम्।।39।।

प्राणायामश्चतुर्थश्च प्रत्याहारश्च पञ्चमः।

धारणा च तथा ध्यानं समाधिरिति सत्तम।।40।।

हे सत्तम! उस श्रीराम को पाने के आठ साधन हैं, जिन्हें सुनो– यम, नियम और तीसरा आसन, चौथा प्राणायाम, पाँचवाँ प्रत्याहार इसके बाद धारणा, ध्यान और समाधि।

---

1. घ. त्यजन्।

प्रत्येकमेषां वक्ष्यामि लक्षणानि च सुव्रत।
तद्विविच्य प्रवक्ष्यामि तत्तल्लक्षणमप्यहो।।41।।

हे सुव्रत! इनके प्रत्येक का लक्षण मैं कहूँगा फिर उनका विवेचन कर उनका लक्षण कहूँगा।

अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं दयार्जवम्।
क्षमा धृतिर्मिताहारः शौचं चेति यमाः दश।।42।।

अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, कोमलता, क्षमा, धैर्य, मिताहार, शौच ये दश यम हैं।

सर्वेषामपि जन्तूनामक्लेशजननं पुनः।
वाङ्मनः कर्मभिर्नूनमहिंसेत्यभिधीयते।।43।।

सभी प्राणियों को वचन, मन एवं कर्म से कष्ट न पहुँचाना अहिंसा कही जाती है।

यथादृष्टश्रुतार्थानां स्वरूपकथनं पुनः।
सत्यमित्युच्यते धीरैस्तद् ब्रह्मप्राप्तिसाधकम्।।44।।

जैसा देखा गया हो और सुना गया हो, उसी रूप में यदि पुनः कहा जाये तो उसे धीरों ने सत्य कहा है, यह सत्य ब्रह्म की प्राप्ति का साधक है।

तृणादेरप्यनादानं परस्य चेत् तपोधन।
अस्तेयमेतदप्यङ्ग ब्रह्मप्राप्तेः सनातनम्।।45।।

हे अंग! सुतीक्ष्ण! दूसरे का घास तक नहीं लेना अस्तेय है, जो ब्रह्म की प्राप्ति का सनातन साधन है।

अवस्थास्वपि सर्वासु कर्मणा मनसा गिरा।[1]
स्त्रीसंगतिपरित्यागो ब्रह्मचर्य्यं प्रशिक्षते।।46।।

सभी अवस्थाओं में कर्म, मन एवं वचन से स्त्री की संगति का परित्याग ब्रह्मचर्य कहलाता है।

परेषां दुःखमालोक्य स्वस्येवालोच्य तस्य तु।
उत्सादनानुसंधानं दयेति प्रोच्यते बुधैः।।47।।

1. घ. मनसापि वा।

दूसरों का दुःख देखकर 'यह दुःख मेरा है' ऐसा समझकर उसे हटाने हेतु जो चिन्तन किया जाये, उसे बुद्धिमान् दया कहते हैं।

व्यवहारेषु सर्वेषु मनोवाक्कायकर्मभिः।
सर्वेषामपि कौटिल्यराहित्यं त्वार्जवं भवेत्।।48।।

सभी प्रकार के व्यवहारों में मन, वचन एवं कर्म से सबके प्रति कुटिलता का त्याग करना कोमलता है, वह लाना चाहिए।

सर्वात्मना सर्वदापि सर्वत्राप्यपकारिषु।
बन्धुष्विव समाचारः क्षमा स्याद् ब्रह्मवित्तम।।49।।

हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ! हर प्रकार से, हमेशा, हर स्थान पर अपकार करनेवालों के प्रति भी भाई-बन्धु के समान आचरण करना क्षमा है।

इच्छाप्रयत्नराहित्यं यातेषु विषयेष्वपि।
नो भवेत् तां धृतिं धीराः प्रवदन्ति सतां वरः।।50।।

बीती हुई बातों के सम्बन्ध में इच्छा और उसके लिए प्रयत्न न करना धृति कहलाता है ऐसा धीर लोग कहते हैं।

भोज्यस्यैव चतुर्थांशं भोजनं स्वस्थचेतसः।
अत्युष्णकटुतिक्ताम्ललवणादिविवर्जितम्[1] ।।51।।
हितं मेध्यं सुतीक्ष्णैतन्मिताहारं प्रवक्ष्यते।

जितना भोजन कर सकते हों, उसका चौथाई भाग ही भोजन है। वह अधिक गरम, कड़वा, तीता, खट्टा, नमकीन नहीं होना चाहिए। भोजन हितकर हो और पवित्र हो। वैसा भोजन करना **मिताहार** कहलाता है।

निर्गतं रोमकूपेभ्यो नवरन्ध्रेभ्य एव च।।52।।
मलं वदन्ति द्वाराणां क्षालनं शौचमुच्यते।
मृज्जलाभ्यां बहिः सम्यक् निर्मलीकरणं पुनः।।53।।
पूर्वोक्तभूतशुद्धान्तं शौचमाचक्षते बुधाः।
एते दश यमाः ब्रह्मन् ब्रह्मसम्प्राप्ति हेतवः।।54।।

शरीर के नौ छिद्र एवं रोमकूपों से निकले हुए पदार्थ को मल कहते हैं। इनके द्वारों को प्रक्षालित करना **शौच** कहा जाता है। मिट्टी और जल से शरीर के

1. घ. अत्युष्णकटुताम्बूललवणादिविवर्जितम्। 2. घ. सिद्धान्तलक्षणम्।

बाहरी अंगों का शुद्धीकरण होता है तथा पूर्वोक्त विधि से भूतशुद्धि पर्यन्त शुद्धि को बुद्धिमान् लोग शौच कहते हैं। हे ब्रह्मन्! ये दश यम हैं, जो ब्रह्म-प्राप्ति के साधन हैं।

तपश्च तुष्टिरास्तिक्यं ईश्वराराधनं तथा।
सिद्धान्तावेक्षणं[2] चैव लज्जा दानं मतिस्तथा।।55।।
जपो व्रतं दशैतानि सुतीक्ष्ण नियमाः स्मृताः।

तप, तुष्टि, आस्तिक्य भावना, ईश्वर की आराधना, सिद्धान्तों का अवलोकन करना, लज्जा, दान, मति, जप और व्रत ये दश **नियम** कहे गये हैं।

प्रत्येकमेषां वक्ष्यामि लक्षणानि तपोनिधे।।56।।
तपस्त्वनशनं नाम विधिपूर्वकमिष्यते।
अनायासोपवासेन तृप्त्यर्थं[1] नैव जीवनम्।।57।।
तुष्टिरेषावधार्य्यैतत् तत्प्राप्तिर्नानया विना।
श्रुत्याद्युक्तेषु विश्वास आस्तिक्यं स प्रचक्षते।।58।।

हे तपोनिधि सुतीक्ष्ण! इनमें से अब प्रत्येक का लक्षण कहता हूँ। विधानपूर्वक और विना प्रयास किये हुए भोजन नहीं करना **तप** कहलाता है। 'मेरा जीवन तृप्ति के लिए नहीं है' तथा 'जीवन तृप्ति के विना भी व्यर्थ नहीं है' यह धारणा बनाकर रहना **तुष्टि** है। वेदादि शास्त्रों में उक्त सिद्धान्तों पर विश्वास करना **आस्तिक्य** है।

इष्टदेवार्चनं सम्यक् विधिपूर्वकमन्वहम्।
त्रिसन्ध्यमेकवारन्तु भवत्येवेश्वरार्चनम्।।59।।

प्रतिदिन तीनों सन्ध्या में अथवा एक बार प्रातःकाल में विधानपूर्वक अपने इष्टदेव की आराधना **ईश्वर की आराधना** है।

वैष्णवागमसिद्धान्तश्रवणं मननं तथा।
श्रुतिस्मृतिपुराणादिमध्यान्तोदर्कदर्शनम् ।।60।।
सिद्धान्तश्रवणं ह्येतत् प्रोच्यते तत्त्वदर्शिभिः।

वैष्णवागम के सिद्धान्त का श्रवण, मनन, वेद, स्मृति, पुराण आदि के श्रवण के मध्य तथा अन्त में उसके परिणाम के भी दर्शन को तत्त्वज्ञानियों ने सिद्धान्त-श्रवण कहा है।

---

1. घ. तृप्त्युत्पत्त्यैव जीवनम्।

श्रुत्यादिभिर्लौकिकैश्च यद्यदत्यन्तनिन्दितम्।।61।।
तत्राप्रवर्तनं लज्जा वाङ्मनःकर्मणामपि।

वेद या लोक में जो अत्यन्त निन्दित कर्म माना गया हो, उन कार्यों को को नहीं करना वाणी, मन और कर्मों की **लज्जा** है।

यदिष्टदेवतां ध्यात्वा तदर्पणधियान्वहम्।।62।।
सत्पात्रे दीयतेन्नादि[1] तद्दानमभिधीयते।

अपने इष्टदेव का ध्यान कर उन्हें समर्पित करने की बुद्धि से प्रतिदिन जो अन्नादि दिया जाता है, उसे **दान** कहते हैं।

तर्कैस्तदनुसन्धानं[2] सम्यक् सदसतोरपि।।63।।
शास्त्रोक्तयोर्मतिरयं तत्त्वविद्भिरुदीर्य्यते।

तर्क कर शास्त्र में उक्त अच्छे और बुरे का अनुसंधान कर तत्त्व-ज्ञान तत्त्वज्ञानियों के द्वारा **मति** कही गयी है।

गुरोर्लब्धस्य मन्त्रस्य शश्वदावर्त्तनं हि यत्।।64।।
अन्तरङ्गाक्षराणां च न्यासपूर्वो जपो भवेत्।

न्यास करके करना गुरु से प्राप्त मन्त्र के अन्तर्गत आये अक्षरों की बार बार आवृत्ति **जप** कहलाता है।

कर्तव्यस्य समस्तस्य नियमग्रहणं व्रतम्।।65।।

सभी कर्तव्यों को नियमपूर्वक स्वीकार करना **व्रत** कहलाता है।

नियमव्यतिरेकेण सर्वं भवति निष्फलम्।
अतो नियमतः सर्वं कृत्यं साफल्यमाप्नुयात्।[3]।66।।

नियम के विपरीत सभी कार्य निष्फल हो जाते हैं, अतः नियमपूर्वक सभी कृत कर सफलता पायें।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये यमनियमव्रतो नाम
एकोनविंशोऽध्यायः।

---

1. घ. दीयतेऽर्थादि। 2. घ. स्वतस्तदनुसंधानम्।3. घ. यमैश्च नियमैश्चैव कृतं यत् सफलं भवेत्।

अथ विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

एकत्रैव स्थिरीभावः पूर्वोक्तनियमैः सह।
मूलार्पितशरीरस्य एतदासनमुच्यते।।1।।

पूर्वोक्त नियमों का पालन करते हुए मूलाधार में अर्पित शरीर का एक स्थान पर स्थिर रहना आसन कहलाता है।

प्राणायामाँस्तथा वक्ष्ये मुमुक्षोरुपकारकान्।
यैः कृतैर्दह्यतेऽघौघः शुष्केन्धनगिरिर्मुने।।2।।

अब मोक्ष चाहनेवालों के उपकारक प्राणायामों के विषय में कहता हूँ, जिन्हें करने से पाप समूह रूपी सूखी लकड़ी का पहाड़ भस्म हो जाता है।

इन्द्रियेष्वपि ये दोषा वातपित्तकफोद्भवाः।
त्वगसृङ्मांसमेदोत्थाः मज्ज्ञास्थिचर्मसम्भवाः।[1]।3।।
एतेऽपि सर्वे दह्यन्ते प्राणस्यान्तर्निरोधनात्।
प्रायश्चित्तमघौघानां मुख्यमेतद् वदन्ति हि।।4।।

वात, पित्त एवं कफ के कारण त्वचा, रक्त, मांस, मेद, मज्ज्ञा, अस्थि एवं चर्म में उत्पन्न जो इन्द्रियों में दोष हैं, वे भी प्राणवायु को अन्तः में रोकने से जल जाते हैं। पाप समूह का भी यह मुख्य **प्रायश्चित्त** कहा गया है।

पुनरावृत्तिरहितं शाश्वतं ब्रह्मकांक्षिभिः।
प्राणायामश्च सततं कर्तव्यो विधिवन्मुने।।5।।

पुनर्जन्म से रहित तथा शाश्वत पद एवं ब्रह्म का साक्षात्कार करने की इच्छा रखनेवालों के द्वारा विधानपूर्वक प्राणायाम सदा करना चाहिए।

सम्यङ्निरुध्य च प्राणानन्तःकरणमात्मनि।
स्वयमेवात्र शिष्टः सन् ब्रह्मभूयाय कल्प्यते।।6।।

प्राणवायु को सम्यक् रूप से रोककर आत्मा में अन्तःकरण को प्रविष्ट कराकर स्वयं को इस स्थिति में तटस्थ रखकर साधक ब्रह्म स्वरूप हो जाता है।

---

1. घ. त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्ज्ञान्त्रशुक्रसम्भवाः।

जानुबिम्बं कराग्रेण त्रिः परामृश्य सत्त्वरम्।
प्रदद्याच्छोटिकामेकामियं मात्रा कनीयसी।।7।।
मध्यमा द्विगुणा चैव सा ज्येष्ठा त्रिगुणा स्मृता।
अधमो मध्यमश्चैव प्राणायामस्तथोत्तमः।।9।।

जानुमण्डल के ऊपर हथेली को शीघ्रतापूर्वक तीन बार फिराकर एक बार चुटकी बजाने में जो समय लगता है, उसे छोटी मात्रा कहते हैं। इसी दुगुनी मात्रा मध्यमा कहलाती है और तीन गुनी श्रेष्ठ मात्रा कहलाती है। इसी प्रकार प्राणायाम भी अधम, मध्यम और उत्तम भेद से प्राणायाम तीन प्रकार के होते हैं।

अधमः पञ्चदशभिः त्रिंशद्भिर्मध्यमो भवेत्।
मात्राभिरुत्तमः पञ्चचत्वारिंशद्भिरुच्यते।।10।।
प्राणायामैः कृतै शश्वत् कृतैः षोडशभिर्मुने।
दिने दिने च च यत्पापं तत्सर्वं नश्यति ध्रुवम्।।11।।
परोपतापजं पापं परद्रव्यापहारजम्।
परस्त्रीमैथुनोत्पन्नं प्राणायामैः शतं दहेत्।।12।।

पन्द्रह मात्राओं से अधम, तीस मात्राओं का मध्यम तथा पैंतालीस मात्राओं का उत्तम प्राणायाम है। नियमित रूप से सोलह बार प्राणायाम कर प्रतिदिन के पाप को नाश कर लेता है। दूसरे को कष्ट देने से, दूसरे का धन छीनने से, परायी स्त्री से मैथुन करने से जो पाप होते हैं, वे सौ बार प्राणायामों से जल जाते हैं।

महापातकजातानि ब्रह्महत्याशतानि च।
सर्वाण्यपि प्रदह्यन्ते प्राणायामैश्चतुःशतैः।।13।।

महापातकों का समूह तथा सैकड़ो ब्रह्महत्या का पाप, ये सभी चार सौ प्राणायाम से जल जाते हैं।

आदावन्ते च यत्नेन प्राणायामं समाचरेत्।
कर्मस्वपि समस्तेषु शुभेष्वप्यशुभेषु च।।14।।

सभी शुभ एवं अशुभ कर्म के प्रारम्भ और अन्त में यत्नपूर्वक प्राणायाम करना चाहिए।

1. घ. °विधिवन्मुने।

प्राणायामैर्विना यद्यत् कृतं कर्म निरर्थकम्।
अतो यत्नेन कर्तव्या प्राणायामाः शुभार्थिना।।15।।

प्राणायाम के विना जो जो कर्म किए जाते हैं, वे व्यर्थ हो जाते हैं। अतः शुभ चाहनेवाले यत्नपूर्वक प्राणायाम करें।

यावच्छक्यं नियम्यासून् मनसैव जपेन्मनुम्।
रामं मुहुर्मुहुर्ध्यायन् पूर्वोक्तविधिवत्सुधीः[1]।।16।।

जबतक सम्भव हो प्राणवायु को रोककर श्रीराम का ध्यान करते हुए मन ही मन मन्त्र पूर्वोक्त विधि से जप करें।

[1]धारयन्नन्तरं वासून् नेत्रे किञ्चिन्निमील्य च।
परं ज्योतिः परं ध्यायन्नन्तरेव मनुर्जपेत्।।17।।

अथवा प्राणवायु को भीतर में धारण कर दोनों आँखें थोड़ा बन्द कर परम ज्योतिःस्वरूप परमात्मा का ध्यान करते हुए मन ही मन मन्त्र का जप करें।

आपादमस्तकं सम्यक् प्रविशत्यनिलो यथा।
यावतीभिस्तुमात्राभिरिन्द्रियाण्यपि धावतः।।18।।
प्रक्षुभ्यति शरीरं च तावन्मात्रं सुसंयमः।

जितनी मात्राओं के बराबर समय में मस्तक से पैर तक तथा सभी इन्द्रियों तक जैसे वायु प्रविष्ट हो रहा हो तथा शरीर हिलने लगे, उतनी मात्राओं तक प्राणायाम करना चाहिए।

प्राणायामैर्विना यस्य जपहोमार्चनादिकाः।।19।।
न फलन्त्येव ताः सर्वाः यत्नेनापि कृताः क्रियाः।

प्राणायाम के विना जप, होम, अर्चन आदि क्रियाएँ करते हैं, वे सफल नहीं होते हैं; चाहे वे क्रियाएँ यत्न से क्यों न किये जाएँ।

इन्द्रियाणां हृदा सार्द्धं विषयेभ्यो निवर्तनम्।।20।।
प्रत्याहारो भवेदेतत् सम्यगिन्द्रियनिग्रहः।

इन्द्रियों को अपने अपने विषयों से विमुख करनेवाला तथा हृदय के साथ संयोग करानेवाला प्रत्याहार है; इससे सम्यक् प्रकार से इन्द्रिय-निग्रह होता है।

1. घ. यहाँ से छह चरण अनुपलब्ध।

जीवस्य ब्रह्मरूपेण निर्द्धारो वाथ युक्तिभिः।।21।।
पूर्वोक्ता या तु मात्राख्या प्राणायामत्रयोद्भवा।
आत्मन्यपि स्थिरीकारश्चित्तस्यैवात्र धारणा।।22।।

जीव को ब्रह्म के रूप में युक्तियों के द्वारा निर्धारित करना धारणा है अथवा पूर्व में कही गयी मात्रा से तीन बार प्राणायाम कर आत्मा में चित्त को स्थिर करना **धारणा** है।

सम्यगालोकनं ध्यानं रामं हृदि निधाय च।
अङ्गादिभूषणैः सार्द्धं बाहुना चरणैरपि।।23।।

सभी अंगों, भूषणों, बाहुओं और चरणों सहित श्रीराम को हृदय में धारण कर उन्हें भली भाँति देखना **ध्यान** है।

सत्यज्ञानसुखैकत्वप्राप्तये प्राप्तिसाधनम्।
समाधिधर्मचिन्ता स्याद् भवान्तरशतेष्वपि।।24।।
समाधिरथवा जीवब्रह्मणोरैक्यचिन्तनम्।
ब्रह्मीभूय स्वयं जीवो निरुद्धासुर्विलीनभूः।।25।।

सैकड़ो जन्मों में सत्य, ज्ञान और सुख की प्राप्ति के लिए साधन के रूप में धर्म-चिन्तन समाधि है। अथवा जीव और ब्रह्म में एकत्व का चिन्तन करना समाधि है। इस अवस्था में जीव के प्राण अवरुद्ध हो जाते हैं और पृथ्वी का संसार विलीन हो जाता है; वह साधक ब्रह्मस्वरूप हो जाता है।

[1]अतोऽप्यनन्यसद्भावात् स्वयमेवावशिष्यते।
मूहूर्तावस्थितौ वापि समाधिरथवोच्यते।।

इसके बाद जीव और ब्रह्म की एकात्मकता के कारण केवल ब्रह्म की सत्ता रह जाती है। इस अवस्था में मुहूर्त भर भी रहना **समाधि** की दूसरी परिभाषा है।

एवमष्टाङ्गसम्पन्नो योगयुक्तः सुसंयतः।
सूर्यस्य मण्डलं भित्वा याति ब्रह्म सनातनम्।26।।

इस प्रकार आठो अंगों को नियमपूर्वक पूरा कर योग से संयुक्त योगी होकर सूर्यमण्डल का भेदन कर सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

स एवमभ्यसेन्नित्यं वीतभीः[2] शान्त एव च।
वशीकृतरिपुग्रामः[3] सोऽमृतत्वाय कल्पते।।27।।

1. क. यह श्लोक अनुपलब्ध।2. घ. विनीतः। 3. वशीकृतेन्द्रियग्रामः।4. स याति परमां गतिं।

जो प्रति दिन इस प्रकार का अभ्यास करे, वह भयमुक्त तथा शान्त होकर सभी काम-क्रोधादि शत्रुओं को वश में कर अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है।

निरस्ताशेषदुरितः कामक्रोधादिवर्जितः।
एवमभ्यासयोगेन योगी याति परां[4] गतिम्।।28।।

सभी पापों का नाश कर काम, क्रोध आदि का त्याग कर इस प्रकार अभ्यास कर योगी परम गति को प्राप्त करते हैं।

कर्मयोगेन वा ज्ञानयोगेनाथोभयेन च।
प्राप्यते पुनरावृत्तिरहितं ब्रह्मशाश्वतम्।।29।।

कर्मयोग से, ज्ञान से अथवा दोनों से वह साधक पुनर्जन्म से रहित शाश्वत ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है।

करोत्यनुदिनं यस्तु तत्तत्फलगतस्पृहः।
जपहोमात्मकं कर्म समुन्नीयेत तत्फलम्।।30।।
सगुणं निर्गुणं चाथ ध्यायेद् यो रघुवंशजम्।[1]
कर्मानपेक्षध्यानेन स यात्येव परं पदम्।।31।।
ध्यानेन कर्मणा चैव योऽभ्यसेद्योगमन्वहम्।
स यात्येवोत्तमं स्थानं यद् गत्वा न निवर्तते।।32।।

जो प्रतिदिन कर्मों के फल के प्रति निःस्पृह होकर जप, होम आदि कर्म करते हैं अथवा उस फल को मन में लाकर सगुण अथवा निर्गुण श्रीराम का ध्यान करते हैं, वे कर्म के विना भी ध्यान से उस उत्तम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ जाकर कोई लौटता नहीं। ध्यान अथवा कर्म से जो प्रतिदिन योग का अभ्यास करते हैं, वे उत्तम स्थान को प्राप्त करते हैं, जहाँ पहुँच जाने पर पुनः कोई लौटता नहीं।

अतः[2] सुतीक्ष्ण यत्नेन योगी भव तपोनिधे।
व्रतोपवासनियमैः जन्मकोटिष्वनुष्ठितैः।।33।।
यज्ञैश्च विविधैः सम्यक् भक्तिर्भवति राघवे।
संसारसागरस्यास्य पारं प्राप्तुं यदीच्छसि।।34।।
कर्मयोगेऽथवा ज्ञानयोगे प्रविश सत्वरम्।

1. घ. रघुनन्दनम्।2. घ. ततः।

हे सुतीक्ष्ण! इसलिए योगी बनो। करोड़ो जन्मों में व्रत, उपवास आदि नियमों से तथा अनेक प्रकार के यज्ञों से श्रीराम में सम्यक् भक्ति का उदय होता है। इस संसार के समुद्र को यदि पार करना चाहते हो, तो कर्मयोग में अथवा ज्ञानयोग में शीघ्रता से प्रवेश करो।

सर्वदुःखाभिभूतानां भ्रान्तानां गतचेतसाम्।।35।।
त्राता स एव संसारे राघवः स्वयमेव हि।

सभी प्रकार के दुःखों से दुःखी, भटके हुए तथा चैतन्यहीन प्राणियों की रक्षा करनेवाले स्वयं श्रीराम है।

प्रक्षीणशेषपापानां ज्ञानयोगः प्रशस्यते।।36।।
कर्मयोगैस्तु सर्वेषां भवे निर्वाणसाधनम्।

जिनके सभी पाप नष्ट हो गये हैं, उनके लिए ज्ञान योग प्रशस्त हैं; किन्तु इस संसार में सबके लिए कर्मयोग के द्वारा मुक्ति का साधन मिल जाता है।

ज्ञानेन कर्मणा वापि रामं सम्यगिहार्चयेत्।।37।।
सुतीक्ष्णैतच्छरीरं तु क्षयिष्ण्वपि पतिष्णु च।[1]।
त्वगसृङ्मांसमज्जास्थिमेदश्शुक्रमयं तनुः।।38।।
शास्त्रोपपादितं सम्यगनुतिष्ठ सनातनम्।

ज्ञान से अथवा कर्म से इस संसार में श्रीराम की सम्यक् आराधना करनी चाहिए। हे सुतीक्ष्ण! यह शरीर विनाशशील है और संयमित करने योग्य है। त्वचा, रक्त, मांस, मज्जा, अस्थि, मेद और शुक्र से बना हुआ यह शरीर है इसलिए शास्त्रों में प्राचीन काल से जो विधान किया गया है, उसका पालन करो।

कर्मयोगं तथा ज्ञानयोगं वा योगवित्तम।।39।।
श्वः करिष्यामि कर्त्तव्यमिति कश्चिद् विचिन्तयेद्।
स्वस्यास्ये स्वयमेवार्य्य मन्दाक्षो धूलिं निक्षिपेत्।।40।।

हे योग के ज्ञाताओं में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! हे आर्य! 'कर्मयोग अथवा ज्ञानयोग मैं कल करूँगा' यह जो कोई सोचता है, वह अन्धा जैसा अपने मुँह पर धूल झोंक रहा है।

सम्यग्वैराग्यनिष्ठस्य पारतत्त्वस्थचेतसः।
छर्दितान्ननिभाः सर्वे दृश्यन्ते विषयाः स्वयम्।।41

1. घ. क्षयिष्णु पिपतिष्णु च।

शरीरित्वमपि प्रायो विरक्तस्यैव शोभते।
विरक्तस्य तदा स्यात्तु त्याज्यं सर्वात्मना भवेत्।।42।।

सम्यक् प्रकार से वैराग्य युक्त साधक जो परम तत्त्व में ध्यान लगाये हुए हैं, उन्हें सारे विषय वमन किये हुए पदार्थ के समान स्वयं दिखाई पड़ने लगते हैं। इस शरीर की भावना भी विरक्त को ही शोभा देती है। विरक्त के लिए यह शरीर भी शीघ्र ही हर प्रकार से त्याज्य है।

अत्यमेध्यशरीरस्थं विष्ठामध्यगतादपि।
तत्त्वनिष्ठो विशेषेण प्राणिनां मनुते हितम्।।43।।
शरीरेऽस्मिन्नमेधत्वमीदृशं नाम देहिनाम्।
त्वगाद्येकैकसंस्पर्शे स्नानमेव विशोधनम्।।44।।

अत्यन्त अपवित्र शरीर में स्थित इन्द्रिय विष्ठा के बीच रहनेवाले कीड़े के समान हैं, इस शरीर को तत्त्वज्ञानी विशेष रूप से प्राणियों का केवल उपकारक मानते हैं। प्राणियों में इस शरीर की ऐसी अपवित्रता होती है, अतः त्वचा आदि प्रत्येक का स्पर्श होने पर उसकी शुद्धि स्नान है।

शृगालैरपि गृध्रैश्च नीयते यद्यहो विधिः।
विधत्ते चर्मणा चैव शरीराणि शरीरिणाम्।।45।।
तत्तु प्रतिपदं सम्यगापदां पदमीदृशम्।
ततः शरीरं विश्वस्य न उदास्ते स मूढधीः।।46।।

सियार और गीध उस शरीर के टुकड़े टुकड़े कर ले जाते हैं, यही विधि का विधान है। वे ही अवयव शरीरधारियों में चमड़ा से ढँके हुए रहते हैं। वह शरीर प्रत्येक पग पर विपत्तियों का स्थान है, अतः जो शरीर पर विश्वास करते हुए शरीर से उदासीन नहीं रहते हैं, वे विद्वान् नहीं, मूर्ख हैं।

दुःखैकानुभवार्थाय विधिनैतत्कृतं वपुः।
परमार्थविदप्येतद् वीक्षमाणो र वीक्षते।।47।।
व्यामोहिते जगत्यस्मिन् माययैव महात्मनः।
विष्णोस्तत्त्वविदप्याशु देहान्तरमुपैत्यहो।।48।।
सुखबुद्ध्या दुःखमेव भूयोप्यनुभवेत् तु यः।

केवल दुःख का अनुभव करने के लिए विधाता ने इस शरीर का निर्माण किया है। परमार्थ के ज्ञानी भी इसे देखते हुए भी नहीं देखते हैं; क्योंकि इस संसार में महान् विष्णु की माया से ही वे व्यामोहित हैं। तत्त्वज्ञानी भी दूसरा शरीर पाकर पुनः मैं सुख भोग रहा हूँ, यह सोचते हुए बार-बार दुःख ही भोगने लगते हैं।

पतत्यकिञ्चनो भूत्वा कुटुम्बाभरणाकुलः।।49।।
भ्रमत्यैवातुरो भूत्वा दुःखावर्ते पुनः पुनः।
दुःखमित्यविजानाति दुःखं नैव तपोधन।।50।।
सर्वात्मना परित्याज्ये सर्वेषामपि दुःखदे।
प्रविशेत् को भवे मन्दे ततोऽप्यादौ पुनर्हतः।।51।।

वे अकिंचन होकर परिवार के भरण-पोषण में व्याकुल होते हुए इस संसार-चक्र में कूद पड़ते हैं और आतुर होकर बार-बार इसी दुःख रूपी भँवर में घूमते रहते हैं। यह संसार दुःखमय है, उसे वह जीव पहचान नहीं पाता है और दुःख के स्वरूप को भी नहीं जान पाता है। सभी प्राणियों को दुःख देनेवाले अतः हर प्रकार से त्यागने योग्य इस अभागे संसार में कौन प्रवेश करे! वे मन्दबुद्धि वाले जन्म के समय तो नष्ट होते ही हैं, पुनः मृत्यु के समय भी मारे जाते हैं; क्योंकि वे मुक्ति के लिए जीवन भर उपाय नहीं करते।

न किञ्चिदपि कर्मात्र निष्फलं विद्यते मुने।
इच्छेत् पुनः प्रवेशाय भवेन्मुक्तोऽपि वध्यते।।52।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! इस संसार में कोई कर्म निष्फल नहीं होता। तब यदि पुनः इस संसार में प्रवेश की इच्छा की जाती है तो मुक्त भी पुनर्जन्म के बन्धन से बँध जाते हैं।

अतो न कर्म कर्त्तव्यं फलार्थित्वेन शूरिभिः।
न चेत् पतन्ति संसारे दुःखावर्ते विमोहिताः।।53।।
यदि कर्तुः फलं तत्तदनपेक्ष्यार्चनादिकम्।
ईश्वरोऽपि समुद्धर्त्तुं शक्तो भवति नान्यथा।।54।।

अतः फल के प्रयोजन से विद्वानों के द्वारा कोई कर्म नहीं किया जाना चाहिए। अन्यथा, वह इस संसार में दुःख के भँवर में विमूढ़ होकर गिर पड़ते हैं। यदि उन अर्चना आदि से कर्ता को मिलनेवाले फल की अपेक्षा न हो, तो कर्म करना चाहिए। उसे ईश्वर ही उद्धार कर सकते हैं; अन्य प्रकार से उनका उद्धार नहीं हो सकता।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये प्राणायामविधिर्नाम विंशोऽध्यायः।।20।।

अथ एकविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अथातोहं प्रवक्ष्यामि गुह्याद् गुह्यतरं परम्।
यदशेषेण दुःखघ्नं तच्छृणुष्व तपोनिधे।।1।।
तत्प्राप्तिसाधनेनैव कर्मापीत्यपि चिन्त्यते।
कर्मणामीदृशं यस्माद् विहितं सुकृतं तथा।।2।।

अगस्त्य बोले– अब मैं अत्यन्त गूढ रहस्य बतलाता हूँ, जिससे सभी दुःख मिट जाते हैं। हे तपस्वी! इसे सुनें। उस परमात्मा की प्राप्ति के साधन के रूप में कर्म भी है, यह चिन्तन किया गया है; कर्म का स्वरूप ही ऐसा है कि यह विहित और अविहित रूप से दो प्रकार के होते हैं।

रहस्यमेतत् तन्नास्ति तदस्मन्मुक्तये कथम्।
यो यत्र वाधिकारत्वे चोदितस्तादृशो नहि।।3।।

रहस्य यह है कि कर्म का सत्ता ही नहीं है, तब वह कैसे हमारी मुक्ति के लिए उपयोगी होगा। जो कर्म जिस विनियोग के लिए कहा गया है, वह उसके अनुरूप नहीं है।

जगत्यपि धनं न्यायैरागतं क्व च मे वद।
ऋत्विजः कर्मतत्त्वज्ञाः यजमानहितैषिणः।।4।।

अब बतलाएँ कि इस संसार में कर्म के लिए न्यायोपार्जितत धन कहाँ से मिलेगा? यज्ञ में कर्म के मर्मज्ञ ऋत्विक् क्या यजमान का उपकार करते हैं?

क्व च तिष्ठन्ति मन्त्राश्च नियम्याध्यापिता पुनः।
अधीतानि यमेनापि सम्यग् वा पाठनं कुतः।।5।।
कथमेवंविधं कर्मफलं साधकमिष्यते।

फिर नियमपूर्वक पढ़ाये गये मन्त्र कहाँ है? कोई यम का पालन करते हुए पढ़ना भी चाहे, तो सम्यक् रूप से किससे पढ़े? तब इस प्रकार किये गये कर्म भला कैसे इष्टसाधक हो सकेगा?

यदर्थसाधकत्वेन यच्च यस्य प्रचोदितम्।।6।।
तत्रैवोक्तं प्रयत्नेन व्यङ्गं चेत् तदसाधनम्।[1]

जो कर्म जिस प्रयोजन के लिए साधन के रूप में कहा गया है, वही कर्म अपने अंग के लोप हो जाने पर असाधन हो जाता है।

(लोक में नियम है- **एकदेशविकृतमनन्यवत्**। अर्थात् यदि कुत्ते की पूँछ कटी हो, तब भी उसे कुत्ता ही कहेंगे, उसकी संज्ञा नहीं बदलती है, किन्तु कर्म के साथ यह विडम्बना है कि इसका एक अंग भी छुट जाये, तो वह साधन नहीं असाधन हो जाता है।)

कर्तुं कारयितुं वापि ब्रह्मा विष्णुर्महेश्वरः।।7।।
न शक्नोतीति[1] मे बुद्धिर्विहितं विधिवत् स्वयम्।
को वान्यो विधिवत् कर्म कृत्वेष्टं साधयेत् फलम्[2]।।8।।

सभी अंगों के साथ विधिवत् कर्म करने और कराने में तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश भी समर्थ नहीं होंगे, यह मेरी बुद्धि कहती है। तब दूसरा कौन है, जो स्वयं विधिवत् कर्म कर अभीष्ट फल पा सकेगा?

कर्म कर्ता कृतिश्चैव साधनानि बहून्यपि।
एतत्साध्यं फलं तेन सुखी भवति देहवान्।।9।।

कर्ता, कर्म, कृति और अनेक प्रकार के साधनों के द्वारा मनुष्य को कर्मफल मिलता है, जिससे वह सुखी होता है।

तेषां न्यूनातिरिक्ताभ्यां अतथा चोदिता सती।
विपरीतफलस्यैव[3] दात्री स्यात् कृतिरञ्जसा।।10।।

1. घ. न शक्तोस्तीति। 2. घ. पुनः।

कर्मों में न्यूनता और अधिकता हो जाने के कारण शास्त्रानुसार सम्पन्न न होने से कर्म शीघ्र ही विपरीत फल देने लगता है।

निर्मलीकरणं कर्म वदन्ति ह्यपि चेतसः।
तत्फलानर्थिभिः सम्यग्विहितं तदनुष्ठितम्।।11।।

कर्म के फल की प्राप्ति की कामना न रखनेवाले साधकों द्वारा भलीभाँति जो कर्म किया जाता है, वह चित्त को शुद्ध करने की प्रक्रिया है, ऐसा लोग कहते हैं।

योगाभ्यासदशायाञ्च तन्नित्यं कर्म नित्यशः।
नैमित्तिकनिमित्तेषु काम्यं नैव समाचरेत्।।12।।

योगाभ्यास करते समय नित्यकर्म प्रतिदिन करना चाहिए और नैमित्तिक के लिए किये जानेवाले कर्म के साथ काम्य कर्म नहीं करना चाहिए।

सम्यगुत्पन्नवैराग्यो यदा भवति देहवान्।
तदा सर्वं परित्यज्य कर्म मोक्षाय कल्पते।।14।।

भलीभाँति वैराग्य हो जाने पर प्राणी जब स्वयं को देहधारी समझता है, अर्थात् आत्मा से भिन्न शरीर का अस्तित्व मानने लगता है, तब वह सभी कर्मों का त्यागकर मोक्ष की इच्छा करने लगता है।

योगाभ्यासरतः शान्तो निर्द्धूताशेषकल्मषः।
ब्रह्मविद् ब्रह्म भवति परिव्राडेव नेतरः।।15।।
सर्वात्मना परित्यागो नास्त्यन्येषामतस्ततः।

योगाभ्यास में लीन होकर सभी पापों को जलाकर शान्तचित्त ब्रह्मज्ञानी परिव्राजक ब्रह्म ही हो जाता है, अन्य नहीं; क्योंकि अन्य लोग हर प्रकार से त्याग नहीं कर पाते हैं, इसलिए वे ब्रह्म को प्राप्त नहीं कर पाते हैं।

ब्रह्मचारिगृहारण्यवासिनां योगिनामपि।।16।।
सर्वात्मनामृतत्वेन ब्रह्मीभावो यतः परम्।[1]

गृहस्थों और वानप्रस्थियों में तथा योगियों में जो ब्रह्मचारी होते हैं, वे सभी प्रकार से अमरत्व से पूर्ण होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

परित्यक्तात्मदेहादिपत्नीपुत्रादिमानितः ।।17।।
स्वं देहमपि योऽमेध्यं विण्मूत्रमपि चिन्तयेत्।
यतिरुत्पन्नवैराग्यो ब्रह्मेति ब्रह्मवित्तमः।।18।।

1. घ. यतो भवेत्।2. घ. एक श्लोक अनुपलब्ध।

ऐसे व्यक्ति, जो शरीर, पत्नी, पुत्र आदि का अभिमान छोड़ चुके हैं, उनमें से अनन्य ब्रह्मचारी शरीर को अपवित्र मानते हुए उसे विष्ठा और मूत्र के समान सोचें। तब वैराग्य उत्पन्न होने के कारण जो यति हो जाते हैं, वे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ होकर ब्रह्मस्वरूप हो जाते हैं।

[2]कर्मावकाशलेशोऽपि मोक्षे नास्ति ततो मुने।
परमार्थविदो नूनं विरक्तस्य सुचेतसः।।

परमार्थ को जाननेवाले, विरक्त एवं निर्मल चित्तवाले मनुष्यों के लिए मोक्षमार्ग में कर्म के लिए थोड़ा सा भी स्थान नहीं है।

अमेध्यं दृश्यते सर्वं जगत् स्थावरजङ्गमम्।
कश्चित्किमर्थं यत्किञ्चित् कुर्याद् भ्रान्त इवात्मवान्।।19।।

यह स्थावर एवं जंगम रूप सम्पूर्ण जगत् ही अपवित्र दिखाई पड़ता है। कोई प्राणी इस जगत् में जो कुछ भी है, उसका प्रयोजन जानकर तथा आत्मा का ज्ञान पाकर भी कोई भ्रमित व्यक्ति के समान कर्म करता है।

को वामेध्यं परित्यक्तं पुनरङ्गे विनिक्षिपेत्।
विष्ठाशनः शूकरोऽपि न स्वविष्ठाशनो भवेत्।।20।।

कौन ऐसा प्राणी है, जो अपवित्र वस्तु का परित्याग कर उसे पुनः अपने शरीर पर डाले! विष्ठा खानेवाला सूअर भी अपनी विष्ठा तो नहीं खाता है!

स्वेनासत्त्वेन मुक्तस्य स चिन्तां किं करिष्यति।
जगत्यभ्युदयार्थं यद् भवेत् कर्म तथाविधि।।21।।
एतत् तत्त्वविदो न्यूनं न भ्रान्तस्य कदाचन।

जो अपने असत्त्व रूप शरीर से मुक्त हो चुका है, उसे चिन्ता किस बात की होगी? किन्तु इस संसार में अपनी उन्नति के लिए जो कर्म किये जाते हैं, वे तत्त्वज्ञानियों के लिए न्यून होते हैं न कि भ्रान्त लोगों के लिए।

इन्द्रियाणि शरीरं च वर्तन्ते मनसा समम्।।22।।
विषयेष्वेव तोयानि स्वतो न्यूनस्थलेष्विव।
दुःखमुत्पादयन्त्येव तदानीमायतावपि।।23।।

इन्द्रियाँ तथा शरीर मन के साथ संयुक्त होकर नीचे विषयों की ओर उसी प्रकार गिरने लगते हैं, जैसे जल हमेशा नीचे की ओर बहता है। ऐसी स्थिति में स्फीत स्थल में भी वे इन्द्रियाँ तथा शरीर दुःख ही उत्पन्न करते हैं।

1. घ. दुःखकृद्।

यो यस्य पापकृद्[1] वैरी स तस्येति स्थितिर्भवेत्।
तदन्ते वैरिणं ज्ञात्वा समीपेऽप्यपकारिणम्।।24।।
स तेनैव हतो भूत्वा प्राणानपि विमुञ्चति।

जो शत्रु है और पाप देनेवाला है, उसे लोग अपना (हित) बना लेते हैं, यही विडम्बना की स्थिति है। किन्तु देहान्त के समय में प्राणी समीप में स्थित अपकार करनेवाले शत्रु को जानकर भी उसी के द्वारा घायल होकर अपना प्राण भी त्याग कर देता है।

अतो यत्नेन देहादीन् कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः।।25।।
शोधयेद् विधिवत् सम्यक् न च तैरभिभूयते।

अतः यत्नपूर्वक देह आदि को कृच्छ्र एवं चान्द्रायण व्रत आदि के द्वारा विधानपूर्वक सम्यक् प्रकार से शुद्ध करें, इससे वह साधक इन्द्रियों के द्वारा पराजित नहीं होता है।

यदि तैरभिभूतः स्यात् स्वस्यापि प्रियमप्रियम्।।26।।
न वेत्ति विषयाविष्टो नरकं प्रतिपद्यते।

यदि वह शरीरादि से पराजित हो जाता है, तब अपन प्रिय और अप्रिय भी नहीं जान पाता है और विषय में लिप्त होकर नरक का भागी बनता है।

ततः कर्मविपाकेन तरुगुल्मलतादिकम्।।27।।
सम्प्राप्य कृमिकीटादिजन्तुत्वं प्रतिपद्यते।[1]
ग्रामारण्यपशुत्वं च यच्च यावच्चराचरम्।।28।।
समुपेत्य विनष्टात्मा मानुष्यं प्रतिपद्यते।[2]

ऐसा होने पर कर्म के परिणामस्वरूप वृक्ष, झुरमुट, लता आदि के रूप में तथा कीड़े-मकोड़े के रूप में जन्तु का शरीर प्राप्त करता है। वह पालतू और जंगली जानवर के रूप जन्म लेकर जितने स्थावर और जंगम प्राणी हैं, उसके रूप में जन्म लेते हुए आत्मज्ञान के नष्ट हो जाने पर मनुष्य की योनि में जन्म लेते हैं।

ततः पुराकृतं स्वस्य दुःखदं कर्म विस्मरन्।।29।।
करोत्यनिष्टं सततं हितं नैव समाचरेत्।
ततोऽयन्नारकी भूत्वा पुनरेवं प्रपद्यते।।30।।

1. घ. में अनुपलब्ध। 2. घ. मनुष्यत्वं प्रपद्यते।

भूयो भूयोऽप्येवमेव चक्रवत्परिवर्तते।

तब पूर्वजन्म में अपने किये गये दुःखप्रद कर्मों को भूलते हुए हमेशा गलती ही करता रहता है और कल्याणकारी कार्य नहीं करता है। तब वह जीव नरक प्राप्त कर फिर इसी प्रकार उत्पन्न होता है। बार बार इसी प्रकार चक्र के समान परिवर्तन होता रहता है।

विहितं च निषिद्धं च सः कर्म विदधीत वै।।31।।
संसारान्न निवर्तन्ते कदाचिदपि दुःखितः।

अतः शास्त्र में जिस कर्मकाण्ड का विधान किया गया है अथवा जिसे निषिद्ध माना गया है, उन्हें जो करते हैं, वे दुःखी इस संसार से छुटकारा नहीं पाते हैं।

न ज्ञानव्यतिरेकेण मुक्तये साधनान्तरम्।।32।।
सुतीक्ष्ण विद्यते तत्त्वज्ञाननिष्ठो भवानघ।
तद्योगेनैव भवति योगोऽप्यभ्यासपूर्वकः।।33।।
अभ्यासोऽपि यमाद्यैश्च जायते नान्यथा मुने।

अतः हे निष्पाप सुतीक्ष्ण! ज्ञान को छोड़कर मुक्ति का दूसरा साधन कुछ भी नहीं है, अतः तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करो। यह ज्ञान योग से होगा तथा योग भी अभ्यास करने से होगा। यह योगाभ्यास भी यम आदि का पालन करने से होगा अन्य विधि से नहीं।

अधीत्य वेदशास्त्राणि[1] विरक्तैः सात्त्विकैश्च तैः।।34।।
यमादयोऽनुष्ठीयन्ते त्यक्तदेहाभिमानिभिः।

वेद और शास्त्रों का अध्ययन कर विरक्त और सात्त्विक प्रवृत्ति के लोगों द्वारा अपने शरीर का अभिमान छोड़ देने पर यमादि का पालन किया जाता है।

स्वदेहाभिमानोऽपि तेषामेव न विद्यते।35।।
नित्यानित्यार्थतत्त्वज्ञाः शान्ताश्च यतयोऽपि ये।

यह नित्य है और यह अनित्य है, इसका जिन्हें ज्ञान हो गया है, ऐसे शान्त यती को ही अपने शरीर का अभिमान नहीं रहता है।

मुक्तये न परो मार्गो मुक्तये न परन्तपः।।36।।
मुक्तये न परं ध्यानं ततोन्यन्नास्ति किञ्चन।

---

1. घ. वेदशास्त्रार्थं।

मुक्ति के लिए दूसरा कोई मार्ग नहीं, दूसरा कोई तप नहीं, दूसरा कोई ध्यान नहीं। इस ज्ञान के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

यदि त्वमुपपद्यैव देहादौ ममतामपि।।37।।
त्यज कर्माखिलं सम्यक् यदि मुक्तिमपेक्षसे।

इस प्रकार, यदि मोक्ष चाहते हो, तो ज्ञान प्राप्त कर शरीर इन्द्रिय आदि के प्रति ममता का त्याग करो और सभी कर्मों का भी त्याग करो।

जानीहि सम्यगात्मानमन्तरे त्वं निरन्तरम्।।38।।
मूलाधारे च हृदये द्वादशान्ते स्थितो हि सः।
यावदन्तर्बहिः सर्वं व्याप्य रामः प्रकाशते।।39।।
देहादिषु गतेष्वेकं स्वयमेवावशिष्यते।
ततस्त्वतः परं कञ्चिद् विद्यते न तपोधन।।40।।

आत्मा को भलीभाँति जानो और हमेशा उसे अपने अन्तःकरण में स्थित जानो। वह परमात्मा मूलाधार, हृदय और द्वादश चक्र के अन्तस् में स्थित है। भीतर बाहर जो कुछ भी है, उनमें श्रीराम व्याप्त होकर उन्हें प्रकाशित करते हैं। शरीर आदि के नष्ट हो जाने पर भी एकमात्र श्रीराम शेष रह जाते हैं। हे तपोधन सुतीक्ष्ण! इसलिए इसके ऊपर कुछ भी नहीं है। श्रीराम परम सत्ता हैं।

एवं च सति दुःखञ्च संसारोऽप्यस्थितो मुने।
यतित्वव्यतिरेकेण यो यतेत स मूढधीः।।41।।
दुःखात्यन्तनिवृत्तौ च विना वा ब्रह्मविद्यया।
सर्वात्मना हि सर्वेभ्यो विषयेभ्यो निवर्तनम्।।42।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! इस प्रकार श्रीराम को परम सत्ता के रूप में जान लेने पर दुःखमय यह संसार अस्तित्वहीन हो जायेगा। यति धर्म के विना जो भी इसके लिए यत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं। अथवा, ब्रह्मविद्या के बिना दुःखों की पूर्ण निवृत्ति के लिए तथा हर प्रकार से सभी विषयों से छुटकारा पाने के लिए भी जो यत्न करते हैं, वे मूर्ख हैं।

ब्रह्मविद्यासमायुक्तं यतित्वं मुक्तिसाधनम्।
तत्त्वतो न परं किञ्चित् साधनं मुक्तयेऽस्ति हि।।43।।

ब्रह्मविद्या से युक्त जो यति धर्म है, वह मुक्ति का साधन है। वस्तुतः इससे आगे ऐसा कोई साधन नहीं है, जो मोक्ष के लिए हो।

अतस्तदयनं सर्वं मङ्गलं सर्वसिद्धिदम्।
यथा भागीरथी गङ्गा सागरेण समं गता।।44।।
पुनाति पतितान् ब्रह्मविद्यापि भुवनत्रयम्।

इसलिए वह समस्त मंगलमय तथा सारी सिद्धि देनेवाला मार्ग है। जैसे सगर के वंशज भगीरथ द्वारा लायी गयी गंगा पतितपावनी है, उसी प्रकार, ब्रह्म विद्या तीनो लोकों को पवित्र करती है।

यतिदर्शनमात्रेण योगाभ्यासपरायण।।45।।
सम्यग् ब्रह्मविदां श्रेष्ठ[1] निर्मली कुरुते जगत्।

हे योगाभ्यास में लीन सुतीक्ष्ण! हे ब्रह्मज्ञानियों में श्रेष्ठ! यतियों के दर्शनमात्र से यह संसार पवित्र हो जाता है।

प्रायश्चित्तं पुनात्याशु यथा द्वादशवार्षिकम्।।46।।
विधिवत् स्वीकृतं सम्यग् यतित्वं च तथा सताम्।
[2]अतः सर्वात्मना ब्रह्मकैवल्यं नित्यमभ्यसेत्।।47।।

जिस प्रकार, बारह वर्ष तक का प्रायश्चित्त शीघ्र पवित्र करता है, उसी प्रकार सज्जनों द्वारा आचरित विधानपूर्वक, शास्त्रानुमोदित सम्यक् यति धर्म पवित्र करता है। अतः सभी प्रकार से ब्रह्म-कैवल्य का नित्य अभ्यास करना चाहिए।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये ब्रह्मविद्यानिरूपणं नामैकविंशोऽध्यायः।।

अथ द्वाविंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच।

योगो नाम किमेतन्मे ब्रूहि योगविदां वर।
चेतसो विजयः केनोपायेन स्यान्मुनीश्वर।।1।।

सुतीक्ष्ण बोले- हे योगिराज! अगस्त्य! योग क्या है? यह मुझे बतलाएँ और मन पर विजय कैसे मिलेगा?

1. घ. ब्रह्मविदश्चैव।2. घ. में अनुपलब्ध।3. घ. स्यात्तथा ततः।

अगस्त्य उवाच।

समीरणाः शरीरान्तर्निरुद्धा येन यत्नतः[3]।
मनोप्येवं निरुद्धः स्यात् तदात्मनि समीहते।।2।।

अगस्त्य बोले- 'जिस प्रकार के प्रयास से वायु शरीर के भीतर रोक लिए जाते हैं, उसी प्रयत्न से मन भी आत्मा में समाहित हो जाता है।'

ज्ञानानन्दरसास्वादस्तस्मान्नैव निवर्त्तते।
अनायासेन मनसो निश्चलत्वमुपेक्षसे।।3।।
तदापानं समुत्कृष्य प्राणेनानीय योज्यताम्।
प्राणापानौ समौ कृत्वा[1] चित्तमप्यात्मनिस्थितम्।।4।।
सुखमास्वादयत्येव द्वादशार्णाब्जनिःसृतम्।
तदास्वादं परः शश्वत् कदाचिदपि न त्यजेत्।।5।।

ज्ञानानन्द के रस का स्वाद पा लेने पर मन आत्मा से फिर लौटता नहीं। तब अनायास ही मन की निश्चलता की अपेक्षा होने लगती है। इसके बाद साधक प्राणवायु को खींचकर अपान वायु को भी खींच लेता है और अन्यत्र मन को नहीं लगाता है। तब प्राण और अपान वायु को समान कर चित्त को आत्मलीन कर द्वादशदल कमल से निःसृत अमृत के स्वाद को चख लेता है। इस परम स्वाद को एक बार पा लेने पर उसे कभी नहीं छोड़ता है।

आदावेतानि जानीहि शरीरोत्पत्तिकारणम्।
उत्पत्तिमथ संस्थानं क्रमं कर्त्तारमात्मनः।।6।।

सबसे पहले अपनी शरीरोत्पत्ति के ये कारण जानो। उत्पत्ति, स्थिति, उसका क्रम और कर्त्ता को जानो।

अनादिरेव संसारोऽदृष्टमात्रं तु कारणम्।
विधिस्तदनुरूपेण विद्यत्ते निग्रहान् किल।।7।।
स्वस्यादृष्टैश्च बहुधा नानारूपेण भेदिताः।
सर्वेषामपि संख्यातं तेषां नास्ति तपोनिधे।।8।।
आत्मानो बहवोऽनन्ताः श्रुतिरित्येवमब्रवीत्।

अपने अपने भाग्य के फल के कारण अनेक प्रकार के अनेक रूपों में पृथक् किए गये जीव होते हैं। आत्मा के अनन्त रूप हैं- ऐसा श्रुति वचन है, इसलिए सभी जीवों की संख्या निश्चित नहीं है।

---

1. घ. युक्तौ।

संसारब्धेरनादित्वात् सम्यज्ज्ञानोदयावधि।।9।।
एतावदप्यहोऽनन्तदुःखमेवानुभूयते ।

अनादि होने के कारण इस संसार रूपी दुःख को भी तबतक जीव अनुभव करता है, जबतक उसमें ज्ञान का उदय नहीं हो जाता।

उद्भिजान्यण्डजान्याहुः स्वेदजानि विपश्चितः।।10।।
जरायुजानि बहुधा चातुर्द्धा भेदितान्यपि।

उद्भिज, अण्डज, स्वेदज और जरायुज, ये चार प्रकारों में बँटे जीव अनेक प्रकार से उत्पन्न होते हैं।

सम्यङ्महीमधिष्ठायोद्भिज्ज्ञायत इत्यथ।।11।।
पाञ्चभौतिकरूपाणि तृणादीनि तु तान्यथ।
पत्रपुष्पफलस्कन्धशाखाभेदेन बोधत।।12।।

अच्छी तरह पृथ्वी में रहने वाले तथा उसे भेदकर उगनेवाले पाँच भूतों के स्वरूप तृण आदि भी जो हैं, वे भी शरीर रूप हैं, जिन्हें पत्र, पुष्प, फल, तना और डाल के रूप में भिन्नता लिए जानो।

अण्डजान्यपि गोधादिरूपेणैषामवस्थितिः।
सुप्रसिद्धे च चान्यानि स्वेदजानि तपोनिधे।।13।।
यूकाकीटादिरूपाणि प्रक्षीयन्ते क्षणे क्षणे।

छिपकिली आदि के रूप में जिनकी अवस्थिति होती है, वे अण्डज हैं तथा दूसरे स्वेद से उत्पन्न स्वेदज जूँ, कीड़े आदि रूप में क्षण क्षण नष्ट होते हैं। ये दोनों रूप प्रसिद्ध हैं।

जरायुजान्यथोत्पत्तिं प्राप्नुवन्ति प्रभावतः।।14।।
स्वस्यादृष्टस्य पक्वस्य भुक्तिप्रक्षीणस्य चात्मनः।
स्त्रीपुंसोर्ग्राम्यधर्मेण जायेते शुक्रशोणिते।।15।।
तदुक्तरसरूपेण देहमस्य[1] प्रजायते।

अब जरायुजों के विषय में कहता हूँ कि अपने अदृष्ट का फल जब पक जाता है और भोग शेष हो जाता है, तब उसके प्रभाव से जन्म लेते हैं। स्त्री और पुरुष के संभोग से शुक्र और शोणित उत्पन्न होते हैं, उस कहे गये रस के रूप में इसका शरीर उत्पन्न होता है।

---

1. घ. तत्त्वमस्य।2. घ. वाय्वग्निजलदेहजः।

यथाग्निरनिलं प्राप्य स्वाकारमधिगच्छति।।16।।
एवं शुक्रमयो जीवः शोणितं स्वस्य कर्मणा।
सम्प्राप्य योषितः सम्यग् वासनोभयदेहजः[2]।।17।।
योषातः पुरुषोत्पन्नं मलाभ्यामपि तत्त्ववान्।

जैसे अग्नि हवा पाकर अपना स्वरूप प्राप्त करता है, उसी प्रकार शुक्रमय जीव अपने कर्म के प्रभाव से योनि से निःसृत शोणित को पाकर वासना के कारण स्त्री और पुरुष के शरीर से उत्पन्न होकर पुष्ट होने के कारण पुरुष से उत्पन्न दोनों मलों (शुक्र और शोणित) से भी तत्त्व युक्त रहता है।

सोऽयं प्रविश्य गर्भान्तर्मरुदग्न्यद्भिरत्र तु।।18।।
क्लेद्यते क्वाथ्यते सम्यक् शुक्रशोणितवृद्धितः।
तत्सामान्येन जायन्ते नरनारीनपुंसकाः।।19।।

शुक्र और शोणित की वृद्धि से उत्पन्न होकर यह गर्भ के भीतर प्रविष्ट होकर वायु, अग्नि और जल के द्वारा भींगता है, उबलता है। इस तरह सामान्य रूप से नर, नारी और नपुंसक जन्म लेते हैं।

सोऽयमेवंविधाकारो मातुर्गर्भे[1] प्रवर्तते।
प्रतिक्षणं प्रतिदिनं प्रतिमासं तथाविधः।।20।।
घनीभूतस्तदत्रैव मातुर्भुक्तरसात्मवान्।
अङ्गुष्ठवदथायामी जलबुद्बुदवद् दिने।।21।।
द्वितीयेऽप्येवमेवायं वर्द्धते प्रतिवासरे।

इस प्रकार इस प्रकार के आकार का यह जीव माता के गर्भ में प्रतिक्षण, प्रतिदिन और प्रतिमास लगातार बढ़ता रहता है तथा माता के द्वारा खाये गये रसों से स्वयं सम्पुष्ट होता हुआ यही गर्भ में ठोस होकर अँगूठे के आकार का जल के बुलबुले के समान दिनानुदिन बढ़ता हुआ दूसरे मास में भी यह उसी प्रकार प्रतिदिन बढ़ता है।

अवाङ्मुखोऽप्यथावृत्ता नाडी काचिद् ऋजुर्भवेत्।।22।।
तत्पक्षोभयसम्बन्धे द्वे अन्या सप्तनाडयः।
तासु या प्रथमं स्वस्याः सुषुम्णेति च गीयते।।23।।

---
1. घ. मर्त्यो गर्भे।

वामाङ्गेडा पिङ्गला स्याद् दक्षिणस्था तथोत्तरा।
गान्धारी हस्तजिह्वा च सपुष्पालम्बुषास्तथा।।24।।

नीचे की ओर मुख करके वह जीव रहता है। इसके बाद चारों ओर लिपटी हुई नाडी सीधी हो जाती है। वह दो भागों में बँट जाती है तथा अन्य सात नाड़ियाँ भी उत्पन्न होती हैं। इन नाडियों में पहली अपनी नाड़ी है, जिसे सुषुम्णा कहते हैं। वाम अंग में ईडा, दाहिने अंग में पिंगला, ऊपर में गांधारी, हस्तजिह्वा, सपुष्पा एवं अलम्बुषा नाडियाँ होती है।

यशस्विनी शङ्खिनी च हूहूरिति दश क्रमात्।
या तासु मध्यमा तस्याः सुषुम्णायाः पृथक् पृथक्।।25।।
प्लवन्ति पञ्चपर्वाणि तेभ्यो लक्षत्रयं पुनः।
लक्षार्द्धञ्च शिरा जाताः शरीरं व्याप्नुवन्ति च[1]।।26।।

इसके अतिरिक्त यशस्विनी, शंखिनी और हूहू ये मिलकर क्रमशः दस नाड़ियाँ हैं। उनमें जो मध्यमा नामक नाड़ी उसकी स्थिति सुषुम्णा से पृथक् होती है। इनमें पाँच गाँठें तैरती रहती हैं, जिनसे तीन लाख नाड़ियाँ उत्पन्न होती हैं और पचास हजार शिराएँ उत्पन्न होकर शरीर में फैल जाती हैं।

देहेस्मिन् दश विज्ञेया जलस्याञ्जलयो मुने[2]।।
रसस्य नव षट्कैव पुरीषस्य प्रकीर्तिताः।।27।।
रक्तस्याञ्जलयोऽप्यष्टौ षट् श्लेष्माण उदाहृताः।
पित्तस्यापि तथा पञ्च मूत्रस्यापि शरीरके।।28।।
चत्वारोऽत्र वसायाश्च त्रयो द्वे मेदसस्तथा।
एकोऽर्द्धं चापि मज्ञायाः रेतसस्तावदेव हि।।29।।
श्लेष्मौजसोप्येमेवमेभिर्देहो निबध्यते।

इस शरीर में दस जल के गढ़े होते हैं। रस के नौ तथा विष्ठा के छह गढ़े होते हैं। रक्त के आठ गढ़े होते हैं, जिनमें छह छोटे होते हैं। पित्त के पाँच, मूत्र के चार, वसा के तीन और मेद के दो गढे होते हैं। मज्ञा का एक और आधा गढ़े होते हैं और रेत के भी उतने ही होते हैं। श्लेष्मा और ओजस् के भी इतने ही होते हैं। इन सबसे यह शरीर बँधा हुआ रहता है।

1. घ. प्राप्नुवन्ति।2. घ. जलस्य मुनिपुंगव।

दिने दिनेऽप्येवमेव वर्द्धतेऽङ्गं तपोनिधे।।30।।
पूर्वमाभिर्भवन्त्येव शिरःपादौ करावपि।
आधिः स्यान्महती तस्य षडङ्गेन्तरेष्वेव तु।।31।।
वागक्षिनासिकाः कर्णत्वक्कपोलं च हनुद्वयम्।।
चिबुकं दन्तपंक्तिश्च जिह्वा चैवोपजिह्विका।।32।।
शिरःकेशास्तथा कण्ठं स्कन्धं कूर्परपाणयः।
नखांश्चाङ्गुलयः कक्ष उरः पार्श्वद्वयं तथा।।33।।
पृष्ठमप्युदरं नाभिः कटिस्फिच्च[1] गुदादिकम्।।
ऊरू च जानुनी जंघे पादावङ्गुलयस्तथा।।34।।
रोमाण्येतच्छरीरं तच्चर्मणाच्छादितं मुने।

हे तपोनिधि सुतीक्ष्ण! इस प्रकार क्रमशः अंग बढ़ते हैं। सबसे पहले शिर, पैर और दोनों हाथ प्रकट होते हैं। इस प्रक्रिया छह अंगों के भीतर अत्यधिक कष्ट होता है। अंगों में वाणी, आँख, नासिका, कान, त्वचा, कपोल, टुढी, चिबुक, दन्तपंक्ति, जिह्वा, लबलबी, शिर के केश, कण्ठ, कन्धा, केहुनी, हाथ, नाखून, अंगुलियाँ, दोनों काँख, छाती, दोनों पंजर, पीठ, उदर, नाभि, कमर, कूल्हा, गुदा आदि, दोनों घुटने, दोनों जाँघें, पैरों की अंगुलियाँ और रोम, इन अवयवों से शरीर बनता है और चर्म से ढँका रहता है।

बहिरन्तश्चरन्तोऽमी वायवश्चालयन्ति च।।35।।
देशाद् देशान्तरं देहे सप्तधातूनविद्रुतम्।

इस शरीर को बाहर भीतर चलते हुए वायु चलाते हैं। यही वायु शरीर में तेजी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक सातो धातुओं को भी चलाते हैं।

वायवः पंच देहस्थाः पृथगेव प्रकीर्तिताः।।37।।
प्राणाख्यो हृदये वायुरपानाख्यो गुदे स्थितः।
समानाख्योऽपि नाभौ स्यादुदानः कण्ठदेशतः।।38।।
आपादमस्तकं व्यानः समस्तं व्याप्य[2] तिष्ठति।

शरीर में स्थित पाँच वायु अलग अलग ही अवस्थित रहते हैं। 'प्राण' नामक वायु हृदय में, 'अपान' नामक गुदा में 'समान' नामक नाभि में और 'उदान' नामक कण्ठस्थल में रहते हैं। 'व्यान' नामक वायु सिर से पैर तक सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त रहता है।

1. घ. स्फिकोपस्थ।2. घ. समभिव्याप्य।3. घ. कृकरो।

नागः कूर्मोऽथ कृकलो[3] देवदत्तो धनञ्जयः।।39।।
वायवो दश देहेऽस्मिन् सप्तधातुषु संस्थिताः।
सप्तैवान्येषु दोषेषु स्वेदक्लेदान्तगामिनः।।40।।

इसके अतिरिक्त सात धातुओं में नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त और धनंजय ये पाँच वायु हैं। ये दश वायु शरीर में होते हैं। दूसरे दोष उत्पन्न करनेवाले सात वायु हैं, जो पसीना और मूत्र के अंग में रहते हैं।

एवं शरीरमासाद्य प्रसूतिसमये भृशम्।
स्वमातरं व्यथयन्ननन्तमुदरे विनिवर्तते।41।।
नवमे दशमे मासि शरवन्निःसरेदपि।
पूयशोणितविण्मूत्रपरीताङ्गोऽथ सज्वरः।।42।।
योनेरवनिमासाद्य क्लेशातिशयमोहितः।
रोदित्युच्चैर्विषण्णः सन् विस्मरेच्च मनोगतम्।।43।।

इस प्रकार, शरीर प्राप्त कर जीव समय होने पर प्रसव के समय बार बार अपनी माता को अनन्त कष्ट देता हुआ उसके उदर में पहुँच जाता है और नवम या दशम मास तीर की तरह बाहर निकल जाता है, अर्थात् जन्म लेता है। मवाद, शोणित, विष्ठा और मूत्र से लिपटा तथा तप्त शरीर वाला शीघ्र ही योनिद्वार से ही जन्म लेकर अत्यधिक कष्ट से व्याकुल होकर जोर-जोर से रोता है और अपने मन की सभी स्मृतियों को वह भूल भी जाता है।

अमृतत्वमनावृत्तिलक्षणं साध्यमात्मनः।
तत्त्वज्ञानबहिर्भूतो भूयो भूयो विमोहितः।।44।।
आत्मानमपि विस्मृत्य बहिरेव प्रधावति।
क्षुत्पिपासातुरो नित्यं स्तनमेव किलेच्छति।।45।।

अपने अभीष्ट, अमृत नामक मोक्षस्वरूप ब्रह्म को वह जीव भूल जाता है और बाहर की ही ओर दौड़ पड़ता है; क्योंकि वह उस तत्वज्ञान से बहिर्भूत होकर बार बार मोहित हो जाता है। भूख और प्यास से व्याकुल होकर वह स्तन ही चाहता है।

दिने दिने वर्द्धमानः पक्षे मासि ऋतावपि।
तत्तत्कालोक्तविषयैः सम्यगाविष्कृतो भवेत्।।46।।
पितृभ्यो बन्धुभिः सम्यक् कायो नित्यं प्रमोदितः।

संवर्द्धितः शश्वदयं वर्षे वर्षे प्रयत्नतः।।47।।
यद्धितं स्वस्य सततं तदानीमायतावपि।
तत्सर्वं सम्परित्यज्य बहिरेव प्रवर्त्तते।।48।।

दिनानुदिन पक्ष मास और ऋतु के अनुसार बढ़ता हुआ वह उन उन समय के लिए उक्त विषयों के द्वारा भली भाँति प्रकट हो जाता है। वह शरीरधारी पिता, भाई के साथ प्रतिदिन प्रसन्न होता है। वह साल दर साल बढ़ता हुआ, उसका जो हमेशा कल्याणकारी है, उस परमधाम तथा परमेश्वर का साथ छोड़कर बाहर ही दौड़ता है।

यद्ययं सर्वमुत्सृज्य पश्येदात्मानमात्मनि।
एतावतेव संसारभवदु:खैर्विमुच्यते।।49।।

यदि वह जीव सब कुछ छोड़कर आत्मा में अपने को देखे, तो इससे ही वह संसार में जन्म लेने के दुःखों से मुक्त हो जाता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये शरीरोत्पत्तिर्नाम द्वाविंशतितमोऽध्यायः।।

अथ त्रयोविंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अद्वैतानन्दचैतन्यशुद्धसत्त्वैकलक्षणः ।
बहिरन्तः सुतीक्ष्णात्र स्वयमात्मा प्रकाशते।।1।।
अनाद्यसृष्टमेवात्र[1] कारणन्तत्र गोपते।
न्यूनं वाप्यतिरिक्तं वा सर्वत्रापि तपोनिधे।।2।।

हे सुतीक्ष्ण! अद्वैत, आनन्दस्वरूप, चैतन्यस्वरूप, शुद्ध, सत्त्व, आ एकत्व इन छह लक्षणों वाली आत्मा स्वयं मनुष्य के भीतर और बाहर प्रकाशित रहती है। इस आत्मा का कारण अनादि और अदृष्ट है, जो चाहे कम मात्रा में हो या अधिक मात्रा में, सभी स्थितियों में आत्मा में प्रकाशित होती है।

आधिक्ये विषयैर्न्नित्यं बहिरेव प्रतीयते।
न्यूनेऽपि विषयात्यन्ता प्राप्या तस्माद् बहिर्भवेत्।।3।।

1. घ. अनाद्यसृष्टमेवात्र।

आत्मा के कारणों की अधिकता होने पर आत्मा विषयों के साथ बाह्य रूप में प्रतीत होती है और कारणों की न्यूनता होने पर विषयादि के साथ संयुक्त होकर उससे बाहर हो जाती है।

अतो जानीहि चात्मानमात्मन्येव निरन्तरम्।
आसक्तो विषयैर्न्नित्यं स्वस्यादृष्टोपकल्पितैः।।4।।
यत्र यद्यत् प्रपञ्चेऽस्मिन् जङ्गमाजङ्गमात्मके।
तत्र सर्वत्र चैतन्यं तिष्ठत्येवं निरन्तरम्।।5।।

इसलिए आत्मा को निरन्तर आत्मा में ही स्थित जानो, किन्तु अपने भाग्य के कारण जीव इस मिथ्या विषयों के साथ आसक्त हो जाता है। यह आसक्ति इस स्थावर और जंगम रूप संसार में जहाँ जहाँ होती है, उन सभी जगहों पर निरन्तर चैतन्य की सत्ता अवश्य होती है।

कार्यात्मना प्रपञ्चोऽयं चैतन्यं कारणात्मना।
अनुस्मृतं हि सर्वत्र भूतानाञ्चात्र भौतिके।।6।।
स्वयमेवात्र चैतन्यं तस्मादन्यन्न किञ्चन।

यह प्राणियों का यह भौतिक संसार कार्य रूप है और चैतन्य कारण रूप में सर्वत्र अनुभव किया जाता है। यहाँ स्वयं चैतन्य की सत्ता है और उससे परे दूसरे कुछ भी नहीं है।

परमात्मा च जीवात्मा ब्रह्म सच्च तदोमिति।।7।।
ज्ञानमानन्दमित्येत् सर्वं चैतन्यवाचकम्।
चैतन्यान्न परं किञ्चिद् दृश्यते सर्वजन्तुषु।।8।।

परमात्मा, जीवात्मा, ब्रह्म, सत्, ॐकार, ज्ञान, आनन्द- ये सबके सब चैतन्य के वाचक हैं। चैतन्य से परे सभी प्राणियों में कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता है।

प्रबुद्धस्याप्रमत्तस्य पृथिवीव घटादिषु।
अतः शुद्धं पृथिव्यादौ दृश्यते सर्वदेहिनाम्।।9।।
अदृष्टं कल्पयेद्यत्र स्वीयं स्वस्मिन् भवेदिह।

जो प्रबुद्ध हैं और अहंकारी या पागल नहीं हैं, उनकी दृष्टि में जिस प्रकार घट आदि में पृथिवी तत्त्व है, उसी प्रकार सभी प्राणियों के अन्तस्तत्त्व पृथ्वी आदि पाँच तत्त्वों में दृष्टिगोचर होते हैं। अदृष्ट आत्मा की जहाँ कल्पना की जाती है, वहाँ स्वयं में अपनी आत्मा होती है।

प्रेमादिर्जायते लोके स्वस्मिन् वा स्वोपकारके।।10।।

न चेन्नैव समीचीनं यदन्यद् तद् विलोक्यते।

विलक्षणानि भूतानि तत्तत् कार्यं तथाविधम्।।11।।

स्वीये स्वस्मिन्निवाचारः कथं तत्परिशोधय।

इस संसार में स्वयं से अथवा अपना उपकार करनेवालों से प्रेम आदि हो जाते हैं। यदि न हो तो यह भी ठीक नहीं है; क्योंकि दूसरे प्राणियों में भी ऐसा देखा जाता है। ये प्राणी भी अजीब हैं। उनके वे प्रत्येक कार्य उन्हीं के जैसे होते हैं। अपने से सम्बद्ध पदार्थों में अपने जैसा व्यवहार तथा उस व्यवहार का शोधन कैसे होगा?

श्रुतिस्मृतिपुराणेषु सर्वत्र प्रतिपादितम्।।12।।

सर्वात्मनापि चैतन्यं सर्वमात्मनि नापरम्।

वेद, स्मृति और पुराणों में सर्वत्र यह प्रतिपादित किया गया है कि आत्मा के कारण चैतन्य है और वह चैतन्य आत्मा में स्थित है, वह भिन्न नहीं है।

सुतीक्ष्ण उवाच

कथं तत्त्वज्ञ सर्वेषां नैवं रूपेण दृश्यते।

कदाचिदपि कस्यापि यथैतच्चेदृशं वद।।13।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे तत्त्वज्ञानी अगस्त्य! इस प्रकार से सभी प्राणियों का चैतन्य क्यों नहीं दिखाई पड़ता है? कभी कभी किसी की दृष्टि में जिस प्रकार उपर्युक्त तथ्य प्रकट होते हैं, यह कहें।

अगस्त्य उवाच

लोके तत्तन्न जानाति यद्यदेवाभिमर्षितम्।

तत्तज्ज्ञानादृष्टहान्या तत्रैवान्तर्हितं तपः।।14।।

अगस्त्य बोले- इस संसार में जो विषय सम्पर्क में नहीं आते, उन विषयों को लोग नहीं जान पाते हैं। उन विषयों के सम्पर्क से ज्ञान हो जाने पर तथा भाग्य क्षीण हो जाने के कारण तप अर्थात् इन्द्रिय निग्रह आदि तिरोहित हो जाते हैं अर्थात् जीव विषयों में रम जाता है।।

बुभुत्सुः कर्मतत्त्वज्ञो दृष्टिमानप्रमादितः।
यदि पश्येत् परं ज्योतिरेकं सर्वत्र पश्यति।।15।।

कर्म के तत्त्वों को जाननेवाला भोग चाहनेवाला भी यदि सावधान होकर दृष्टि रखते हुए देखे तो उस एकमात्र परम ज्योति का दर्शन सर्वत्र करेगा।

यद्यनन्यमनाः पश्येद्दिदृक्षुर्विषयेष्वपि।
तच्चैतन्यं वरं पश्येन्नान्यत् किञ्चिदपि स्वयम्।।16।।

यदि चैतन्य का दर्शनाभिलाषी विना दूसरी ओर ध्यान दिए विषयों में देखे तो वही श्रेष्ठ चैतन्य स्वयं दिखाई पड़ेगा, दूसरा कुछ भी नहीं।

पापिष्ठाः क्रूरकर्माणस्ततो नित्यं बहिःकृताः।।
तत्तत्फलार्थिनः सर्वे कथं पश्यन्ति तद् वद।।17।।

जो पापी हैं, क्रूर कार्य करते हैं और इस कारण वे सदा बहिष्कृत रहते हैं वे अपने क्रूर कर्म का भी फल चाहते हैं, वे कैसे चैतन्य को देखते हैं, यह कहिए।

करस्थं नैव जानाति पुमान् विषयनिश्चलः।
अत्यन्तान्तर्हितं वेत्ति विजिज्ञासुरतथाविधः।।18।।

विषयों में सदा आसक्त लोग अपनी हथेली पर स्थित उस परम ज्योति को इस विधि से नहीं जान पाते और चैतन्य को जानने की इच्छा रखनेवाले उसे अत्यन्त प्रच्छन्न मान लेते हैं।

पश्य सर्वात्मना सर्वं सर्वत्रापि तपोनिधे।
प्रकाशते स्वयं साक्षात् सच्चिदानन्दलक्षणः।।19।।

हे तपोनिधे! हर प्रकार से सबकुछ देखो कि हर जगह साक्षात् सत् चित् और आनन्द स्वरूप भगवान् प्रकाशित हैं।

ततोऽस्ति न परं किञ्चिद् वासत् तत् तद् विलक्षणम्।[1]
तत्तिरष्करिणीं प्राहुरविद्यां ज्ञानिनामपि।।20।।

उनसे परे कुछ भी नहीं है, असत् भी नहीं है, अपरिभाषित कोई तत्त्व नहीं है। उस भगवान् और प्राणी के बीच ज्ञानियों में भी एक पर्दा है, जिसे अविद्या कहते हैं।

---

1. घ. ततोऽस्मान्न परं किञ्चिद् बाह्यमेतद्धि लक्षणम्।

व्यामोहयति चेतांसि विषयेषु बलान्मुने।
दृष्टा स्यात् सर्वजन्तूनां सुखदुःखादिलक्षणा।[1]।21।।

वह अविद्या चित्त को मोह में डालकर विषयों में जबरदस्ती लगाती रहती है। सुख और दुःख इसी अविद्या का लक्षण है। यह अविद्या सभी प्राणियों में देखी जाती है।

अदृष्टान्तर्हिताः सर्वे नापि सर्वत्र संस्थितम्।
पश्यन्ति पुरतः साक्षाच्चैतन्यं सर्वगोचरम्।।22।।

इसी अदृष्ट अविद्या से ढके हुए सभी लोग सर्वत्र विद्यमान् और सामने में स्थित सर्वगोचर चैतन्य को नहीं देख पाते हैं।

शुद्धिमानप्रमत्तो यः कदाचिद् विषयैरपि।
नैव प्रलोभितः साक्षादात्मानं परमीक्षते।।23।।

जो शुद्ध आचरण करनेवाले और प्रमाद रहित हैं, उन्हें विषय कभी लुभा नहीं पाते और वे परम आत्मा को साक्षात् देखेते हैं।

एवंविधोऽपि यः कश्चित् सच्चिदानन्दलक्षणम्।
आत्मानं सर्वगं सम्यक् जानात्येव न संशयः।।24।।

इस प्रकार भी कोई व्यक्ति सत् चित् और आनन्द-स्वरूप सबके द्वारा प्राप्त करने योग्य आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

स जीवन्नेव मुक्तः स्याद्यद्येवं वायुमानयेत्।
बहिः सर्वं समानीय चैतन्यं स्वगतं पुनः।।25।।

यदि मनुष्य अपने अन्दर अवस्थित वायु को रेचक क्रिया के द्वारा बाहर लावे और चैतन्य को अपने अन्दर स्थापित करे तो इसी जीवन में मुक्त हो जाते हैं।

पूरकेनैव योगेन सर्वतः स्थितमन्ततः।
सम्यगाधाय चाधारे ध्यायेद् राममनन्यधीः।।26।।

प्राणायाम के अन्तर्गत पूरक के योग से (वायु को भीतर करते हुए) सर्वत्र स्थित श्रीराम को अन्ततः आधार-चक्र पर स्थापित कराकर एकाग्र होकर ध्यान करना चाहिए।

शरीरान्तर्गतं वायुं दशधा तत्र तत्र तु।
एकीकृत्य प्रयत्नेन कुम्भकेनैव योगतः[2]।।27।।

1. घ. दृष्टा स्यात् सुखदुःखादाविच्छाद्वेषादिलक्षणा।2. घ. यत्नतः।

तत्रैव सुदृढं बद्धवा पवनं सात्मना समम्।
स्थित्वैवं तु मुहूर्तार्द्धमुन्मीलय मुखं मुने।।28।।

शरीर के अन्दर में स्थित वायु को दश प्रकार से प्रयत्नपूर्वक कुम्भक द्वारा एकीकृत कर वहीं पर दृढ़ रूप से वायु को आत्मा के साथ बाँधकर इस तरह आधा मुहूर्त (24 मिनट) स्थिर रहें, तब मुख खोलें।

सुषुम्णायाः प्रयत्नेन सम्यक् सर्पमुखाकृतिः।
वायुना पूरकाभ्यासं कर्तव्यं साधयेत्ततः[1]।।29।।
ग्रन्थिभेदक्रमेणैव चैतन्यानि समीरणैः।

सुषुम्णा नाड़ी के प्रयत्न से सर्प के समान मुख की आकृति बनाकर वायु से पूरक का अभ्यास करना चाहिए। तब ग्रन्थियों एक एक कर वायु से भेदन कर विभिन्न स्तर के चैतन्यों की साधना करनी चाहिए।

उन्नीय पवनं यत्नात् कुर्यात् तन्मुखगोचरम्।।30।।
चिद्घनानन्दचैतन्यसमीरस्तन्मुखागतः [2] ।
नयेदूर्ध्वं परन्नुन्नं[3] पुनः पुनरपि स्वयम्।।31।।
अभ्यासातिशयेनैव भिनत्यूर्द्धर्वमनन्यधीः।

वायु को खींचकर यत्नपूर्वक उसे मुखेन्द्रिय में संचारित करावें। यह चित् स्वरूप और आनन्द स्वरूप चैतन्य रूप वायु तब मुख में आ जाती है। बार बार धकेलते हुए उसे स्वयं ऊपर की ओर ले जायें। अतिशय अभ्यास करने से एकाग्रचित्त साधक ऊपर मूर्द्धा का भेदन कर लेता है।

तत्परं परया[4] तत्र निःसृतान्तरगोचरः।।32।।
भूमौ वीरासनं बद्धमन्तरालं नयेदपि।

इसके बाद परा चक्र से निर्गत तथा बीच में स्थित पवन को वहाँ बीच में लावें। भूमि पर वीरासन में बैठकर यह योग करें।

पुनर्यदेवमेवायं द्वितीयमपि भेदयेत्।।33।।
तदन्तान्तर्गतो वायुः शरीरं चोर्ध्वमानयेत्।

फिर इसी प्रकार दूसरे चक्र का भी भेदन करना चाहिए। उस चक्र के भीतर जाकर वायु शरीर को ऊपर उठाता है।

---

1. घ. कर्तव्यस्तेन।2. ग. विधूतानन्द॰, घ. विमलानन्द॰।3. घ. परं मूर्द्धनं।4. घ. उद्धृत्यापूर्य्य तत्रैव।

हृदयग्रन्थिभेदेन सम्यगभ्यासयोगतः।।34।।

तत्र सन्धिषु सम्बद्धं तत्ताल्वाद्यन्तगो मरुत्।

सम्यक् संशोध्य स्वं देहं भ्रूमध्यमुपसर्पति।।35।।

भलीभाँति अभ्यास करने पर हृदय की ग्रन्थि का भेदन करने से वहाँ सन्धियों से होकर वायु तालु आदि प्रदेशों में संचरित होकर अपने शरीर का संशोधन कर भ्रू-मध्य में चली जाती है।

तत्र स्याद् द्विदले पद्मे सुधानिधिरलौकिकम्।

अनृतं बाहयेत्तेन अमृतत्वाय कल्पते।।36।।

वहाँ द्विदल कमल में अमृत का अलौकिक खजाना है। इस अमृत के प्रवाह में असत्य को प्रवाहित करावें अर्थात् उसका शोधन करें। इससे अमरत्व की प्राप्ति होती है।

भेदेन पञ्चमस्येव पर्वणोऽधिगते पुनः।

शब्दब्रह्मापि निखिलं तेन[1] सर्वज्ञता भवेत्।।37।।

पाँचवीं गाँठ के खुल जाने पर पर्वों का ज्ञान होने पर उनमें स्थित शब्दब्रह्म की गाँठ खुल जाती है, तब वह सर्वज्ञ हो जाता है।

मूलाधारे स्थितं वायु सुषुम्णानाडिमध्यगम्।

तत्तद् ग्रन्थिविभेदेन ब्रह्मरन्ध्रं नयेदपि।।38।।

मूलाधार में स्थित वायु जो सुषुम्णा नाडी से होकर गजरती है, उस वायु के वेग से बीच में स्थित ग्रन्थियों को खोलते हुए वायु को ब्रह्मरन्ध्र में ले जायें।

पूर्वोक्ताभ्यासयोगेन द्वादशान्तर्गतं पुनः।

तदेव निखिलं ज्ञानं जन्मापि सफलं ततः।।39।।

पूर्वोक्त प्रकार से अभ्यास करते हुए द्वादशार चक्र तक जब वायु पहुँच जाती है, तब समग्र ज्ञान की प्राप्ति होती है और उससे यह जन्म भी सफल हो जाता है।

वैराग्येण तदप्येति त्यागेनैव हि तत्परम्।

संन्यासेनैव योगीन्द्र नान्यो मार्गोऽस्ति तस्य तु।।40।।

1. ग. येन।

हे योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! वैराग्य से ही वह स्थिति भी आती है, त्याग से ही उससे भी ऊपर की स्थिति आती है। यह सब संन्यास से सिद्ध होता है। इस पृथ्वी पर इससे भिन्न कोई रास्ता नहीं है।

बहिरन्तर्गतं कृत्वा मूलाधाराच्च चिन्मयम्।
द्वादशान्तं समुत्क्रम्य यावन्नावर्तते पुनः।।41।।

बाहर स्थित चैतन्य को अपने अन्दर लेकर तथा मूलाधार से चित् तत्त्व लेकर द्वादशार चक्र को पारकर साधक पुनः लौटता नहीं, अर्थात्, मुक्त हो जाता है।

योगीन्द्र मुक्तिमार्गोऽयं सर्वस्मिन्नपि दर्शने।
नैवाप्यत्र मतं भिन्नं सर्वैरपि सुशोभितम्।।42।।

योगीन्द्र सुतीक्ष्ण! सभी दर्शनों में कहा गया यह मुक्ति का मार्ग है। यहाँ मत में कोई भिन्नता नहीं है और इसे सबने सँबारा है।

विरजेत् संन्यसेद् ब्रह्म साक्षात्कुर्यात् सुखी भवेत्।
पुरुषार्थोऽयमेवात्र नातः किञ्चिन्न विद्यते।।43।।

रजोगुण से निवृत्त होकर कर्मों को सौंपकर ब्रह्म से साक्षात्कार कर जीव सुखी हो जाता है। यही इस लोक में पुरुषार्थ है, इससे आगे कुछ भी नहीं है।

अखण्डानन्दयोगेन नैवात्मानं वियोजयेत्।
स्ववर्णाश्रमधर्मेण नैव तावद् वियोजयेत्।[1]।44।।

अखण्ड आनन्द के साथ आत्मा का कभी विच्छेद न करावें। अपने वर्ण और आश्रम के कारण यह विच्छेद न करावें।

इदं सत्यमिदं सत्यं सत्येनैवाति वर्तयेत्।
रामः सत्यं परं ब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते।।45।।

यह सत्य है, यह सत्य है। इस सत्य के विपरीत आचरण न करें। श्रीराम परम सत्य हैं, परम ब्रह्म हैं। श्रीराम से आगे कुछ भी नहीं है।

सर्वशास्त्ररहस्यज्ञ मया तव महात्मनः।
अगस्ति-संहिता नाम प्रोक्तेयं सर्वकामधुक्।।46।।
अध्यात्मालोकने दीपकलिकाज्ञाननाशनी।
भोगमोक्षप्रदा नित्यमायुरारोग्यवर्द्धिनी।।47।।

1. ग. में अनुपलब्ध।

सभी शास्त्रों का रहस्य ज्ञाननेवाले हे सुतीक्ष्ण! आप महात्मा हैं, इसलिए मैंने आपको अगस्त्य-संहिता सुनायी, जिससे सभी कामनाएँ पूर्ण होती है। अध्यात्म को प्रकाशित करनेवाली और अज्ञान का नाश करनेवाली यह दीपशिखा है। यह नित्य रूप से भोग और मोक्ष देनेवाली है, आयु और आरोग्य बढ़ानेवाली है।

श्रुता दृष्टापि लिखिता बहिरन्तश्च पावयेत्।
आदिमध्यावसानान्तं यः सकृद् वा निरीक्षयेत्।।48।।
पापात्मापि समुत्क्रम्य ब्रह्मभूयाय कल्पते।
सर्वदालोकयेद्यस्तु ब्रह्मविद् याति सद्गतिम्।।49।।
प्राप्नोति लोकमखिलं सद्योऽभीष्टमवाप्नुयात्।

इस ग्रन्थ के श्रवण, दर्शन और लेखन से बाहर-भीतर पवित्र हो जाता है। इसका आदिभाग, मध्यभाग अथवा अन्तभाग का एक बार भी कोई दर्शन करे तो पापी भी उससे निकलकर ब्रह्मलीन हो जाता है। प्रतिदिन जो इसका दर्शन करते हैं, वे ब्रह्मज्ञानी होकर उत्तम गति प्राप्त करते हैं, सभी लोकों को प्राप्त करते हैं तथा तुरत अभीष्ट फल प्राप्त करते हैं।

पुस्तकं लिखितं यस्य[1] गृहे तिष्ठति पूजितम्।।50।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वर्द्धतेऽस्य दिने दिने।
पुत्रैः पौत्रैः कुलं वास्य वर्द्धते सुश्रिया सह[2]।।51।।

जिनके घर में इस लिखित एवं पूजित पुस्तक रहती है, उनकी आयु आरोग्य और ऐश्वर्य प्रतिदिन बढ़ते हैं। पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र आदि से उनका वंश सुन्दर लक्ष्मी के साथ बढ़ता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये योगवर्णनम् नाम त्रयोविंशतितमोऽध्यायः।

अथ चतुर्विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

अयमेव परो मार्गः कर्माप्येतत् परात् परम्।
राम एव परं ज्योतिः सच्चिदानन्दलक्षणम्।।1।।

1. ग. सम्यक्। 2. क. पुत्रपौत्रप्रपौत्राद्यैः कुलं वास्य प्रवर्द्धते ।

अगस्त्य बोले-- यही मुक्ति का सबसे उत्तम मार्ग है और यहीं सर्वश्रेष्ठ कर्म है। राम ही परम ज्योति हैं, जो सत् स्वरूप, चैतन्यस्वरूप और आनन्दस्वरूप हैं।

परं ज्योतिः परञ्चात्मा तथैव द्वयमोक्षयोः[1]।
अन्त्याद्ययोर्यकारस्य द्वितीयादिस्वरान्तयोः।।2।।

श्रीराम परम ज्योतिःस्वरूप हैं, इस संसार की परम आत्मा हैं और उसी प्रकार आदि और अन्त के द्वन्द्व स्वरूप जन्म और मोक्ष की परम ज्योति हैं। यकार अर्थात् कुण्डलिनी शक्ति की भी परम ज्योति हैं। द्वितीया शक्ति अर्थात् माया से स्वर्ग तक की परम ज्योति है।

श्रुतिस्मृतिपुराणानि सम्यगालोक्य निश्चितम्।
वसिष्ठवामदेवाद्यैर्नारदाद्यैश्च यत्नतः।।3।।

वसिष्ठ, वामदेव आदि ऋषि और नारद आदि भक्तों ने वेद, स्मृति,और पुराणों का यत्नपूर्वक भलीभाँति अनुशीलन कर ऐसा निश्चय किया है।

यज्ञोऽयमस्माद् भूतानि , जङ्गमाजङ्गमं ततः।
इतरेतरमिश्रेभ्यस्तेभ्यो भूतानि यज्ञिरे।।4।।

श्रीराम यज्ञस्वरूप हैं, जिससे स्थावर और जंगम प्राणियों की उत्पत्ति हुई है और स्थावर एवं जंगम प्राणियों में एक दूसरे के मिश्रण से अन्य प्राणियों की भी उत्पत्ति हुई है।

शब्दप्रकाशमानोऽयं तत एष विनिर्गतः।
व्यस्त एव तु शारीरः परः सारविलक्षणः।।5।।

शब्द को द्वारा प्रकाशित जो यह मन्त्र है, वह भी श्रीराम से ही निर्गत हुआ है, जो परम सारमय मन्त्रों में विलक्षण है, वह व्यस्त रूप में , पृथक् रूप में शरीर से सम्बद्ध है अर्थात् शरीर के अवयव मुख से उच्चरित होने योग्य है, वैखरी नाद है।

पञ्चाशद्वर्णरूपेण सोऽप्यनेकविधो भवेत्।
पदवाक्यादिना यस्य शब्दस्यान्तो न विद्यते।।6।।

पचास वर्णों के रूप में वह मन्त्र भी अनेक प्रकार का है। यह मन्त्र पद, वाक्य आदि के भेद से शब्द रूप में अनगिनत है।

---

1. ग. द्वयमाश्रयोः।

तस्य कारणरूपत्वादभिधानाभिधेययोः।
उपास्यं परमं लोके तस्मिन् सर्वं प्रतिष्ठितम्।।7।।
यान्त्यं प्रकाशयेत् सर्व परं ज्योतिः स्वतः परम्।
यादिरभ्युदयात्मत्वात् सर्वदाभ्युदयाय कृत्।।8।।

वह मन्त्र अभिधान अर्थात् सगुण श्रीराम और अभिधेय अर्थात् परब्रह्म श्रीराम दोनों का कारण है, अतः संसार में यह परम उपास्य है; क्योंकि इसी मन्त्र में सबकुछ प्रतिष्ठित है। यह यकारान्त शब्द 'अभय' को प्रकाशित करता है और यह परम ज्योतिस्वरूप और अपने आप उत्पन्न है। मन्त्र यकारादि यज्ञस्वरूप है अतः वह सर्वदा अभ्युदय का कारक है।

अतो यत्नेन जप्यन्तु भुक्तिमुक्तिपरीप्सुना।
अतः श्रुतेः परं नास्ति तदेतद् वाचको मनुः।।9।।

अतः प्रयत्नपूर्वक भोग और मोक्ष चाहनेवालों के द्वारा इस मन्त्र का जप करना चाहिए। श्रीराम के वाचक वे मन्त्र हैं और इस श्रुति से ऊपर कुछ भी नहीं है।

मनूनामपि सर्वेषामयमेव विशिष्यते।
अयमेवान्तमुत्सृज्याकारमेकाक्षरो मनुः।।10।।

सभी मन्त्रों में यह 'राम' मन्त्र है, वह विशिष्ट है। अन्तिम अकार त्याग कर देने से 'राम्' (रां) यह एकाक्षर मन्त्र बन जाता है।

उपास्य मनोयज्ञोयमुत्पादयति तत्परम्।
यद्येतत् त्रितयं याति नत्या सह समुद्रितम्।।11।।
मायामन्मथवेदादिपूर्वो व्युत्क्रमपूर्वकः।

यह मानस यज्ञ श्रीराम की उपासना कर इस यज्ञ से भी विशिष्ट यज्ञ उत्पन्न करता है। (यज्ञेन यज्ञमयजन्त) तब यह मन्त्र 'नति' (नमः) के । माया(ह्रीं) मन्मथ (क्लीं) और वेद (ॐ) के पूर्व में प्रयोग से तीन प्रकार के जातें हैं- ॐ रामाय नमः, ह्रीं रामाय नमः एवं क्लीं रामाय नमः।

श्रीबीजान्त्योऽयमेव स्यात्तदाद्यो वा षडक्षरः।।12।।
यदि नत्यन्तसहितं तद्द्वयं वापरो मनुः।
पञ्चवर्णात्मकस्तस्माद्यस्मात् सर्वं प्रजायते।।13।।

इसी मन्त्र के अन्त में श्रीबीज (श्रीं) लगाने पर पहला षडक्षर मन्त्र होगा- रामाय नमः श्रीं। यदि केवल 'नति' (नमः) अन्त में जोड़ें अथवा ॐ, ह्रीं, क्लीं में से एक आदि में और श्रीबीज (श्रीं) अन्त में जोड़ें तो अन्य मन्त्र हो जाएँगे। जैसे- रामाय नमः, ॐ रामाय श्रीं, ह्रीं रामाय श्रीं, क्लीं रामाय श्रीं। ये पंचवर्णात्मक चार प्रकार के मन्त्र इससे बनेगें; क्योंकि मन्त्र से सब कुछ उत्पन्न होते हैं।

चन्द्रान्तः परमो मन्त्रो भद्रान्तश्चतुरक्षरः।
ऐहिकामुष्मिकं वास्याप्युक्तमेव फलं विदुः।।14।।

'चन्द्र' शब्द अन्त में जोड़कर तथा 'भद्र' अन्त में जोड़कर चार अक्षर वाले मन्त्र बनते हैं- 'रामचन्द्र' 'रामभद्र'। इन मन्त्रों के भी पूर्व में कहे गये लौकिक और पारलौकिक फल कहे जाते हैं।

श्रीमायामन्मथैकैकबीजाद्यन्तर्गतो मनुः।
षडक्षरः स एवं यः स मन्त्रश्चतुरक्षरः।।15।।

श्रीबीज, (श्रीं) मायाबीज (ह्रीं) और कामबीज (क्लीं) में से एक एक बीज से सम्पुटित कर यह चतुरक्षर मन्त्र षडक्षर मन्त्र बन जाता है।

तारमायारमानंगबीजपूर्वः स एव हि।
अक्षरोऽनेकधा प्रोक्तः सर्वाभीष्टफलप्रदः।।16।।

यह षडक्षर मन्त्र तार (ॐकार), माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) और अनंग (क्लीं) के पूर्व प्रयोग से अनेक प्रकार का कहा गया है, जिससे सभी मनोरथ पूरे होते हैं।

चन्द्रभद्रनमस्कारैस्तत्तद्बीजैश्च योजितः।
षट्सप्ताष्टनवादित्येनैवं भिन्नोऽप्यनेकधा।।17।।

चन्द्र, भद्र, नमः और उपर्युक्त बीजाक्षरों के योग से षडक्षर, सप्ताक्षर, अष्टाक्षर, नवाक्षर आदि अनेक मन्त्रों के रूप में विभिन्न प्रकार के होते हैं।

एकादित्वेन बहुधा स्वयं रामेत्यतः परम्।
सर्वाभीष्टप्रदत्वेनानन्तत्वेनापि भिद्यते।।18।।

एकाक्षर आदि मन्त्र के उपरान्त ॐ राम ऐसा जोड़कर सभी मन्त्र इच्छित फल देने के कारण कामना की दृष्टि से तथा अनन्त स्वरूप की दृष्टि से मन्त्रों के अनेक भेद होते हैं।

पादाद्यात्मा पदाद्यात्मा तद्विशेषे विशिष्यते।
स एव भिद्यतेऽनन्तभेदेनाप्यधिकारिणाम्।।19।।

कुछ मन्त्र पाद अर्थात् चरणस्वरूप होते हैं तो कुछ पद अर्थात् शब्दस्वरूप होते हैं। इस विशेषता के कारण भी मन्त्र अनेक प्रकार के होते हैं। वही मन्त्र असंख्य प्रकार के अधिकारी के भेद से भी विभिन्न प्रकार के होते हैं।

मन्त्राणामृषिरेतेषां ब्रह्मागस्त्यः शिवोऽह्यहम्।
छन्दो गायत्रमेवाहुर्देवता राम उच्यते।।20।।
पूर्वापरबीजशक्ती भुक्तिमुक्तिप्रयोजनम्।
आद्यन्तयुक्तबीजेन षडङ्गं पल्लवैः सह।।21।।

इन मन्त्रों के ऋषि ब्रह्मा, शिव और मैं अगस्त्य हूँ। छन्द गायत्री ही कहा गया है और देवता श्रीराम कहे गये हैं। आदि और अन्त में लगाये गये बीज शक्तियाँ हैं तथा भोग और मोक्ष प्रयोजन है। आदि और अन्त में प्रयुक्त बीजों के तथा पटल विस्तार के साथ मन्त्र के छह अंग होते हैं।

भालमस्तकयोर्वामदक्षयोश्च भ्रुवोर्दृशोः।
कर्णयोर्घ्राणयोर्हन्वोरोष्ठयोर्दन्तमूलयोः ।।22।।
जिह्वामूलकण्ठयोश्च ककुदोः कुचयोरपि।
अंसयोर्भुजयोश्चैव पार्श्वयोः कुक्षिहृत्कयोः।।23।।
पृष्ठनाभ्योश्च सक्थिन्यूर्वोः जान्वोश्च जंघयोः पदोः।
विन्यसेच्छक्तिबीजानि सीतारामस्वरूपकम्।।24।।
विन्यसेत् संहृतिन्यासं पादादिकशिरस्यपि।
उत्पत्तिन्यासमप्यत्र नाभ्यादिरधरोत्तरम्।।25।।
न्यसेत् प्रत्यक्षरं न्यासं मूर्तिन्यासमतः परम्।
तत्त्वन्यासं केशवादिन्यासमप्यथ विन्यसेत्।।26।।
सर्वाङ्गमपि सर्वेण मन्त्रेणापि प्रविन्यसेत्।

ललाट, मस्तक, बायाँ भौंह, दायाँ भौंह, बायीं आँख, दायीं आँख, दोनों कान, दोनो टुड्ठी, दोनों होठ, दोनों जबड़े, जिह्वामूल, कण्ठ, गले का दोनों टेंटुए, दोनों कंधे, दोनों बाहें, दोनों पार्श्व, कोख, हृदय, पीठ, नाभि, दोनो जाँघों की हड्डियों, दोनों जाँघों का मांसल भाग, दोनों पैर इन स्थानों में शक्तिबीजों से

श्रीसीताराम के स्वरूप न्यास करें। तब प्रत्येक अक्षर से संहारन्यास करें जो पैरों से लेकर मस्तक तक के क्रम से होता है तथा इसके बाद नाभि से प्रारम्भ कर ऊपर नीचे उत्पत्तिन्यास करें। तब मूर्तिन्यास करें, तब तत्त्वन्यास के बाद केशवादिन्यास करें। अन्त में, सभी मन्त्रों से सर्वाङ्गन्यास करें।

ध्यायेद् हृत्पुण्डरीकाक्षं परं ज्योतिः परात्परम्।।27।।
तत्रैव देवमभ्यर्च्य मानसैरुपचारकैः।
जपेत् क्वचन चैकान्ते रामं ध्यायन्ननन्यधीः।।28।।

इसके बाद हृदयरूपी कमल के समान आँखोंवाले परम ज्योतिर्मय, परात्पर पुरुष का ध्यान करें। वहीं मानसोपचार से देवता की अर्चना कर कहीं एकान्त स्थान में श्रीराम का ध्यान एकाग्र होकर करते हुए जप करें।

नीलजीमूतसंकाशं विद्युद्वर्णाम्बरावृतम्।
सन्तप्तकाञ्चनप्रख्यां सीतामङ्कगतां पुनः।।29।।
अन्योऽन्याश्लिष्टहृद्बाहुनेत्रं पश्यन्तमादरात्।
दक्षिणेन कराग्रेण कुचाग्रे चञ्चलालकम्।।30।।
स्पृशन्तं वलनोत्सङ्गैः[1] परिहासे मुहुर्मुहुः।
विनोदयन्तं ताम्बूलचर्वणैकपरायणम्।।31।।
सर्वरूपोज्ज्वलद्वन्द्वं[2] योषित्पुरुषयोरिव।
श्रीरामसीतयोः सर्वसम्पत्करविधायकम्।।32।।

श्रीराम नीले मेघ के समान हैं और विद्युत् से समान वर्ण (पीत) के वस्त्र पहने हुए हैं और तपे हुए सोने के समान आभा वाली सीता उनकी गोद में बैठी हुई हैं। एक दूसरे के हृदय, बाहें और नेत्र मिले हैं, जिसे श्रीराम आदर के साथ देख रहे हैं। दाहिने हाथ की अंगुलियाँ श्रीसीता के स्तनाग्र पर लटके चंचल लटों को बार बार परिहास में घेर कर आलिंगन कर छू रही हैं। श्रीराम पान चबा रहे हैं, सभी रूपों में उज्ज्वल रहनेवाले युगलस्वरूप स्त्री और पुरुष के समान श्रीसीताराम का ध्यान करें, जो सभी प्रकार के ऐश्वर्य प्रदान करनेवाले हैं।

जपहोमार्चनादीनि कुर्यात् कर्माणि सन्ततम्।
यत्किञ्चिदप्यनन्तं स्यात् सत्यं सत्यं न संशयः।।33।।

---

1. ग. च ततो त्याग=।2. ग. पूर्वरूपोज्ज्वलद्वन्द्वं।

तब निरन्तर जप, होम, पूजा आदि कर्म करें। इससे जो कुछ भी होगा, वह अनन्त फलदायक हो जायेगा, यह सत्य है, इसमें सन्देह नहीं।

तदेतद्वाचको मन्त्रः सर्वस्यार्थस्य साधकः।
सदसद्वाचकश्चायं मन्त्रो विजयते परः।।34।।

मन्त्र सार्थक हो या अनर्थक, सभी प्रयोजनों के साधक हो जाते हैं। सार्थक या अनर्थक परम मन्त्र की जीत होती है।

रामात्मनो मनोः सद्यः स्मरणात् कीर्तनादपि।
ब्राह्मणं क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं कृत्वाप्यकल्मषम्।।35।।

श्रीराम के स्वरूप मन्त्र स्मरण करने और कीर्तन करने से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को शीघ्र निष्पाप बनाते हैं।

संचिनोति नरो मोहाद्यद्यत्तदपि नाशयेत्।
ग्राम्यारण्यपशुघ्नत्वं संचितं दुरितं च यत्।।36।।
निःशेषं नाशयत्येव रामात्मा द्व्यक्षरो मनुः।

मनुष्य मोहवश जो जो पाप संचित करते हैं, उन्हें भी ये मन्त्र शीघ्र नाश कर देते हैं। गाँव या जंगल में रहनेवाले पशु की हत्या का जो संचित पाप है, उसे श्रीराम स्वरूप दो अक्षरों वाला 'राम' मन्त्र पूर्णतः नष्ट कर देता है।

[1]तन्मृष्यवाक्च कोपादिभावोद्भावकृतार्चिनः।।37।।
मद्यपानेन[2] यत्पापं तदप्याशु विनाशयेत्।
अभक्ष्यभक्षणात्[3] पापं मिथ्याज्ञानसमुद्भवम्।।38।।
सर्वं विलीयते राममन्त्रस्यास्यैव कीर्तनात्।

मिथ्या भाषण, क्रोध आदि के कारण उत्पन्न पाप, उद्भाव (उपेक्षा), आग लगाने आदि का पाप तथा मद्यपान से जो पाप होता है उसे शीघ्र यह विनष्ट करता है। अभक्ष्य वस्तुओं के खाने से जो तथा मिथ्या ज्ञान के कारण उत्पन्न पाप श्रीराम के इसी मन्त्र के जप से विलीन हो जाते हैं।

श्रोत्रियस्वर्णहरणाद्यच्च पापमुपार्जितम्।।39।।
रत्नादेरपहारेण तदप्याशु विनाशयेत्।।

वैदिकों का सोना चुराने या छीनने से,रत्न आदि छीनने से जो पाप संचित होता है, उसे भी यह मन्त्र यह शीघ्र नाश कर देता है।

---

1. घ. में अनुपलब्ध।2. ग. मधुपानेन ।3. ग. अभक्षणाय।

गत्वा तु मातरं मोहादगम्यायाश्च योषितः।।40।।
उपास्यानेन मन्त्रेण समं तदपि नाशयेत्।।

मोहवश मातृतुल्य नारी तथा अगम्या से मैथुन करने का पापी इस मन्त्र की उपासना कर उस पाप को नष्ट कर लेते हैं।

महापातकपापिष्ठसंगत्या सञ्चितञ्च यत्।।41।।
नाशयेत् तत् कथालापशयनासनभोजनैः।

महापातकी और अन्य पापियों की संगति करने से जो पाप संचित होता है, वे श्रीराम की कथा की चर्चा, श्रीराम के मन्दिर में शयन, उपवेशन (बैठने) और प्रसाद खाने से नष्ट हो जाते हैं।

पितृमातृवधोत्पन्नं बुद्धिपूर्वकमव्यम्।।42।।
निःशेषं नाशयत्येव कालत्रयसमुद्भवम्।
भ्रातृमित्रसुहृद्यानां यद्वा विश्वासघातिनाम्।।43।।
यद् वा बालवधोत्पन्नं विषशस्त्रास्त्रमायिकम्।
गुरुपुत्रकलत्रादिवधोत्पन्नं दुरात्मनाम्।।44।।
तदनुष्ठानमात्रेण सर्व एव[1] विलीयते।

माता-पिता के वध से उत्पन्न, जान-बूझकर किये गये तथा तीनों कालों में उत्पन्न पाप को यह मन्त्र नष्ट करता है। भाई, मित्र और अन्य प्रिय लोगों के साथ विश्वासघात का पाप, बाल-हत्या तथा विष देकर, शस्त्र-अस्त्र से अथवा जादू-टोना से की गयी हत्या का पाप अथवा गुरु, पुत्र, स्त्री आदि की हत्या का पाप जो दुरात्माओं को होता है, वह पाप श्रीराम के मन्त्र का अनुष्ठान मात्र करने से नष्ट हो जाता है।

तत् सद्गुरूपदिष्टेन वर्तनानुष्ठितं पुनः।।45।।
रामात्मा मन्त्र एवायं पापराशिनिरासकृत्।

इसलिए सद्गुरु के उपदेश से मण्डल में अनुष्ठान किया गया यह श्रीराम स्वरूप मन्त्र पापराशि को निरस्त करनेवाला है।

यत्प्रयागादितीर्थोत्थप्रायश्चित्तादिकैरपि ।।46।।
नैवापयुज्यते पापं तदप्याशु विनाशयेत्।

1. ग. एप।

प्रयाग आदि तीर्थों में प्रायश्चित्त आदि करने से भी जो पाप नष्ट नहीं होते हैं, उन्हें भी यह मन्त्र शीघ्र नष्ट कर देता है।

पुण्यक्षेत्रेषु सर्वेषु कुरुक्षेत्रादिषु स्वयम्।।47।।
बुद्धिपूर्वमघं कुर्यात् तदप्याशु विनाशयेत्।

कुरुक्षेत्र आदि सभी पुण्यतीर्थों में स्वयं जान बूझकर जो पाप किया जाये, उसे भी शीघ्र विनष्ट कर देता है।

आत्मतुल्यसुवर्णादिदानैर्बहुविधैरपि ।।48।।
किञ्चिदप्यपरिक्षीणं पापं तदपि नाशयेत्।

अपने भार के बराबर सुवर्ण का दान आदि अनेक प्रकार के दानों से जो पाप नष्ट नहीं होता, उसे भी यह मन्त्र नष्ट कर देता है।

यद्वातिसञ्चितं पापं मूलबद्धमघञ्च यत्।।49।।
तन्मन्त्रस्मरणादेव निःशेषं तत्प्रणश्यति।।50।।

अथवा अधिक मात्रा में संचित जो पाप है और जो पाप अपनी जड़ें जमा चुका है, मद्यपान आदि से जो पाप होता है, वे सारे पाप इस मन्त्र के स्मरण मात्र से अशेष रूप में नष्ट हो जाते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रमहिमाख्यानं नाम
चतुर्विंशोऽध्यायः।।24।।

अथ पञ्चविंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

सर्वागमैकतत्त्वज्ञ[1] ब्रह्मनिष्ठ तपोधन।
रामात्मनस्त्वया तत्त्वं ब्रह्मणः परमव्ययम्।।1।।
प्रदर्शितं सम्यगेव सुविस्तरमनेकधा।
षडक्षरविधानं तु[2] सम्यक् ज्ञातं मया प्रभो।।2।।
अन्येषां राममन्त्राणामनुष्ठानं कथं मुने।

1. ग. सर्वेषामेव तत्त्वज्ञ।2. ग. वा ।

षडक्षरविधानं तु विधानान्तरमस्ति वा।।3।।
सर्वमेव समाचक्ष्व भक्तस्य त्वयि सुव्रत।।4।।

सुतीक्ष्ण बोले– हे महामुनि अगस्त्य ! आप सभी आगमों के तत्त्वों को जानते हैं, ब्रह्म में लीन हैं, तपस्वी हैं, श्रीराम के रूप में जो स्वयं परमात्मा हैं, उनके विषय में आपने भलीभाँति मुझे समझा दिया है। मैंने षडक्षर मन्त्र भी भलीभाँति जान लिया है। अब यह बतलाएँ कि श्रीराम के अन्य मन्त्रों का किस प्रकार अनुष्ठान किया जाता है। क्या केवल षडक्षर विधान ही है या दूसरा भी कोई विधान है? हे सुव्रत अगस्त्य! मैं आपका भक्त हूँ, इसलिए मुझे सबकुछ कहें।

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण शृणु वक्ष्यामि श्रद्धधानांपते पुनः।
वक्तव्यं तव यत्नेन यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः।।5।।

अगस्त्य बोले– हे श्रद्धालुओं में श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! फिर से सुनो। तुम वैष्णवों में श्रेष्ठ हो, इसलिए मुझे सारे विधान बतला देने चाहिए।

ये शृण्वन्ति कथां विष्णोर्वन्दन्ति चरितं हरेः।
मुक्तकण्ठञ्च गायन्ति हरिं नृत्यन्ति सुन्दरम्।।6।।
आनन्दाश्रुपरीतात्मा गात्रेषु पुलकाञ्चिताः।
आनन्दनिर्भराश्चैव स्खलन्तश्च[1] पदे पदे।
उच्चैः श्रीराम रामेति वदन्ति च हसन्ति च।।7।।
एवमादिगुणैर्युक्ताः जनाः[2] रामसमा हि ते।
[3]वैष्णवा मनवाः सर्वे मुक्तिदाः स्युः क्रमेण हि।।8।।

जो श्रीविष्णु की कथा सुनते हैं, हरि के चरित की वन्दना करते हैं, हरि की लीलाओं को स्मरण करते हुए मुक्तकण्ठ होकर इसका गान करते हैं। आनन्द के आँसू से भरे हुए चित्त वाले, पुलकित होकर आनन्दमग्न होकर पग-पग पर लड़खड़ाती बोली में जोर जोर से 'श्रीराम राम' बोलते हैं, हँसते हैं- इस प्रकार के गुणों से युक्त होकर जो मानव विष्णु के उपासक हैं, वे श्रीराम के समान हो जाते हैं। भगवान् विष्णु के सभी मन्त्र मुक्ति देनेवाले हैं, उन्हें क्रम से सुनो।

राममन्त्रास्तु विप्रेन्द्र शीघ्रमुक्तिप्रदाः शृणु।
विनैव दीक्षां विप्रेन्द्र पुरश्चर्यां विनैव हि।।9।।

1. ग. स्तुवन्तश्च, घ. प्लवन्तश्च।2. ग. मान्याः ।3. घ. यहाँ से छह पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

विनैव न्यासविधिना जपमात्रेण सिद्धिदाः।
सामान्येन तु सर्वेषां मनूनां राघवस्य तु।।10।।
अनुष्ठानविधिर्ज्ञेयो विशेषास्तत्र तत्र वै।
वक्ष्यते ते महाभाग यथामति सुविस्तरम्।।11।।

हे ब्राह्मण श्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! शीघ्रमुक्ति देनेवाले जो श्रीराम के मन्त्र हैं, उसके विषय में सुनो। गुरु से दीक्षा, पंचांग पुरश्चरण और न्यास-विधानों के विना ही केवल जप करने से सिद्धि देने वाले ये मन्त्र हैं। श्रीराम के सभी मन्त्रों की सामान्य अनुष्ठान विधि जाननी चाहिए। मन्त्रों के सन्दर्भ में जो विशेष विधियाँ हैं, उसे अपनी बुद्धि के अनुसार यहाँ मैं विस्तार से कहता हूँ।

षडक्षरविधानं तु सर्वेषां प्रकृतिं विदुः।
भूतशुद्धिर्विधातव्या सर्वेषामादितो मुने।।12।।
न्यासाः पूर्वोदिताः सर्वे कार्या यत्नेन सुव्रत।

षडक्षर मन्त्र का जो विधान है, वही सभी मन्त्रों का स्वाभाविक विधान है। सभी मन्त्रों के अनुष्ठान के आरम्भ में भूतशुद्धि करनी चाहिए। पूर्व में कहे गये सभी न्यास यत्नपूर्वक करें।

[1]अनुष्ठानेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।।13।।
आश्रमस्थाश्च सर्वेऽपि मन्त्राणामधिकारिणः।
ममुक्षुभिर्विरक्तश्च सदा सेव्यो रघूत्तम।।14।।
यतीनां जितचित्तानामुपास्यः प्रणवो यथा।

इन अनुष्ठानों में सभी मनुष्यों का अधिकार है। सभी मनुष्यों में जो किसी आश्रम में है वे मन्त्र के अधिकारी हैं। मोक्ष चाहनेवाले और संसार से विरक्त जो हैं वे श्रीराम का भजन करें। जैसे इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कर लेनेवाले जो यति हैं वे प्रणव (ॐकार) की उपासना करते हैं।

दीक्षाविधिस्तु कर्तव्यो विधेयो देशिकोत्तमैः।।15।।
सन्ध्यां दीक्ष्यान्वितः कुर्यात् तत्तन्मन्त्रानुसारतः।

दीक्षा की विधि जो पूर्व में कही गयी है वही गुरु को अपनानी चाहिए। शिष्य दीक्षा लेने के बाद से अपने अपने समय के अनुसार सन्ध्यावंदन करें।

1. घ. यहाँ चार पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

प्राणायामस्तु गायत्र्या सर्वेषामपि सत्तम।
[1]जलाभिमन्त्रणं वापि मूलमन्त्रेण मार्जनम्।।16।।
जलस्य प्राशनं वापि ज्ञेयं चार्घ्यस्य वै मुने।
सीतामन्त्रेण कुर्वीत मूलमन्त्रजपं तथा।।17।।
उपस्थानादिकाः कार्यास्तत्रैव गतकल्मषैः।

सबके लिए गायत्री से प्राणायाम विहित है। जलाभिमन्त्रण, मार्जन, जलप्राशन, अर्घ्यप्रदान ये कर्म मूलमन्त्र (दीक्षामन्त्र) से करें। मूलमन्त्र का जप कर और सीतामन्त्र (श्रीं सीतायैः नमः) से उपस्थान आदि क्रियाएँ निष्पाप साधकों को करना चाहिए।

सूर्यमण्डलमध्यस्थं रामं सीतासमन्वितम्।।18।।
नमामि पुण्डरीकाक्षमाञ्जनेयगुरुं परम्।
नमः श्रीरामदेवाय ज्योतिषां पतये नमः।।19।।
साक्षिणे सर्वभूतानां परमानन्दरूपिणे।
रघुनाथाय दिव्याय महाकारुणिकाय च।।20।।
नमोऽस्तु कौशिकानन्द दायिने ब्रह्मरूपिणे।'।

सूर्यमण्डल के मध्य में अवस्थित सीतासहित कमलनयन श्रीराम को प्रणाम है, जो हनुमान् के परम गुरु हैं। ज्योतिःस्वरूप ग्रहों और नक्षत्रों के स्वामी देवता श्रीराम को प्रणाम है। जो सभी प्राणियों के साक्षी महान् करुणामय दिव्य श्रीरघुनाथ परमानन्द स्वरूप हैं, उन्हें प्रणाम। विश्वामित्र को आनन्दित करनेवाले ब्रह्मस्वरूप श्रीराम को प्रणाम।

दीपस्थानञ्च कर्त्तव्यं रामं ध्यायेदनन्यधीः।।21।।
त्रिकालमेवं यः कुर्याद् राम एव भवेत् स्वयम्।
पुरश्चर्या तु सर्वेषामुक्तमार्गेण वेष्यते।।22।।

(इस प्रकार उपस्थापन कर) श्रीराम का ध्यान करते हुए दीप स्थापित करें। इस प्रकार जो तीनों सन्ध्या करते हैं, वे स्वयं राम ही हो जाते हैं। सभी मन्त्रों का पुरश्चरण उक्त मार्ग से भी अनुशंसित है।

एवं सिद्धमनुं मन्त्री प्रत्यहं नियतव्रतः।
[2]षट्सहस्रं सहस्रं च त्रिशतं शतमेव च।।23।।
जपं कुर्यात् प्रयत्नेन नो चेत् प्राप्नोत्यधो गतिम्।

1. ग. में दो चरण नहीं हैं । 1.घ.दो पंक्तियाँ अनुपलब्ध।

इस प्रकार मन्त्र के ज्ञाता सिद्ध मन्त्र का प्रतिदिन छह हजार, एक हजार, तीन सौ अथवा एक सौ संख्या में यत्नपूर्वक जप करें अन्यथा उनकी अधोगति होती है।

ध्यात्वा वीरं परं ब्रह्म राघवं नियतव्रतः[1]।।24।।
चतुर्भुजं शंखचक्रगदापद्मधरं विभुम्।
किरीटिनमुदाराङ्गं वनमालोपशोभितम्।25।।
सीतालंकृतवामाङ्कं पीताम्बरधरं विभुम्।
शुद्धस्फटिकसंकाशं ज्वलन्तं तेजसा मुने।।26।।

नियमों का पालन करते हुए वीर एवं परब्रह्मस्वरूप श्रीराम का ध्यान करें। वे चतुर्भुज देव श्रीराम शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण किए हुए हैं। उनके मस्तक पर मुकुट शोभित है, अंग विशाल हैं, गले में वनमाला शोभित है। ऐसे श्रीराम का वाम भाग श्रीसीता से शोभित है। वे पीले वस्त्र धारण किए हुए हैं और अपने तेज से शुद्ध स्फटिक के समान दीप्तिमान् हैं।

अथवा द्विभुजं देवं[2] नीलोत्पलसमद्युतिम्।
अनेकादित्यसंशोभि[3] पद्मस्योपरिसंस्थितम्।।27।।
काञ्चनप्रख्यया देव्या वामभागस्थयान्वितम्।
लक्ष्मणेन धृतच्छत्रं सुवर्णाभेन धीमता।।28।।
अन्यैश्च सेवितं दिव्यं परिचारैरनेकशः।

अब दो भुजाओं वाले देव श्रीराम का ध्यान करें, जिनकी शोभा नीलकमल के समान है, अनेक सूर्यों की भाँति चमकीले हैं, कमल के आसन पर स्थित हैं। स्वर्ण के समान कान्तिवाली और वामभाग में स्थित श्रीसीता से युक्त हैं। स्वर्ण के समान शोभित, बुद्धिमान् लक्ष्मण श्रीराम के ऊपर छत्र ताने हुए हैं। अन्य परिचारक गण उस दिव्य श्रीराम की सेवा कर रहे हैं।

मानसैरुपचारैस्तु सम्यक् संपूज्य यत्नतः[4]।।29।।
कल्पवृक्षसमुद्भूतैर्भावितं मनसा चितम्।
मूलमन्त्रजपं कुर्यान्नियतं नियतेन्द्रियः।।30।।

ऐसे श्रीराम का ध्यान कर कल्पवृक्ष से उत्पन्न सामग्रियों को मन से चुनकर एकत्रित कर उन उपचारों से देर तक मानस-पूजा करें और जितेन्द्रिय होकर नियमों का पालन करते हुए मूलमन्त्र का जप करें।

---

1. घ. विजितेन्द्रियः।2. ग. अथाजं च विभुं देवं ।3. ग. °संकाशं।4. सेव्यं पूज्यं प्रयत्नतः

बाह्यपूजां ततः कुर्यात् साधनैर्न्यायतोऽर्जितैः।
अन्यायेनार्जिता पूजा निष्फला मुनिसत्तम।।31।।

इसके बाद न्याय से अर्जित साधनों से बाह्य-पूजा करें। अन्याय से उपार्जित साधनों से करने पर वह पूजा निष्फल हो जाती है।

अगस्त्य उवाच

बाह्यपूजां पुनर्वक्ष्ये सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।
स्वगृहे शुद्ध भूभागे विलिप्ते गोमयाम्बुना।।32।।
सुवितानसमायुक्ते पुष्पाद्यैः समलङ्कृते।
गीतवाद्यैस्तु नृत्यैश्च सर्वत्र सुमनोहरैः।।33।।
शुद्धासने समासीन उपचारैः स्वशक्तितः।

अगस्त्य बोले– हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! अब बाह्य-पूजा का स्वरूप कहता हूँ। अपने घर में गाय के गोबर और जल से लीपे हुए सुन्दर चँदोवा टाँगे हुए फूल आदि से सजे हुए पवित्र स्थान पर गाना-बजाना और नाच-गान से मनोरम कर शुद्ध आसन पर अवस्थित अपनी शक्ति के अनुरूप सामग्रियों से बाह्य पूजा करें।

चन्दनागरुकस्तूरीकर्पूरकुङ्कुमादिभिः ।।34।।
हिमाम्बुना सुसंमृष्टैः पूजा कार्या सदा मुने।

चन्दन, अगरु, कस्तूरी, कर्पूर, रोली आदि से जो बर्फ़ के जल में घोला गया हो, उससे पूजा करें।

करवीरैश्च संफुल्लैः श्वेतरक्तैः सुगन्धिभिः।।35।।
पुन्नागैश्चम्पकैश्चैव बकुलैः शतपत्रकैः।
जातीभिर्मल्लिकाभिश्च कह्लारैः कमलैरपि।।36।।
पाटलैः केतकीपुष्पैः पूजयेद् रघुनन्दनम्।

खिले हुए करवीर, जो सफेद या लाल रंग के हों, नागकेसर, चम्पा, बकुल, शतपत्र, जाती, मल्लिका, श्वेतकमल, रक्तकमल, गुलाब और केतकी फूलों से श्रीराम की पूजा करें।

वैष्णवेषु च सर्वेषु शङ्खपूजा प्रयत्नतः।।37।।
कुर्यात् त्रिकालं विधिवद् विधिज्ञः साधकोत्तमः।

विनैव शङ्खपूजां यो वैष्णवः पूजयेद्धरिम्।।38।।
पूजाफलं नैवाप्नोति सम्यग्वा पूजकोऽपि सः।

सभी वैष्णव-पूजाओं में तीनों कालों में, विधानों के ज्ञाता श्रेष्ठ साधक विधानपूर्वक प्रयत्न कर शंख पूजा करें। शंख की पूजा किए विना जो वैष्णव श्रीहरि की पूजा करते हैं, वे अच्छी तरह पूजा करनेवाले भी उस पूजा का फल नहीं प्राप्त करते हैं।

धूपैश्च बहुभिः काम्यैः सुगन्धैर्गुग्गुलोद्भवैः।।39।।
अर्चयेत् परया भक्त्या रघुनाथमनन्यधीः।

अपनी कामना के अनुसार अनेक प्रकार के धूपों से, सुगन्धित गुगगुल के धूप से परम भक्तिपूर्वक एकाग्रचित होकर श्रीरघुनाथ की पूजा करें।

स्नेहसंयुक्तविपुलवर्तिकाभिरनेकधा ।।40।।
आरार्तिभिरनेकाभिः स्थापिताभिः प्रयत्नतः।
पद्मस्वस्तिकरूपेण हंसाकारेण चामरम्।।41।।
भ्रामयेद् रघुनाथस्य पुरस्तात् प्रयतोऽन्वहम्।

तेल, घी आदि से युक्त बड़ी बातियों वाले अनेक प्रकार से अनेक आरतियों से जो प्रयत्नपूर्वक स्थापित की गयी हैं, कमल, स्वस्तिक या हंस की आकृति बनाते हुए श्रीरघुनाथ के समक्ष नियम से चाँवर प्रतिदिन घुमावें।

नैवेद्यैर्भक्ष्यभोज्यादिपूरितं पुरतः स्थितम्।।42।।
सूपापूपामृतोपेतं पायसाद्यं सशर्क्करम्।
बहूपदंशसंशोभि सघृतं सुदधिप्रियम्।।43।।
निवेदयेत् प्रयत्नेन शोभिते शुद्धमुज्ज्वलम्।

भक्ष्य, भोज्य आदि अनेक पदार्थ जैसे, दाल, पूआ, मधु के साथ शक्कर डाला हुआ पायस आदि, अनेक प्रकार की बड़ियों, घी तथा दही से सुसज्जित नैवेद्य जो शुद्ध और उज्ज्वल हो प्रयत्नपूर्वक निवेदित करें।

कर्पूरशकलैर्युक्तं नागवल्लीदलान्वितम्।।44।।
सुधाबिन्दुसमायुक्तं पूगीफलमनोहरम्।
ताम्बूलं रघुनाथस्य दत्वा कामानवाप्नुयात्।।45।।

कर्पूर खण्ड, चूना से युक्त, सुपारी से सुसज्जित कर पान का पत्ता लगाकर ताम्बूल श्रीराम को समर्पित कर सभी कामनाएँ प्राप्त करते हैं।

पूर्वोक्तमेवं संक्षेपाद् विधानं गदितं मुने।
सर्वेषां राममन्त्राणामेवमेवेरितं पुनः।।46।।
त्रिकालमेककालं वा एवं यः पूजयेत्सदा।
सार्वभौमश्चिरं भूत्वा राजा एव भवेदिह।।47।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! पूर्व में कहे गये विधानों को ही यहाँ मैंने संक्षेप में कहा है। सभी राम-मन्त्रों के विधान इसी प्रकार के कहे गये हैं। जो तीनों कालों में या एक काल में प्रतिदिन पूजा करते हैं, वे बहुत दिनों तक इस संसार में एकच्छत्र राजा होते ही हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये मन्त्रान्तरवर्णनं नाम पञ्चविंशोऽध्यायः।।25।।

अथ षड्विंशोऽध्यायः

अगस्त्य उवाच

सर्वानुष्ठानसारं ते सर्वदानोत्तमोत्तमः।
रहस्यं कथयिष्यामि सुतीक्ष्ण मुनिसत्तम।।1।।

अगस्त्य बोले– हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! सभी प्रकार के अनुष्ठानों में से सबसे महत्त्वपूर्ण और सभी दानों में उत्तम दान का रहस्य मैं बतलाता हूँ।

[1]चैत्रे नवम्यां प्राक्पक्षे दिवा पुण्ये पुनर्वसौ।
उदये गुरुगौरांशोः स्वोच्चस्थे ग्रहपञ्चके।।2।।
मेषे पूषणि सम्प्राप्ते लग्ने कर्कटिकाह्वये।
आविरासीत् सकलया कौशल्यायां परः पुमान्।।3।।

हे ब्राह्मण! चैत्र मास के शुल्कपक्ष की नवमी तिथि को पुण्य दिन में जब पुनर्वसु नक्षत्र था, गुरु और चन्द्रमा का उदय हुआ था तथा पाँच ग्रह अपनी अपनी उच्च राशि पर स्थित थे, सूर्य मेष राशि में स्थित थे और उस समय कर्क लग्न था, ऐसे समय में अपनी कला के साथ परम पुरुष श्रीराम का प्राकट्य कौशल्या के गर्भ से हुआ।

---

1. श्लोक संख्या 2-4 तक केवल 'क' में उपलब्ध।

उच्चस्थे ग्रहपञ्चके सुरगुरौ सेन्दौ नवम्यां तिथौ
लग्ने कर्कटके पुनर्वसुयुते मेषं गते पूषणि।
निर्दग्धुं निखिलाः पलाशसमिधो मेध्यादयोध्यारणे-
राविर्भूतमभूतपूर्वविभवं यत्किंचिदेकं महः।।4।।

जब पाँच ग्रह अपनी उच्च राशि में थे, बृहस्पति चन्द्रमा के साथ थे, नवमी तिथि थी, पुनर्वसु नक्षत्र था, सूर्य मेष राशि में थे, तब कर्क लग्न में राक्षस रूपी समिधाओं को जलाने के लिए अयोध्या रूपी पवित्र अरणि से एक अभूतपूर्व राम नामक तेज उत्पन्न हुआ।

(टिप्पणी : पाण्डुलिपि ग. में 'चैत्रे नवम्यां' इत्यादि से 'तु शुक्लपक्षे' तक अनुपलब्ध है। किन्तु पाँचवें श्लोक का अंश 'रघूत्तमः।' उपलब्ध होने कारण उपर्युक्त अंश को भ्रम से खण्डित माना जाना चाहिए, प्रक्षेप नहीं। अतः मैंने इस अंश को मूल पाठ माना है। किन्तु श्लोक संख्या 4 भोजराज कृत चम्पूरामायण' में 1।29 पर भी उपलब्ध है।)

चैत्रे मासे नवम्यां तु शुक्लपक्षे रघूत्तमः।
प्रादुरासीत्पुरा ब्रह्मन् परब्रह्मैव केवलम्।।5।।
तस्मिन् दिने तु कर्तव्यमुपवासव्रतन्तदा[1]।
ततो जागरणं कुर्याद्रघुनाथपरो भुवि।।6।।
प्रातर्दशम्यां कृत्वा तु सन्ध्यादि सकलाः क्रियाः।
सम्पूज्य विधिवद् रामं भक्त्या वित्तानुसारतः।।7।।
ब्राह्मणान् भोजयेद् भक्त्या दक्षिणाभिश्च तोषयेत्।
गो-भू-तिल-हिरण्याद्यैः स्वर्णालङ्करणैस्तथा।।8।।
रामभक्तान् प्रयत्नेन प्रीणयेत् परया मुदा।
एवं यः कुरुते भक्त्या श्रीरामनवमीव्रतम्।।9।।
अनेकजन्मसिद्धानि पातकानि बहून्यपि।
भस्मीकृत्य व्रजत्येव श्रीविष्णोः परमं पदम्।।10।।

चैत्र मास की नवमी तिथि को शुक्लपक्ष में परब्रह्म श्रीराम प्राचीन काल में अवतरित हुए। उस दिन उपवास का व्रत करना चाहिए। इसके बाद श्रीराम का ध्यान करते हुए जागरण करना चाहिए। प्रातःकाल दशमी में सन्ध्या आदि

1. ग. व्रतं सदा।

सभी कृत्य कर श्रीराम की विधिवत् पूजा भक्ति के साथ अपनी आर्थिक स्थिति के अनुसार करें। भक्तिपूर्वक ब्राह्मण भोजन करावें तथा दान-दक्षिणा देकर उन्हें सन्तुष्ट करें। परम प्रसन्न होकर यत्नपूर्वक श्रीराम के भक्तों को सन्तुष्ट करें। ऐसा करने से अनेक जन्मों में उपजे अनेक पाप को भस्म कर वह व्यक्ति विष्णु का परम धाम प्राप्त करता है।

सर्वेषामप्ययं धर्मो मुक्तिभुक्त्यैकसाधनः।
अशुचिर्वापि पापिष्ठः कृत्वेदं व्रतमुत्तमम्।।11।।
पूज्यः स्यात् सर्वभूतानां यथा रामस्तथैव सः।

यह सबके लिए धर्म है, जो भोग और मोक्ष का निश्चित साधन है। चाहे वह अपवित्र हो या सबसे बड़ा पापी क्यों न हो, यह श्रेष्ठ व्रत कर सभी प्राणियों के बीच जैसे श्रीराम पूज्य हैं वैसे वह भी पूज्य हो जाता है।

यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते स तु नराधमः।।12।।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र शंसयः।
त्रैलोक्यपापमश्नाति स्वधर्मो निष्फलो भवेत्।।13।।
यस्तु रामस्य नवमीमनादृत्य नराधमः।
अश्नीयान्नरकं गच्छेद्यावदाचन्द्रतारकम्।।14।।
अकृत्वा रामनवमीव्रतं सर्वोत्तमोत्तमम्।
व्रतान्यन्यानि कुरुते न तेषां फलभाग् भवेत्।।15।।
सर्वव्रतस्य प्रीत्यर्थमिदं श्रीरामव्रतं चरेत्।
रहस्यकृतपापानि प्रख्यातानि बहून्यपि।
महान्ति विप्रणश्यन्ति श्रीरामनवमीव्रतात्।।16।।

जो रामनवमी के दिन भोजन करते हैं, वे मनुष्यों में अधम बन जाते हैं और कुम्भीपाक नरक का ताप भोगते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। तीनों लोकों में पाप के भागी होते हैं, उनका अपना धर्म निष्फल हो जाता है। जो नराधम श्रीराम की नवमी तिथि का अनादर कर भोजन कर लेते हैं वे चन्द्रमा और नक्षत्रों के विद्यमान रहने तक नरक का भोग करते हैं। सभी व्रतों में उत्तम रामनवमी का व्रत न कर जो दूसरे व्रत करते हैं, उन्हें उन अन्य व्रतों का फल नहीं मिलता सभी व्रतों की प्रीति के लिए श्रीराम का व्रत करना चाहिए। इसे करने से गुप्त रूप से या प्रकट रूप से किये गये सभी महान् पाप नष्ट हो जाते हैं।

एकामपि नरो भक्त्या श्रीरामनवमीं मुने।[1]
उपोष्य कृतकृत्यः स्यात्[2] सर्वपापैः प्रमुच्यते।।17।।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! जो नर एक बार भी भक्तिपूर्वक श्रीरामनवमी व्रत कर लेते हैं, वे कृतकृत्य हो जाते हैं और सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

नरो रामनवम्यान्तु श्रीरामप्रतिमाप्रदः।
विधानेन मुनिश्रेष्ठ सुमुक्तो नात्र शंसयः।।18।।

रामनवमी में श्रीराम की मूर्ति का दान विधिपूर्वक करनेवाले भलीभाँति मुक्त हो जाते हैं; इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रीराम प्रतिमादानं विधानं च कथं मुने।
कथयस्व प्रसादेन मयि भक्तस्य विस्तरात्।।19।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे मुनि अगस्त्य! श्रीराम की प्रतिमा दान करने का क्या विधान है? मुझपर प्रसन्न होकर भक्तों की सुविधा के लिए विस्तार से कहें।

अगस्त्य उवाच

कथयिष्यामि ते ब्रह्मन् प्रतिमादानमुत्तमम्।
विधानं चापि यत्नेन यतस्त्वं वैष्णवोत्तमः।।20।।

अगस्त्य बोले- हे ब्राह्मण सुतीक्ष्ण! तुम विष्णु के श्रेष्ठ भक्त हो, अतः मैं प्रतिमा-दान की विधि यत्नपूर्वक कहूँगा।

अष्टम्यां चैत्रमासस्य शुक्लपक्षे जितेन्द्रियः।
दन्तधावनपूर्वन्तु प्रातः स्नायाद्यथाविधि।।21।।

चैत्र मास के शुक्लपक्ष की अष्टमी तिथि को जितेन्द्रिय होकर पहले दातून कर प्रातःकाल विधानपूर्वक स्नान करें।

नद्यां तडागे कूपे वा ह्रदे प्रस्त्रवणेऽपि वा।
ततः सन्ध्यादिकं कुर्यात् संस्मरन् राघवं हृदि।।22।।
गृहमागत्य विप्रेन्द्र कुर्यादौपासनादिकम्।

नदी, तालाब, कुआँ, झील या जलप्रपात में स्नान करें। तब हृदय में श्रीराम का ध्यान करते हुए सन्ध्यावंदन आदि करें। इसके बाद घर आकर दैनिक उपासना करें।

---

1. ग. श्रीरामनवमीव्रतात्।2. ग. भक्त्या यः कुर्यात् ।

दान्तं कुटुम्बिनं विप्रं वेदशास्त्ररतं सदा।।23।।
श्रीरामपूजानिरतं सुशीलं दम्भवर्जितम्।
विधिज्ञं राममन्त्राणां राममन्त्रैकसाधकम्।।24।।
आहूय भक्त्या सम्पूज्य वृणुयात् श्रद्धयान्वितः।
श्रीरामप्रतिमादानं करिष्येऽहं द्विजोत्तम।
तत्राचार्यो भव प्रीतः श्रीरामोऽपि त्वमेव मे।।25।।

तब उदार विचार वाले, परिवार वाले और जो वेद और शास्त्र में रमे रहते हों, श्रीराम की पूजा करते हों, सुशील, अहंकार रहित हों, श्रीराम के मन्त्रों की विधानों का ज्ञान रखते हों तथा श्रीराम के मन्त्र को सिद्ध किए हों, ऐसे ब्राह्मण को भक्तिपूर्वक आमन्त्रित कर श्रद्धा के साथ उनका वरण करें- 'हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! मैं श्रीराम की प्रतिमा का दान करूँगा। इस अनुष्ठान में आप आचार्य हों तथा मेरे ऊपर प्रसन्न हों। मेरे लिए श्रीराम भी आप ही हैं।'

इत्युक्त्वापूज्य तं विप्रं स्नापयित्वा ततः स्वयम्।
तैलेनाभ्यङ्गमास्नायात् चिन्तयन् राघवं हृदि।।26।।

ऐसा कहकर उस विप्र की पूजा कर उन्हें स्नान कराकर फिर हृदय में श्रीराम का ध्यान करते हुए तेल लगाकर स्वयं स्नान करें।

श्वेताम्बरधरः श्वेतगन्धमाल्यानि धारयेत्।
अर्चितो भूषितश्चैव कृतमाध्याह्निकक्रियः।।27।।
आचार्यं भोजयेत् पश्चात् सात्त्विकान्नैः सुविस्तरैः।
भुञ्जीत स्वयमप्येवं हृदि राममनुस्मरन्।।28।।

श्वेत वस्त्र पहनकर श्वेत एवं सुगन्धित माला धारण करें। अर्चित और भूषित होकर मध्याह्नकालिक कृत्यों को सम्पन्न कर अनेक प्रकार के सात्त्विक भोज्य पदार्थों से आचार्य को भोजन कराकर स्वयं भी हृदय में श्रीराम का स्मरण करते हुए भोजन करें।

एकभुक्तव्रती तत्र सदाचारो जितेन्द्रियः।
वसेत् स्वयं तथैकान्ते श्रीरामार्पितमानसः।।29।।
शृण्वन् रामकथां दिव्यामहःशेषं नयेन्मुने।

एकभुक्त व्रत करते हुए सदाचारपूर्वक जितेन्द्रिय होकर एकान्त में रहते हुए श्रीराम के प्रति मन समर्पित कर श्रीराम की दिव्य कथा सुनते हुए दिन का शेष भाग व्यतीत करें।

सायं सन्ध्यादिकाः कुर्यात् सदाराममनुस्मरन्।।30।।
आचार्य सहितो रात्रावधःशायी जितेन्द्रियः।

सायंकाल श्रीराम का स्मरण करते हुए सन्ध्यावंदन आदि कृत्य करें तथा रात्रि में आचार्य के साथ भूमि पर जितेन्द्रिय होकर शयन करें।

ततः प्रातः समुत्थाय स्नात्वा सन्ध्यां विधाय च।।31।।
प्रातः सर्वाणि कर्माणि शीघ्रमेव समर्पयेत्।

इसके बाद प्रातःकाल उठकर स्नान और सन्ध्यावंदन कर सभी कर्मों को शीघ्र सम्पन्न करें।

चतुर्द्वारं पताकाढ्यं सुवितानं सुतोरणम्।।32।।
मनोरमं महोत्सेधं पुष्पाद्यैः समलङ्कृतम्।।
शङ्खचक्रहनूमद्भिः प्राग्द्वारे समलङ्कृतम्।
गरुत्मच्छार्ङ्गबाणैश्च दक्षिणे समलङ्कृतम्।।35।।
गदापद्माङ्गदैश्चैव पश्चिमे समलङ्कृतम्।
पद्मस्वस्तिकनीलैश्च कौबेरे समलङ्कृतम्।।36।।
मध्ये हस्तश्चतुष्काद्ये वेदिकायुक्तमायतम्।
प्रविश्य गीतवृत्तैश्च वाद्यैश्चापि हि संयुतम्।।37।।

तब ऐसे विशाल गृह में प्रवेश करें, जहाँ चार हाथ की वेदी बनी हुई हो, चारो ओर द्वार हों, पताकाएँ फहरा रही हों, चन्दोवा टँगे हों, वंदनबार लगे हों, सुन्दर, विशाल और फूल आदि से सजे हों। इस भवन का पूर्व द्वार शंख, चक्र एवं हनुमान् से अलंकृत हों, दक्षिण द्वार पर गरुड, शार्ङ्ग एवं बाण, पश्चिम द्वार पर गदा, पद्म एवं अंगद हों तथा पद्म, स्वस्तिक एवं नील उत्तरी द्वार पर हों। बीच में चार हाथ लम्बाई और चौड़ाई की वेदी बनी हुई है।

पुण्याहं वाचयित्वात्र विद्वद्भिः प्रीतमानसैः।
ततः संकल्पयेद् देवं राममेव स्मरन् मुने।।38।।

अस्यां रामनवम्यां च रामाराधनतत्परः।
उपोष्याष्टसु यामेषु पूजयित्वा यथाविधि।।39।।
इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां सुप्रयत्नतः।
श्रीरामप्रीतये दास्ये रामभक्ताय धीमते।।40।।
प्रीतो रामो हरत्वाशु पापनि सुबहूनि मे।
अनेकजन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च।।41।।

इस घर में गाते-बजाते लोगों के साथ प्रवेश कर प्रसन्नचित्त विद्वानों द्वारा पुण्याहवाचन करावें। इसके बाद भगवान् श्रीराम का स्मरण करते हुए इस प्रकार संकल्प करें:-

'इस रामनवमी में मैं श्रीराम की आराधना करता हुआ आठो पहर उपवास कर विधिपूर्वक श्रीराम की पूजा कर श्रीराम की इस स्वर्णमयी प्रतिमा को प्रयत्नपूर्वक श्रीराम की प्रीति के लिए श्रीराम के भक्त को दान करता हूँ। इससे प्रसन्न श्रीराम मेरे अनेक महान् पापों को हर लें, जो मेरे द्वारा अनेक जन्मों में बार बार किए गये हैं।'

ततः स्वर्णमयीं रामप्रतिमां पलमानतः।
निर्मितां द्विभुजां दिव्यां वामाङ्कस्थितजानकीम्।।42।।
विभ्रतीं दक्षिणकरे ज्ञानमुद्रां महामते।
वामेनाधः करेणाराद् देवीमालिङ्ग्य संस्थिताम्।।43।।
सिंहासने राजतेऽत्र पलद्वयविनिर्मिते।
पञ्चामृतस्नानपूर्वं सम्पूज्य विधिवन्नरः।।44।।
मूलमन्त्रेण नियतो न्यासपूर्वमतन्द्रितः।
दिवैवं विधिवत्कृत्वा रात्रौ जागरणन्ततः।।45।।

इसके बाद एक पल सोना से निर्मित श्रीराम की प्रतिमा लें, जिसमें दो भुजाएँ हों, वाम भाग में जानकीजी हों, दक्षिण हाथ ज्ञान मुद्रा में हों और वायें हाथ से देवी का आलिंगन दूर से किए हो। ऐसी प्रतिमा को दो पल सोना से निर्मित सिंहासन पर विराजित करें पञ्चामृत से स्नान कराकर पूर्व में न्यास कर मूलमन्त्र से नियमपूर्वक विना आलस्य किए हुए प्रतिमा-पूजन करें। दिन में इस प्रकार विधानपूर्वक कृत्य सम्पन्न कर रात्रि में जागरण करें।

दिव्यां रामकथामुक्त्वा रामभक्तैः समन्वितः।
नृत्योत्सवादिभिश्चैव रामस्तोत्रैरनेकधा।।46।।
यामाष्टकं यथान्यायं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।
सकर्पूरागरुश्चैव कह्लाराद्यैरनेकधा।47।।
पूजयेद् विधिवद् भक्त्या दिवारात्रं नयेद् बुधः।

रात्रि में श्रीराम के भक्तों के साथ श्रीराम की दिव्यकथा कहकर, नृत्य, उत्सव आदि तथा अनेक प्रकार के श्रीराम-स्तोत्रों से आठो पहर विधान के साथ चन्दन, फूल, अक्षत आदि सामग्रियों से कपूर, अगर, और कमल आदि फूलों से अनेक प्रकार से पूजन करें। इस प्रकार श्रीराम की विधिवत् भक्तिपूर्वक पूजा करते हुए दिन-रात व्यतीत करें।

[यहाँ पाण्डुलिपि क. में चन्दन के निर्माण की विधि एवं प्रभेद मूल पाठ के साथ उपलब्ध है। यह अंश ग. एवं घ. में नहीं होने के कारण इसे टिप्पणी के रूप में रखा गया है–

(सकर्पूरागरुश्चैव) कस्तूरीचन्दनन्तथा।।47।।
कङ्कोलञ्च भवेदेभिः पञ्चभिर्यक्षकर्दमः।
कस्तूरिकायाः द्वौ भागौ चत्वारश्चन्दनस्य च।
कुङ्कुमस्य त्रयश्चैव शशिनः स्याच्चतुस्समम्।।48।।
कुङ्कुमं केशरञ्चैव शशिकर्प्पूर एव च।
कर्पूरचन्दनं दर्पं कुङ्कुमं च समांशकम्।।49।।
सर्वगन्धमितिंप्रोक्तं समस्तैश्च सुवल्लभम्।

कपूर, अगरु, कस्तूरी, चन्दन और कंकोल इन्हें मिलाकर यक्षकदम बनाया जाता है। दो भाग कस्तूरी, चार भाग चन्दन, तीन भाग रोली और चार भाग श्वेतकर्पूर मिलाकर 'चतुस्सम' नामक सुगन्धित द्रव्य होता है। अथवा कुंकुम, केसर, श्वेतकर्पूर, ये तीनों मिश्रित करें। अथवा कर्पूर, चन्दन, कस्तूरी और रोली समान मात्रा में मिलायें, इसे 'सर्वगन्ध' कहते हैं।]

ततः प्रातः समुत्थाय स्नान-सन्ध्यादिकाः क्रियाः।।48।।
समाप्य विधिवद्रामं पूजयेत् पूर्ववन्मुने।

तब प्रातःकाल उठकर स्नान, सन्ध्या आदि सभी कृत्य समाप्त कर विधिवत् पूर्वोक्त रीति से श्रीराम की पूजा करें।

ततो होमं प्रकुर्व्वीत मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।।49।।
पूर्वोक्तपद्मकुण्डे वा स्थण्डिले वा यथाविधि।
लौकिकाग्नौ विधानेन शतमष्टोत्तरन्ततः।।50।।
साज्येन पायसेनैव स्मरन् राममनन्यधीः।।51।।

इसके बाद मन्त्रज्ञानी मूलमन्त्र से पूर्वोक्त हवन कुण्ड में अथवा स्थण्डिल पर होम करें। यह होम विधानपूर्वक लौकिक अग्नि में श्रीराम का स्मरण करते हुए घृत युक्त पायस से कम से कम एक सौ आठ बार करें।

ततो भक्त्या तु संतोष्य आचार्यं पूजयेन्मुने।
कुण्डलाभ्यां सरत्नाभ्यामङ्गुलीयैरनेकधा।।52।।
गन्धपुष्पाक्षतैर्वस्त्रैर्विचित्रैः सुमनोहरैः।
ततो रामं स्मरन् दद्यादिदं मन्त्रमुदीरयन्।।55।।
इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्।
चित्रवस्त्रयुगाच्छन्नां रामोऽहं राघवाय ते।।56।।
श्रीरामप्रीतये दास्ये तुष्टो भवतु राघवः।
प्रीतो रामो हरत्वाशु पापानि सुबहून्यपि।।57।।
अनेक जन्मसंसिद्धान्यभ्यस्तानि महान्ति च।

हे मुनि सुतीक्ष्ण! तब कुण्डल, रत्न, अंगूठी आदि अनेक वस्तुओं से आचार्य को सन्तुष्ट कर चन्दन, फूल, अक्षत आदि से आराधना कर रंग-बिरंगे सुन्दर वस्त्र समर्पित कर श्रीराम का स्मरण करते हुए इस मन्त्र को पढ़ते हुए दान करें- "हे आचार्य! आप श्रीराम स्वरूप हैं। मैं भी श्रीराम स्वरूप हूँ। रंग-बिरंगा एक जोड़ा वस्त्र में छिपी हुई तथा अलंकृत श्रीराम की यह स्वर्णमयी प्रतिमा श्रीराम की प्रीति के लिए आपको दे रहा हूँ। इससे श्रीराम प्रसन्न हों तथा अनेक जन्मों में अर्जित तथा बार बार किए गये मेरे महापाप श्रीराम हर लें।"

इति दत्वा विधानेन दद्याद् वै दक्षिणान्तरम्।।58।।
अन्येभ्यश्च यथान्यायं गो-हिरण्यादिशक्तितः।
दद्याद् वासोयुगं धान्यं यथा विभवमादृतः।।59।।

इस प्रकार विधानपूर्वक दान कर दूसरी दक्षिणा करें। दूसरे लोगों को भी उचित रीति से गाय, स्वर्ण आदि शक्ति के अनुसार दान करें। जोड़ा वस्त्र, धन-सम्पत्ति भी विभवानुसार दान करें।

ब्राह्मणैः सह भुञ्जीत तेभ्यो दद्याच्च दक्षिणाम्।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।60।।
तुलापुरुषदानादिफलं प्राप्नोति मानवः।
अनेकजन्मसंसिद्धपापेभ्यो मुच्यते ध्रुवम्।।61।।
बहुना किमिहोक्तेन मुक्तिस्तस्य करे स्थिता।
कुरुक्षेत्रे महापुण्ये सूर्यपर्वण्यशेषतः।।62।।
तुलापुरुषदानादि कृते तत् लभ्यते फलम्।
तत्फलं लभ्यते मर्त्यैर्दानेनानेन सुव्रत।।63।।

इसके बाद ब्राह्मणों के साथ भोजन करें और उन्हें दक्षिणा भी दें। इस प्रकार प्रतिमा-दान करने से वह ब्रह्महत्या आदि पापों से मुक्त हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं। तुलापुरुष दान आदि का फल वह व्यक्ति पाता है। अनेक जन्में के संचित पापों से मुक्त हो जाता है। कुरुक्षेत्र में, पुण्य क्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय अशेष रूप से तुलापुरुष-दान (पुरुष के भार के बराबर स्वर्णदान) का जो फल मिलता है, वही मानव इस दान से पाता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामव्रतकथनं नाम षड्विंशोऽध्यायः।।26।।

विशेष

(इस अध्याय में श्लोक संख्या 55 के बाद निम्नलिखित अंश केवल पाण्डुलिपि क. में उपलब्ध है, किन्तु पूर्वापर अनन्वय तथा अकाण्डप्रथन के कारण यह अंश प्रक्षिप्त प्रतीत होता है। ऐसी सम्भावना है कि किसी लिपिकार ने उक्त स्थल पर पाद-टिप्पणी के रूप में अनुकल्पों का उल्लेख किया होगा, जिसे प्रतिलिपिकार ने खण्डित मूल अंश समझकर कालान्तर में पाठ के साथ जोड़ दिया होगा। **इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्।** यह पंक्ति दो बार मिलने के कारण इस स्थिति की सम्भावना बढ़ जाती है। इस अंश को यहाँ अनवाद के साथ दिया जा रहा है–

इमां स्वर्णमयीं रामप्रतिमां समलङ्कृताम्।

इस स्वर्णमयी प्रतिमा को जो अलंकृत है-------

अभावे सर्वरत्नानां हेम सर्वत्र योजयेत्।।56।।

रुद्रबीजं परं पूतं यतस्तस्यैव सर्वदा।

सभी प्रकार के रत्नों के अभाव में सभी स्थलों पर सुवर्ण का व्यवहार करें। या रुद्राक्ष परम पवित्र है, उसी का व्यवहार करें।

सुवर्णं परमं दानं सुवर्णं दक्षिणा परा।

सर्वेषामेव दानानां सुवर्णं दक्षिणेष्यते।।57।।

सुवर्ण का दान श्रेष्ठ है और सुवर्ण दक्षिणा भी श्रेष्ठ है। सभी दानों में सुवर्ण दक्षिणा मानी जाती है।

श्रद्धापूतः शुचिर्दान्तो दानं दद्यात् सदक्षिणम्।

अदक्षिणन्तु यद्दानं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्।।58।।

श्रद्धा से पवित्र, पवित्र, मृदु स्वभाव वाले व्यक्ति दक्षिणा के साथ दान करें। विना दक्षिणा का जो दान किया जाता है, वह सब निष्फल होता है

देयद्रव्यतृतीयांशं दक्षिणां परिकल्पयेत्।

अनुक्ते दक्षिणादाने दशांशं वापि शक्तितः।।59।।

दान की गयी वस्तु की तेहाई दक्षिणा रखें। जहाँ दक्षिणा का उल्लेख न हो वहाँ दशांश अथवा शक्ति के अनुसार करें।]

सप्तविंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

प्रायेण हि नराः सर्वे दरिद्राः कृपणाः मुने।

असामर्थ्याद् विधानेऽस्मिन् कथन्तेषां विधिः प्रभो।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा– हे मुनि अगस्त्य! सभी मनुष्य प्रायः दरिद्र और कृपण होते हैं। यदि इस विधान का सामर्थ्य उनमें न हो, तब वे कैसे आराधना करेंगे।

अगस्त्य उवाच

अशक्तो यो महाभाग तस्य वित्तानुसारतः।

पलार्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।।2।।

वित्तशाठ्यमकृत्त्वैव कुर्यादितद् व्रतं मुने।

अगस्त्य बोले—हे महाभाग! जो सामर्थ्यहीन हों, वे धन के अनुसार पल का आधा, चौथाई, या अष्टमांश सुवर्ण से निर्मित प्रतिमा का दान करें। सम्पत्ति रहे तो विना छुपाये तथा न रहे, तो भी दिखावटी भी नहीं करते हुए ही यह व्रत करें।

यदि घोरतरादृष्टं यातनां[1] नेहते क्वचित्।।3।।

अकिंचनोऽपि नियतं उपोष्य नवमीदिनम्।

कृत्वा जागरणं भक्त्या रामभक्तैः समन्वितः।।4।।

स्मरन् रामं धिया भक्त्या पूजयेद् विधिवन्मुने।

यदि भाग्य अत्यन्त कठोर हो, फिर भी वे कष्ट का अनुभव न करें। जिसके पास कुछ भी नहीं हो, वह भी नियमपूर्वक नवमी में उपवास कर श्रीराम के भक्तों के साथ रात में जागरण कर श्रीराम का स्मरण करते हुए भक्तिपूर्वक पूजा करें।

जपन् राममनुंमायारमानङ्गसमन्वितम्।।5।।

एकाक्षरं वा विधिवत्सर्वन्यासकृतोन्नतिः।

विधानपूर्वक सभी प्रकार के न्यासों से उन्नत होकर साधक श्रीराम के मन्त्र को माया (ह्रीं), रमा (श्रीं) और कामबीज (क्लीं) से संयुक्त कर अथवा एकाक्षर मन्त्र (रां) का जप करें।

प्रातः स्नात्वा च विधिवत् कृत्वा सन्ध्यादिकाः क्रियाः।।6।।

गो-भू-तिल-हिरण्यादि दद्याद् वित्तानुसारतः।

श्रीरामचन्द्रभक्तेभ्यो विद्वद्भ्यः श्रद्धयान्वितः।।17।।

प्रातःकाल विधिपूर्वक स्नान और सन्ध्यावंदन आदि क्रियाएँ कर धन-सम्पत्ति के अनुसार गाय, भूमि, तिल, सुवर्ण आदि श्रीराम के भक्त विद्वानों को श्रद्धापूर्वक दान करें।

पारणं च प्रकुर्वीत ब्राह्मणैः सह भक्तितः।

एवं यः कुरुते भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते।।8।।

ब्राह्मणों के साथ भक्तिपूर्वक पारणा करें। ऐसा जो करते हैं, वे सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं।

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः।

उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते।।9।।

1. ग. पापानां।

श्रीरामनवमी का दिन आने पर जो मूर्ख मनुष्य उपवास नहीं करते हैं, वे कुम्भीपाक नरक में पचते हैं।

यत्किंचिद् राममुद्दिश्य नो ददाति स्वशक्तितः।
रौरवेषु स मूढात्मा पच्यते नात्र संशयः।।10।।

अपनी शक्ति के अनुसार जो कुछ श्रीराम को लक्ष्य कर अपनी शक्ति के अनुसार दान नहीं करता है, वह मूर्ख रौरव नरक में पचता है, इसमें सन्देह नहीं।

सुतीक्ष्ण उवाच

यामाष्टकेषु पूजा वै त्वया प्रोक्ता महामुने।
मूलमन्त्रेण चेत्युक्तं तत्कथं वद सुव्रत।11।।

हे महामुनि सुतीक्ष्ण! आपने आठो यामों में पूजा की जो विधि बतलायी है और यह भी कहा है कि मूलमन्त्र से यह पूजा की जानी चाहिए। हे सुव्रत! अगस्त्य यब बतलाइये कि मूलमन्त्र से कैसे पूजा होगी?

अगस्त्य उवाच

सर्वेषां राममन्त्राणां मन्त्रराजं षडक्षरम्।
तारकं ब्रह्म वेदोक्तं तेन पूजा प्रशस्यते।।12।।

(अगस्त्य बोले–) सभी राम-मन्त्रों में छह अक्षरों का मन्त्रराज वेद में तारक ब्रह्म का स्वरूप कहा गया है। इससे पूजा प्रशस्त होती है।

दशमाध्यायविधिना[1] पूजा कार्या प्रयत्नतः।
द्वारपीठाङ्गदेवानांमावृतीनां तथैव च।।13।।
आदावेव प्रकुर्वीत देवस्य प्रतिमां ततः।।
उपचारैः षोडशभिः पूजां कुर्याद्यथाविधि।।14।।

प्रयत्नपूर्वक दशम अध्याय में उक्त विधि से षोडशोपचार से द्वार देवता, पीठ देवता, अंग देवता तथा अन्य आवरण-देवताओं की पूजा विधान से करनी चाहिए।

आवाहनं स्थापनं च संनिधापनमेव च।
संनिरोधनमेव स्यादवगुण्ठनमञ्जसा।।15।।
तत्तन्मुद्राभिरेवं स्याद् देवं संप्रार्थ्य भक्तितः।
शङ्खपूजां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना मुने।।16।।

1. ग. एवं घ. दशाक्षरविधानेन।

देवता का आवाहन, स्थापन, संनिधापन, संनिरोधन अवगुंठन उन उन मुद्राओं से करें तथा भक्तिपूर्वक उनकी प्रार्थना कर शंखपूजा पूर्व में कही गयी विधि से करें।

कलशं वामभागस्थं पूजाद्रव्याणि चादरात्।
पात्रं च प्रोक्षयेद् भक्त्या चात्मानं मन्त्रमुच्चरन्।।17।।

वाम भाग में स्थित कलश, पूजा-सामग्रियों, पात्रों एवं स्वयं का प्रोक्षण भक्तिपूर्वक मन्त्र का उच्चारण करते हुए करें।

प्रतिमां शंखपूजां च कुर्यादेवमनुस्मरन्।
पात्रासादनमप्येवं कुर्याद् देवमतन्द्रितः।।18।।

प्रतिमा का प्रोक्षण तथा शंख की पूजा भी इसी प्रकार श्रीराम का स्मरण करते हुए करें तथा वाम भाग में पात्रों को यथास्थान रखने का कार्य भी आलस्य छोड़कर इसी प्रकार करें।

पीताम्बराणि देवाय प्रार्थितान्यर्पयेत् सुधीः।
स्वर्णयज्ञोपवीतानि दद्याद् देवाय शक्तितः।।19।।
नानारत्नविचित्राणि दद्यादाभरणानि च।

विद्वान् यजमान पीले वस्त्रों की प्रार्थना कर देवता को अर्पित करे। स्नर्ण-निर्मित यज्ञोपवीत आदि भी देवता को समर्पित करे। नाना प्रकार के रत्नों से जड़े हुए आभूषण भी समर्पित करें।

हिमाम्बुघृष्टरुचिरघनसारसमन्वितम् ।।20।।
गन्धं दद्यात्प्रयत्नेन चागरुं च सकुङ्कुमम्।
मूलमन्त्रेण सकलानुपचारान्प्रकल्पयेत्।।21।।

बर्फ के पानी में घिसा हुआ सुन्दर कपूर, कुंकुम तथा अगर से युक्त गन्ध समर्पित करें। सभी उपचार मूलमन्त्र से कल्पित करें।

कह्लारकेतकीजातीपुन्नागाद्यैः प्रपूजयेत्।
चम्पकैः शतपत्रैश्च सुगन्धैः सुमनोहरैः।।22।।

सुगन्धित एवं सुन्दर कमल, केतकी, जाती, नागकेसर, चम्पा, शतपत्र के पुष्पों से पूजन करें।

घण्टां च वादयन् धूपं दीपं चास्मै समर्पयेत्।
भक्ष्यभोज्यादिकं भक्त्या देवाय विधिनार्पयेत्।।23।।

घण्टा बजाते हुए धूप, दीप, भक्ष्य, भोज्य आदि पदार्थ देवता को विधिपूर्वक समर्पित करें।

एवं सोपस्करं देवं दत्वा पापैः प्रमुच्यते।
जन्मकोटिकृतैः घोरैर्नानारूपैः सुदारुणैः।।24।।
विमुक्तस्तत्क्षणादेव राम एव भवेन्मुने।

इस प्रकार उपकरणों के साथ देवता को समर्पित कर अनेक प्रकार के दारुण, करोड़ों जन्मो में किये गये पापों से वह उसी समय मुक्त होकर श्रीराम का स्वरूप प्राप्त कर लेता है।

श्रद्दधानस्य ते प्रोक्तं श्रीरामनवमीव्रतम्।।25।।
सर्वलोकहितार्थाय पवित्रं पापनाशनम्।

हे मुनि! आप श्रद्धावान् हैं, इसलिए मैंने सभी लोगों के कल्याण के लिए पवित्र और पापों का नाश करनेवाले श्रीरामनवमी व्रत के बारे में बतलाया।

लौहेन निर्मितं चापि शिलया दारुणापि वा।।26।।
येन केन प्रकारेण यस्मै कस्मै क्रमान्मुने।
चैत्रशुक्लनवम्यां तु दत्वा विप्राय भक्तितः।।27।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेदेव न संशयः।

लोहा, पत्थर अथवा काष्ठ की बनी हुई प्रतिमा जिस किसी भी प्रकार से जिस किसी ब्राह्मण को विधानपूर्वक चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को दान कर सभी पापों से मुक्त होता ही है, इसमें सन्देह नहीं।

तस्मिन् दिने महापुण्ये स्नानदानादिकं मुने।।28।।
कृतं सर्वप्रयत्नेन यत्किंचिदपि भक्तितः।
महादानादितुल्यं स्याद्रामोद्देशेन कल्पितम्।
वित्तशाठ्यमकृत्वैव सर्वं कुर्यात् स्वशक्तितः।।

उस महान् पुण्यमय दिन में जो कुछ भी स्नान, दान आदि भक्ति एवं यत्नपूर्वक किया जाता है, वह अक्षय्य होता है। श्रीराम के उद्देश्य से जो कुछ भी किया जाता है वह महादान आदि के समान फलदायी होता है। अपनी सम्पत्ति की अनदेखी न करते हुए अपनी शक्ति के अनुसार सबकुछ करना चाहिए।

तस्मिन् दिने महापुण्ये प्रातरारभ्य भक्तितः।।29।।
जपेदेकान्त आसीनो यावत्स्याद्दशमीदिनम्।

उस महापुण्यमय दिन में प्रातःकाल से आरम्भ कर एकान्त में बैठकर जबतक दशमी तिथि रहे, तबतक जप करें।

तेनैव स्यात् पुरश्चर्य्या दशम्यां भोजयेद् द्विजान्।।30।।
भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।
कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति।।31।।

उसी मन्त्र से पुरश्चरण किया जाना चाहिए, दशमी में अनेक प्रकार के भक्ष्य-भोज्य पदार्थों से ब्राह्मण-भोजन करना चाहिए और शक्ति के अनुसार दक्षिणा दी जानी चाहिए। इससे वह व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है; उसपर श्रीराम तुरत प्रसन्न होते हैं।

तद्दिने तु नरो याति पुनरावृत्तिवर्जितः।
द्वादशाब्दशतेनापि यत्पापं नापमृज्यते।।32।।
विलयं याति तत्सर्वं श्रीरामनवमीदिने।
जपेन राममन्त्राणां योऽयं जानाति तस्य तु।।33।।

रामनवमी के दिन यह सब करने से मनुष्य पुनर्जन्म से रहित मोक्ष प्राप्त कर लेते है। बारह वर्षों में भी जो पाप नहीं कटता, वे सारे पाप श्रीरामनवमी के दिन श्रीराम के मन्त्र के जप से नष्ट होते हैं, साथ ही, जो इसे जानते हैं, उनके भी पाप नष्ट हो जाते हैं।

उपोष्य च स्मरन् रामं न्यासपूर्वमनन्यधीः।
गुरोर्लब्धमनुर्यस्तु तस्य न्यासपुरस्सरम्।।34।।
यामे यामे च विधिवद्रामपूजां समाहितः।[1]

उपवास कर श्रीराम का स्मरण करते हुए एकाग्रचित्त हो गुरु से प्राप्त मन्त्र का न्यासपूर्वक जप करना चाहिए तथा पहर-पहर पर ध्यान लगाकर विधिवत् श्रीराम की पूजा करनी चाहिए।

मुमुक्षवोऽपि च सदा श्रीरामनवमीव्रतम्।।35।।
[1]न त्यजन्ति सुरश्रेष्ठो देवेन्द्रोऽपि विशेषतः।

हमेशा मोक्ष की कामना करनेवाले भी श्रीरामनवमी का व्रत नहीं छोड़ते हैं। विशेष रूप से देवताओं में श्रेष्ठ देवराज इन्द्र भी रामनवमी व्रत नहीं छोड़ते हैं।

1. ग. यामेन विधिवत् सर्व कुर्यात् पूजां समाहितः।

तस्मात्सर्वात्मना सर्वे कृत्वैव नवमीव्रतम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।।36।।

अत: सबलोग सभी प्रकार से नवमी व्रत करके ही सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं और सनातन ब्रह्म को प्राप्त करते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामनवमीव्रतविधानं नाम सप्तविंशोऽध्याय:।

अष्टाविंशोऽध्याय:

अगस्त्य उवाच

चैत्रमासे नवम्यां तु जातो राम: स्वयं हरि:।
पुनर्वस्वृक्षसहिता सा तिथि: सर्वकामदा।।1।।
श्रीरामनवमी प्रोक्ता कोटिसूर्यग्रहाधिका।
चैत्रशुद्धे तु नवमी पुनर्वसुयुता यदि।।2।।[1]

चैत्र मास की नवमी तिथि को स्वयं विष्णु श्रीराम के रूप में उत्पन्न हुए। पुनर्वसु नक्षत्र के साथ वह तिथि सभी कामनाएँ पूर्ण करती है। यह श्रीरामनवमी कही गयी है, जो करोड़ों सूर्यग्रहण के से अधिक पुण्यदायिनी है, यदि चैत्र मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि में पुनर्वसु नक्षत्र का योग रहे।

पुनर्वस्वृक्षसंयोग: स्वल्पोऽपि यदि दृश्यते।
चैत्रशुद्धनवम्यां तु सा तिथि: सर्वकामदा।।3।।

पुनर्वसु नक्षत्र का संयोग यदि थोड़ा भी दिखायी दे, तो चैत्र शुक्ल नवमी की वह तिथि सभी कामनाएँ पूर्ण करती है।

अस्मिन् दिने महापुण्ये राममुद्दिश्य भक्तित:।
यत्किञ्चित् क्रियते कर्म तद्भवक्षयकारकम्।।4।।

उस महापुण्यमय दिन में श्रीराम को लक्ष्य कर भक्ति से जो कुछ भी कर्म किये जाते हैं, वे पुनर्जन्म का नाश करते हैं।

उपोषणं जागरणं पितृनुद्दिश्य तर्पणम्।
तस्मिन् दिने तु कर्त्तव्यं ब्रह्मप्राप्तिमभीप्सुभि:।।5।।

---

1. ग. यहाँ से चार चरण अनुपलब्ध।

उपवास, जागरण पितर को लक्ष्य कर तर्पण उस दिन सनातन ब्रह्म की प्राप्ति के लिए करना चाहिए।

राम एव परं ब्रह्म तद्दिने रामतोषकम्।
उपोषणं जागरणं तस्मात्कुर्याद् विशेषतः[1]।।6।।
यस्तु रामनवम्यां तु भुङ्क्ते मोहाद् विमूढधीः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः।।7।।
यस्तु रामनवम्यांतु नियतस्तर्पयेत् पितॄन्।
ते सर्वे तत्क्षणादेव यान्ति विष्णोः परं पदम्।।8।।

श्रीराम परब्रह्म श्रीराम को प्रसन्न करनेवाले उपवास और जागरण आदि करना चाहिए। जो मूर्ख मोहवश रामनवमी के दिन भोजन करते हैं, वह घोर कुम्भीपाक आदि नरकों में दग्ध होते हैं, इसमें सन्देह नहीं। जो रामनवमी के दिन नियमपूर्वक पितरों का तर्पण करते हैं, वे उस समय से विष्णु के परम पद को प्राप्त करते हैं।

यस्तु रामनवम्यां तु दद्याद् वित्तानुसारतः।
यत्किंचिदपि तत्सर्वं महादानसमं भवेत्।।9।।

जो रामनवमी के दिन अपने विभव के अनुसार जो कुछ भी दान करते हैं, उन्हें महादान के समान फल मिलता है।

यस्तु रामनवम्यां तु कुर्याद्रामव्रतं यदि।
तुलापुरुषदानादि फलं प्राप्नोति मानवः।।10।।

जो रामनवमी में श्रीराम का व्रत करता है, वह मनुष्य तुलापुरुष आदि दान का फल पाता है।

सूर्यग्रहे कुरुक्षत्रे महादानैः कृतैर्मुहुः।
यत्फलं तदवाप्नोति श्रीरामनवमीव्रतात्।।11।।

कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय बार बार महादान करने का फल श्रीरामनवमी व्रत करने से मनुष्य प्राप्त करता है।

कुर्याद्रामनवम्यां तु उपोषणमतन्द्रितः।
मातुर्गर्भमवाप्नोति नैव रामो भवेत्स्वयम्।।12।।

1. ग. तस्मात् कुर्यात् प्रयत्नतः।

रामनवमी के दिन आलस्य छोड़कर उपवास करे, तो वह पुनः माता का गर्भ प्राप्त नहीं करता है और श्रीराम-स्वरूप हो जाता है।

नवमी चाष्टमी विद्धा त्याज्या रामपरायणैः[1]।
उपोषणं नवम्यां वै दशम्यामेव पारणम्।।13।।

श्रीराम में परायण भक्तों के द्वारा अष्टमीविद्धा नवमी का त्याग करना चाहिए और नवमी में उपवास कर दशमी में पारणा करनी चाहिए।

नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम्।
द्विभुजं कञ्जनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम्।।14।।
वसिष्ठाद्यैश्च परितो वृतं रत्नकिरीटिनम्।
सीतासंलापचतुरं दिव्यगन्धादिशोभितम्।।15।।
चापद्वयकरेणारात्[2] सेवितं लक्ष्मणेन च।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च पार्श्वयोरथ सेवितम्।।16।।
ध्यायन्ननन्यहृद्रामं द्वादशाक्षरमन्वहम्।
प्रजपेद् दीक्षितो नित्यं श्रीरामन्यासपूर्वकम्।।17।।
मन्त्रसन्ध्यां विधायैव त्रिकालं पूजयेत् सदा।।18।।

नीलकमल के समान श्यामल वर्ण वाले, पीताम्बरधारी, दो हाथों वाले, कमलनयन, दिव्य सिंहासन पर स्थित, वसिष्ठ आदि पार्षदों से चारो ओर से घिरे हुए, रत्न का मुकुट धारण करनेवाले, श्रीसीता के साथ आलाप करने में चतुर, दिव्य चन्दन आदि से शोभित दो धनुष हाथ में लिए हुए लक्ष्मण द्वारा दूर से सेवित, दोनों पार्श्वों में शत्रुघ्न और भरत से सेवित प्रभु श्रीराम का हृदय में अनन्य भाव से ध्यान करते हुए प्रतिदिन श्रीराम के द्वादशाक्षर मन्त्र का जप श्रीराम का न्यास कर, मन्त्र सन्ध्या करके ही करें और तीनों कालों में हमेशा पूजा करें।

सुतीक्ष्ण उवाच

भगवन् योगिनां श्रेष्ठ सर्वशास्त्रविशारद।
किं तत्त्वं किं परं जाप्यं किं ध्यानं मुक्तिसाधनम्।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं ब्रूहि मे मुनिसत्तम।।19।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे भगवान् अगस्त्य! आप योगियों में श्रेष्ठ हैं, सभी शास्त्रों का ज्ञान रखते हैं। हे मुनिश्रेष्ठ! मैं जानना चाहता हूँ कि तत्त्व क्या है? जप का परम मन्त्र क्या है ध्यान क्या है और मुक्ति का उपाय क्या है? यह सभ मुझे कहें।

1. यह श्लोक धर्मशास्त्रीय ग्रन्थों में 'विष्णुपरायणैः' पाठान्तर के साथ उपलब्ध है।
2. ग. चापबाणकरेणारात्।

अगस्त्य उवाच

सुतीक्ष्ण त्वं महाभाग शृणु वक्ष्यामि तत्त्वतः।
यत्परं यद्गुणातीतं यज्ज्योतिरमलं शुभम्।।20।।
तदेव परमं तत्त्वं कैवल्यपदकारणम्।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण! आप महान् भाग्यशाली हैं। मैं वास्तविक रूप से कहता हूँ, इसे सुनें। जो परम सत्ता है, सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों से भी ऊपर जो निर्मल और शुभ ज्योति है, वही परम तत्त्व है और मोक्षप्राप्ति का साधन भी है।

श्रीरामेति परं जाप्यं तारकं ब्रह्मसंज्ञितम्।।21।।
ब्रह्महत्यादिपापघ्नमिति वेदविदो विदुः।
श्रीराम राम रामेति ये वदन्त्यपि सर्वदा।।22।।
तेषां भुक्तिश्च मुक्तिश्च भविष्यति न संशयः।

'श्रीराम' यह पद जप का परम मन्त्र है। इसे उद्धार करनेवाला तथा ब्रह्म कहा गया है। वेदज्ञानी इसे ब्रह्महत्या आदि पापों का नाशक कहते हैं। 'श्रीराम राम राम' इसे जो प्रतिदिन बोलते भी हैं, उन्हें संसार में धन-सम्पत्ति का भोग और देहान्त के बाद मोक्ष मिलता है, इसमें सन्देह नहीं।

नमस्कृत्वा प्रवक्ष्यामि रामं कृष्णमनामयम्।।23।।
अयोध्यानगरे रम्ये रत्नमण्डपमध्यगे।
स्मरेत् कल्पतरोर्मूले रत्नसिंहासनं शुभम्।।24।।

अब मैं श्रीराम को प्रणाम कर कृष्णवर्ण के पुण्यमय श्रीराम के ध्यान को कहता हूँ। अयोध्या नगर में सुन्दर रत्नमण्डप के बीच में कल्पवृक्ष की जड़ में स्थित रत्नमय शुभ सिंहासन का स्मरण करना चाहिए।

तन्मध्येष्टदलं पद्मं नानारत्नप्रवेष्टितम्।
सौवर्णं राजतं वापि कारयेद् रघुनन्दनम्।।25।।
पार्श्वे भरतशत्रुघ्नौ ध्वजच्छत्रधरावुभौ।
चापद्वयसमायुक्तं लक्ष्मणं कारयेत् सुधीः।।26।।

इस मण्डप के बीच नाना प्रकार के रत्नों से जड़े अष्टदल कमल पर श्रीराम की सुवर्ण अथवा चाँदी से निर्मित प्रतिमा स्थापित करें दोनों पार्श्वों में छत्र और ध्वज धारण किए हुए भरत और शत्रुघ्न तथा दो धनुष थामे हुए लक्ष्मण की प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए।

मातुरङ्कगतं रामामिन्द्रनीलसमप्रभम्।
कोमलाङ्गं विशालाक्षं विद्युद्वर्णसमावृतम्।।27।।
भानुकोटिप्रतीकाशं किरीटेन विराजितम्।
रत्नग्रैवेयकेयूररत्नकुण्डलमण्डितम् ।।28।।
रत्नकङ्कणमञ्जीरकटिसूत्रैरलंकृतम् ।
श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं मुक्ताहारोपशोभितम्।।29।।
सौवर्णे राजते पात्रे षट्कोणञ्च समं लिखेत्।
अलाभे बिल्वपीठे वा स्थापयेद्रघुनन्दनम्।।30।।

माता कौशल्या की गोद में स्थित, नीलम के समान कान्ति वाले, कोमल अंगों वाले, विशाल आँखों वाले, बिजली के समान आभा से घिरे हुए, करोड़ों सूर्य के समान, मुकुटधारी, रत्नमय हार, बाजूबंद तथा रत्नमय कुण्डल से सुशोभित, रत्नमय कंगन, मंजीर, करधनी से अलंकृत श्रीवत्स और कौस्तुभमणि हृदय पर धारण किए हुए, मोती की मालाओं से सजे श्रीराम की स्थापना सुवर्ण अथवा चाँदी के पात्र में षट्कोण लिखकर करें। उपलब्ध न रहने पर बेल की लकड़ी से बनी चौकी पर स्थापना करें।

वस्त्रद्वयसमायुक्तं दिव्यरत्नविभूषितम्।
अस्त्रशक्तिसमायुक्तं देवेशं पूजयेत् क्रमात्।।31।।

एक जोड़ा वस्त्र से युक्त, दिव्य रत्नों से आभूषित, अस्त्र की शक्ति से युक्त देवेश श्रीराम की पूजा क्रम से करें।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमः शब्दं ततो वदेत्।
भगवत्पदमासाद्य वासुदेवाय इत्यपि।।32।।
[1]ततः सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः।
इति मन्त्रेण तन्मध्ये कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं पुनः।।33।।

सबसे पहले 'ॐ' ऐसा बोलकर तब 'नमः' पद बोलें। इसके बाद 'भगवत्' पद (भगवते) कहकर 'वासुदेवाय' यह भी कहें। तब 'सर्वात्मसंयोगयोगपीठात्मने नमः' इस मन्त्र से बीच में पुष्पाञ्जलि करें।

1. यहाँ से चार चरण क. में अनुपलब्ध।

एवं सम्पूजिते पीठे देवमावाह्य पूजयेत्।
अर्घ्यादिधूपदीपान्तमुपचारान् निधाय च।।34।।
ततोऽनुज्ञाप्य देवेशं परिचारांश्च पूजयेत्।

इस प्रकार पीठ की पूजा कर उसपर देव श्रीराम का आवाहन कर अर्घ्य से धूप-दीप तक उपचार समर्पित कर देवेश के प्रति आत्मनिवेदन कर श्रीराम के परिचारकों की पूजा करें।

पूर्वादिषट्सु कोणेषु हृदयादीनि च क्रमात्।।35।।
मूलमन्त्रेण कर्तव्यमुपचारास्तु षोडश।
इन्द्रादिलोकपालाँश्च वसिष्ठादिमुनीनपि।।36।।
सर्वं दिक्पालमन्त्रेण पूजयेद् भक्तिसंयुतम्।
अशोककुसुमैर्युक्तमर्घ्यं देवस्य दापयेत्।।37।।

पूर्व दिशा से प्रारम्भ कर षट्कोण में हृदयादि का न्यास करें और षोडशोपचार मूलमन्त्र से करें। इन्द्र आदि लोकपाल और वसिष्ठ आदि मुनियों की भी पूजा दिक्पाल के मन्त्र से भक्तिपूर्वक करें तथा अशोक के फूल से युक्त अर्घ्य समर्पित करें।

दशाननवधार्थाय देवानां हिताय च[1]।
धर्मसंस्थापनार्थाय दैत्यानां निधनाय च।।37।।
परित्राणाय साधूनां जातो रामः स्वयं हरिः।
गृहाणार्घ्यम्मया दत्तं भ्रातृभिः सहितोऽनघ।।38।।

"रावण के वध के लिए, देवताओं के कल्याण के लिए, धर्म की स्थापना के लिए तथा सज्जनों की रक्षा के लिए स्वयं भगवान् विष्णु श्रीराम के रूप में उत्पन्न हुए। हे पुण्यस्वरूप श्रीराम! मेरे द्वारा अर्पित यह अर्घ्य अपने भ्राताओं के साथ स्वीकार करें।"

प्रतिमायां विशेषेण अर्चयेद्रघुनन्दनम्।
पौराणस्तोत्रपाठैश्च वेदपारायणेन च।।39।।
नृत्यगीतैश्चवाद्यैश्च रात्रिशेषं व्यपोह्य च।

विशेष रूप से प्रतिमा पर श्रीराम की अर्चना पुराणोक्त स्तोत्रों का पाठ कर, वेद मन्त्रों का पाठ कर, नृत्य, गीत, वाद्य आदि से रात्रि में जागरण के साथ करें।

1. ग. विभीषणश्रियेऽपि वा ।

प्रातः स्नात्वा च गायत्रीं[1] जप्त्वा सन्ध्यामुपास्य च।।40।।
दशाक्षरेण मन्त्रेण देवेशं मनसा स्मरेत्।
देवदेवं प्रणम्याथ पूर्ववत् पूजयेद् व्रती।।41।।

प्रातःकाल में स्नान कर गायत्री जप एवं सन्ध्यावंदन कर दशाक्षर मन्त्र से देवेश श्रीराम का मन से स्मरण करें। देवों के देव श्रीराम को प्रणाम कर व्रत करने वाले पूर्वोक्त विधि से पूजा करें।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये रामनवमीव्रतविधानं नाम अष्टाविंशोऽध्यायः।।

अथ एकोनत्रिंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

सर्वेतिहासतत्त्वज्ञ श्रुतिस्मृतिविदां वर।[2]
न्यासा बहुविधाः प्रोक्तास्त्वयादौ मन्त्रयोगतः।।1।।
तत्र कश्च कथं कुर्यात् कथयस्व महामुने।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे महामुनि अगस्त्य! आप सभी इतिहासों का तत्त्व जानते हैं, वेद और स्मृतियों के ज्ञानियों में श्रेष्ठ है। आपने पूर्व में मन्त्र के योग से अनेक प्रकार के न्यासों का उपदेश किया, अब यह कहें कि साधक किस न्यास को कैसे करेगें।

अगस्त्य उवाच

न्यासः स्यान्मन्त्रसन्नाहो न्यासहीनो न सिद्धिदः।।2।।
तस्मान्न्यासः प्रयत्नेन कर्तव्यः सिद्धिमिच्छता।

अगस्त्य बोले- मन्त्र का कवच न्यास कहलाता है, अतः न्यासरहित मन्त्र से सिद्धि नहीं मिलती है। इसलिए सिद्धि चाहते हुए साधक प्रयत्नपूर्वक न्यास करें।

वैष्णवानां हि मन्त्राणां सर्वेषां च विशेषतः।।3।।
न्यासः केशवकीर्त्यादि तत्त्वन्यासः ततः परम्।
न्यासः परमहंसाख्य ईरितः कविभिः सदा।।4।।

1. ग. सावित्रीं। 2. ग. श्रुतिस्मृतिविशारद ।

सभी वैष्णव-मन्त्रों का तत्त्व-न्यास केशवकीर्त्यादि-न्यास है। इसके बाद 'परमहंस' नामक न्यास कहलाता है।

मातृकां विन्दुसंयुक्तां शुद्धां मन्मथसंयुताम्।
मायावेदादिसंयुक्तां केशवादिन्तथैव च।।5।।
आभ्यन्तरीं मातृकां च कृत्वानुष्ठानमाचरेत्।

बिन्दु युक्त केवल मातृका वर्ण अथवा कामबीज (क्लीं), माया (ह्रीं) वेद (ॐ) आदि से युक्त तथा केशवादि से युक्त न्यास तथा आभ्यन्तर मातृका न्यास कर अनुष्ठान करना चाहिए।

अस्यानुष्ठानमखिलं सकलं मुनिसत्तम।।6।।
अशक्तश्चेन्मन्त्रमात्रमुच्चरन् नियतोऽन्वहम्।
सर्वान् कामानवाप्नोति स रामो राममाप्नुयात्।।7।।

इसका समग्र अनुष्ठान सफल होता है। यदि साधक अशक्त हो, तो नियमपूर्वक प्रतिदिन केवल मन्त्र का जप करता हुआ सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। वह रामस्वरूप होकर श्रीराम को प्राप्त करता है।

सुतीक्ष्ण उवाच

श्रुतं त्वत्तो मया ब्रह्मन् रामस्याद्‌भुतकर्मणः।
विधानं सर्वमन्त्राणां सरहस्यमशेषतः।।8।।
दशाक्षरादिमन्त्राणां विधानं च विशेषतः।
ज्ञानञ्च सम्यग्विधिवद् ब्रह्मप्राप्त्यैक साधनम्।।9।।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि प्रतिष्ठाविधिमञ्जसा।
कदा कुत्र कथं चेति सर्वज्ञस्त्वं यतोऽसि मे।।10।।
ब्रूहि श्रद्दधतः स्वामिन् यतः कारुणिको भवान्।।11।।

सुतीक्ष्ण बोले- अद्‌भुत कृत्यों के कर्ता श्रीराम की पूजा का विधान तथा उनके सभी मन्त्रों का रहस्य मैंने आपसे सुन लिया। दशाक्षर आदि मन्त्रों का विशेष विधान तथा विधिवत् सम्यक् ज्ञान भी प्राप्त किया, जो ब्रह्मप्राप्ति का साधन है। अब संक्षेप में मूर्ति-प्रतिष्ठा की विधि सुनना चाहता हूँ कि किस दिन, किस स्थान पर और कैसे प्रतिष्ठा करनी चाहिए। आप तो सबकुछ जानते हैं; आपके प्रति मेरी श्रद्धा है अतः हे स्वामी! मुझे यह बतलाएँ; क्योंकि आप तो करुणा करनेवाले हैं।

अगस्त्य उवाच

सम्यक् पृष्टं त्वया विद्वन् गुह्याद् गुह्यतमं परम्।
यः पश्यति हरेः पुण्यां प्रतिष्ठां विधिवत्कृताम्।।12।।
सोऽपि पुण्यतमो लोके पापात् सद्यो विमुच्यते।
श्रीरामस्य प्रतिष्ठायाः फलं वक्तुं पितामहः।।13।।
न शक्तः स्यान्महेशोऽपि सहस्रवदनोऽपि च।

अगस्त्य बोले- हे सुतीक्ष्ण! आपने ठीक ही प्रश्न किया। यह जिस किसी भी व्यक्ति को कहने योग नहीं है, सँभालकर रखने की वस्तु है। जो विधानपूर्वक की गयी विष्णु की मूर्ति-स्थापना का दर्शन करते हैं, वे इस संसार में श्रेष्ठ पुण्य प्राप्त करते हैं और पापों से मुक्त हो जाते हैं। श्रीराम की प्रतिष्ठा का फल बखानने में ब्रह्मा, महेश और शेषनाग भी समर्थ नहीं हैं।

येन केन प्रकारेण यत्र कुत्रापि वा मुने।।14।।
यैः कैश्चिद् कृतं चेत् स्यात् लोके धन्यतमा हि ते।
कालप्रतीक्षां नो कुर्याद् विधिं चापि विशेषतः।।15।।
यदैव भक्तिरुत्पन्ना तदा स्थाप्यो रघूद्वहः।

हे मुनि! जिस किसी भी विधि से जहाँ कहीं भी जो कोई व्यक्ति श्रीराम की मूर्ति-प्रतिष्ठा करते हैं, वे सबसे अधिक धन्य हो जाते हैं। इसमें अच्छे मुहूर्त की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए, उचित विधान के भी भरोसे नहीं रहना चाहिए, जिस दिन ही भक्ति उपजे, उसी दिन श्रीराम की स्थापना करनी चाहिए।

विनापि चन्द्रतारादिबलं नक्षत्रमेव च।।16।।
चैत्रशुद्धनवम्यां तु प्रतिष्ठाप्यो रघूत्तमः।
अशक्तश्चेन्नवम्यां तु माघशुद्धदिनेऽपि वा।।17।।

चैत्र शुक्ल नवमी को चन्द्र, तारा आदि का बलाबल और नक्षत्रों की शुद्धि न रहने पर भी श्रीराम की स्थापना करें। माघ मास के शुक्लपक्ष की नवमी तिथि को भी स्थापना करें।

चन्द्रतारादिसम्पन्ने प्रतिष्ठाप्यो विधानतः।
मार्गशीर्षेऽथवा पूर्णे वैशाखे वा समाहितः।।18।।
मूलादिदोषरहिते प्रतिष्ठा राघवस्य तु।
प्रकुर्याच्च विधानेन शक्त्या भक्त्या प्रयत्नतः।।19।।

अग्रहण अथवा वैशाख मास की पूर्णिमा को चन्द्र तारा आदि के बली होने पर मूल आदि नक्षत्र-दोष न रहने पर विधानपूर्वक श्रीराम की प्रतिष्ठा करें। प्रयत्न कर विधान से अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति के साथ स्थापना करें।

गोपालस्य प्रतिष्ठायां श्रावणं शस्यते सदा।
नृसिंहानां तु वैशाखे केशवस्यापि शस्यते।।20।।
चैत्रे तु रामचन्द्रस्य माघे वापि बलान्विते।
अनन्तस्यापि माघे स्यादन्येषां च यथारुचि।।21।।

श्रीकृष्ण की स्थापना में श्रावण मास, नृसिंह और केशव आदि की स्थापना में वैशाख प्रशस्त मास हैं। श्रीराम की स्थापना चैत्र मास में और चन्द्रतारा आदि बली रहे तो माघ में एवं अनन्त भगवान् की स्थापना माघ में करें। अन्य देवताओं की स्थापना अपनी रुचि के अनुसार करें।

सर्वकालेषु सर्वत्र प्रतिष्ठाप्यो रघूत्तमः।
न लग्नं न तिथिर्वारो न नक्षत्रबलं न च।।22।।

सभी कालों में, किसी भी स्थान पर श्रीराम की स्थापना करें, इसके लिए, लग्न, तिथि, दिन और नक्षत्र के बल की गणना अपेक्षित नहीं है।

चैत्रशुद्धनवम्यां च स्थाप्यो रामो मुमुक्षुभिः।
सर्वान् कामानवाप्नोति माघे शुभबलान्विते।।23।।
कुर्यात् श्रीरामचन्द्रस्य प्रतिष्ठां वै नरोत्तमः।
मार्गशीर्षे च वैशाखेऽप्येवमेव यथाविधिः।।24।।

मोक्ष चाहनेवाले चैत्र शुक्ल नवमी को श्रीराम की स्थापना करें। इससे उनकी सभी कामनाओं की पूर्ति होती है। माघ मास में चन्द्र और तारा का शुभ बल देखकर मनुष्यों में श्रेष्ठ श्रीराम की स्थापना करें। अग्रहण और वैशाख में भी यही नियम है।

सूर्यग्रहे महापुण्ये कुरुक्षेत्रे विधानतः।
कृतैर्यत्पुण्यमाप्नोति तुलापुरुषकादिभिः।।25।।
तत्पुण्यं प्राप्नुयान्मर्त्यः प्रतिष्ठाप्य रघूत्तमम्।
यः कुर्याद्रामचन्द्रस्य प्रतिष्ठां विधिवन्नरः।।26।।
ऐहिकानखिलान् भोगान् भुक्त्वा नारायणो भवेत्।

वर्द्धते तत्कुलं भौमे कल्पकोटिशताधिकम्।।27।।
नापण्डितो नापि मूर्खो न दरिद्रोऽपि तत्कुले।
नावैष्णवोऽपि जायेत कदाचिदपि कुत्रचित्।।28।।

सूर्य-ग्रहण के समय कुरुक्षेत्र में विधानपूर्वक तुलापुरुष आदि दान करने से जो पुण्य मिलता है, वही श्रीराम की मूर्तिप्रतिष्ठा करके मिलता है। जो मनुष्य विधानपूर्वक श्रीरामचन्द्र की मूर्ति स्थापित करते हैं, वे सांसारिक सभी सुखों का भोगकर नारायण हो जाते हैं। इस संसार में उनके कुल की वृद्धि सौ करोड़ कल्पों तक होती है। उनके कुल में सभी विद्वान् होते हैं कोई न तो मूर्ख होता है, न दरिद्र। कभी कहीं भी उनके कुल में विष्णु की भक्ति से हीन नहीं होते।

लौहेन निर्मिता वापि दारुणा वा यथाविधि।
कारयेत् प्रतिमां रम्यां श्रीरामस्य शुभे दिने।।29।।
लक्ष्मणस्यापि सीतायाः मारुतेश्च विशेषतः।
सीता स्वर्णनिभा कार्या लक्ष्मणोऽपि तथा भवेत्।।30।।

लोहा अथवा काष्ठ से शुभ दिन में श्रीराम की सुन्दर प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। अपने अपने वैशिष्ट्य के अनुसार लक्ष्मण, सीता और हनुमान् की भी प्रतिमा का निर्माण कराना चाहिए। सीता की प्रतिमा सोना के समान चमकीली होनी चाहिए, लक्ष्मण की भी उसी प्रकार होनी चाहिए।

संशोध्य देवतागारं निर्माणस्थानमुत्तमम्।
शल्यलोष्टादिवर्ज्यञ्च कुर्याद्यत्नेन शोधयेत्।।31।।
खनेत् तद्भूप्रदेशान्तं जलोत्पत्तिर्यथा भवेत्।
यथा पाषाणसिकताः पूरयेत्पूर्ववत् सुधीः।।32।।
कुट्टिमं च प्रकुर्वीत निवासस्थानमुत्तमम्।
शुद्धरम्यशिलापट्टैरनेकैश्च सुविस्तरैः।।33।।
देववासप्रदेशं तु पूर्ववद्भूमिकोन्नतम्।
हस्तद्वयोन्नतं कुर्यात् सुविस्तीर्णं मनोरमम्।।34।।
कुर्याद्देवालयं रम्यं सर्वनेत्रोत्तमं परम्[1]।

1. क. सर्वनेत्रोत्सवं यथा।

प्राकारं कारयेत्तत्र चतुर्गोपुरसंयुतम्[1]।।35।।
पीठं रम्यं प्रकुर्वीत शिलायां चोन्नतोन्नतम्।
हस्तद्वयायतं कुर्याच्चतुरस्रं सुशोभनम्।।36।।

मन्दिर तथा चारों ओर के स्थान से काँटा, गड़ा हुआ ढेला (पत्थर, ईट आदि का टुकड़ा) प्रयत्नपूर्वक हटाकर शोधन करें। तब उस स्थान पर तब तक खुदाई करें, जबतक पानी नहीं छूट जाता है। तब उस गड्डे को पत्थर और बालू आदि से भर दें और ऊपर पत्थर कूट कूट कर दृढ़ बनावें। इस उत्तम निवास स्थान को शुद्ध तथा सुन्दर बड़े शिलापट्टों से मन्दिर की भूमि को पूर्वोक्त विधि से दो हाथ ऊँची और सुन्दर रूप से विस्तृत करें। वहाँ पर रम्य देवालय का निर्माण करें, जो सबकी आँखों को अच्छा लगे। वहाँ चारों ओर मेहराव से युक्त भवन बनाएँ। उसमें पत्थर की शिला पर क्रमशः ऊँचा करते हुए सुन्दर पीठ का निर्माण करावें। यह पीठ दो हाथ लंबा-चौड़ा चौकोर और सुन्दर होना चाहिए।

अग्रभागे हनूमन्तं पीठस्य विलिखेन्मुने।
पीठशुद्धिं प्रकुर्वीत वक्ष्यमाणविधानतः।।37।।
लिखेदाग्नेयदिग्भागे सुग्रीवं द्विभुजं पुनः।
दक्षिणे भरतं चैव नैर्ऋत्ये च विभीषणम्।।38।।
पश्चिमे लक्ष्मणं चैव वायव्येऽङ्गदमेव च।
शत्रुघ्नं चोत्तरे भागे ऐशान्यामृक्षनायकम्[2]।।39।।

इस पीठ के अग्रभाग में हनुमान् की आकृति बनावें। तब आगे कहीं जानेवाली विधि से पीठ की शुद्धि करें। अग्निकोण में दो बाहों वाले सुग्रीव, दक्षिण में भरत, नैर्ऋत्य कोण में विभीषण पश्चिम में लक्ष्मण, वायव्य में अंगद, उत्तर में शत्रुघ्न और ईशान कोण में जाम्बवान् को उत्कीर्ण करें।

ततः श्रीरामचन्द्रं च पीठस्योपरि वै लिखेत्।
सौवर्णे राजते वापि ताम्रे वापि यथाविधि।।40।।
शिलायां वा प्रकुर्वीत चतुरस्रं सुशोभितम्।
द्वात्रिंशदङ्गुलं वापि षोडशाङ्गुलमेव च। ।41।।
देवस्य स्थापनस्थाने तद्यन्त्रं स्थापयेन्मुने।

1. ग. रम्यगोपुरसंयुतम्। 2. ग. ऐशान्ये जाम्बुनायकम् ।

इसके बाद पीठ के ऊपर श्रीराम को सुवर्ण, रजत, ताम्र अथवा प्रस्तर के पीठ पर विधि के अनुसार उत्कीर्ण करें। देवता की स्थापना के स्थान पर उनके यन्त्र की स्थापना करें। यह यन्त्र सुन्दर चौकोर, बत्तीस अथवा सोलह अंगुल परिमाण का होना चाहिए।

अङ्कुरार्पणमादौ तु सप्तपञ्चत्रिवासरे।।42।।
यथाविधि प्रकुर्वीत चन्द्रताराबलान्विते।

सबसे पहले सात, पाँच अथवा कमसे कम तीन दिन पूर्व अंकुरार्पण चन्द्र तारा आदि के बली होने पर विधान से करें।

गणेशप्रार्थनां कुर्यात् सर्वविघ्नोपशान्तये।।43।।
सुवर्णप्रतिमां पूज्यां वस्त्रद्वयसमन्विताम्।
कुटुम्बिने दरिद्राय ब्राह्मणाय निवेदयेत्।।44।।
एकाक्षरो गणेशस्य ध्यानमार्गेण यत्नतः।
श्रीरामप्रतिमां वापि दशाक्षरविधानतः।।45।।
आत्ममूलेन वाचापि द्वादशाक्षरमार्गतः।
येन केनापि मार्गेण कारयेद्विधिवन्मुने।।46।।

तब गणेश की प्रार्थना सभी प्रकार के विघ्नों की शान्ति के लिए करें। जोड़ा वस्त्र से युक्त स्वर्ण-प्रतिमा की पूजा कर गृहस्थ एवं दरिद्र ब्राह्मण को दान करें। गणेश का एकाक्षर मन्त्र है, जिसका ध्यान कर अथवा श्रीराम की प्रतिमा को दशाक्षर मन्त्र के विधान से अथवा अपने मूल मन्त्र से अथवा द्वादशाक्षर मन्त्र की विधि से जिस किसी भी प्रकार से स्थापना कराएँ।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये श्रीरामप्रतिष्ठाविधिर्नाम
एकोनत्रिंशोऽध्यायः।।29।।

अथ त्रिंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

कथं दशाक्षरादीनां मार्गो वै मुनिसत्तम।
आचक्ष्व सरहस्यं मे त्वयि भक्तस्य सुव्रत।।1।।

सुतीक्ष्ण ने पूछा- हे मुनिश्रेष्ठ! दशाक्षर आदि मन्त्र की कैसी पद्धति है, यह मुझे रहस्य के साथ बताएँ, जो आपकी दृष्टि में हो।

अगस्त्य उवाच।

साधु वक्ष्यामि ते सर्वं शृणुष्वावहितो मुने।
सीतालङ्कृतवामाङ्कं द्विभुजं चारुलोचनम्।।2।।
वामहस्तेन सीतायाः स्पृशन्तं स्तनमण्डलम्।
ज्ञानमुद्रायुतेनान्येनापि तल्लोकसुन्दरम्।।3।।
धनुर्द्वययुतेनापि लक्ष्मणेन सुशोभितम्।
कोटिकन्दर्पसंकाशं राघवं करुणाकरम्।।4।।
उपविष्टं पद्ममध्ये वीरासनमनोहरम्।
हनुमत्सेवितं चाग्रे कुर्यादेवं मनोहरम्।।5।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि! अच्छा, मैं तुम्हें सब कहता हूँ, उसे ध्यानपूर्वक सुनो। जिनके वामभाग में सीता शोभित हों, बायें हाथ से सीता के स्तनमण्डल को स्पर्श करते हुए दूसरे हाथ से ज्ञानमुद्रा धारण करनेवाले दो भुजाओं वाले एवं सुन्दर आँखों वाले श्रीराम का ध्यान करें। जो दो धनुष लिए हुए लक्ष्मण से शोभित हैं, करोड़ों कामदेव के समान सुन्दर हैं, कमल के मध्य में वीरासन में बैठे हुए हैं, करुणा करनेवाले हैं तथा जिनके आगे हनुमान आज्ञा की प्रतीक्षा में है।

दशाक्षरोऽयं कथितो विधिना मुनिपुङ्गवैः।
नीलोत्पलदलश्यामं पीताम्बरधरं विभुम्।।6।।
द्विभुजं कंजनयनं दिव्यसिंहासने स्थितम्।
वसिष्ठाद्यैः परिवृतं हाररत्नकिरीटिनम्।।7।।
सीतासंलापचतुरं दिव्यगन्धादिशोभितम्।
चापद्वयकरेणारात् सेवितं लक्ष्मणेन च।।8।।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च पार्श्वयोरुपसेवितम्।

ऐसे श्रीराम का दशाक्षर मन्त्र 'क्लीं सीतारामचन्द्राभ्यां नमः' है। नीलकमल के समान श्यामल वर्णवाले, पीताम्बरधारी, दो हाथों वाले, कमलनयन, दिव्य सिंहासन पर स्थित, वसिष्ठ आदि पार्षदों से चारो ओर से घिरे हुए, रत्न का मुकुट धारण करनेवाले, श्रीसीता के साथ आलाप करने में चतुर, दिव्य चन्दन आदि से

शोभित दो धनुष हाथ में लिए हुए लक्ष्मण द्वारा दूर से सेवित, दोनों पार्श्वों में शत्रुघ्न और भरत से सेवित प्रभु श्रीराम ध्यातव्य हैं।

ध्यायन्ननन्यधी रामं द्वादशाक्षरमन्वहम्।।9।।
प्रजपेद्दीक्षितो नित्यं श्रीरामन्यासपूर्वकम्।
मन्त्रसन्ध्यां विधायैव त्रिकाले पूजयेत् सदा।।10।।

ऐसे श्रीराम का ध्यान करते हुए दीक्षित द्वादशाक्षर मन्त्र 'रां क्लीं ह्रीं ऐं हुं क्षौं श्रीं आं क्रौं फट् स्वाहा' प्रतिदिन श्रीराम का न्यास और मन्त्रसन्ध्या कर जप करे और तीनों कालों में पूजन करे।

क्रीडन्तं सीतया सार्द्धं नीलजीमूतसन्निभम्।
वृषाकपिच्छाद्यष्टेन वसिष्ठेन स्मृतं विभुम्।।11।।
तद्वदादाय सौमित्रं चापबाणग्रहोद्यतम्।
चापद्वयभृतं पश्चाल्लक्ष्मणं तु सुशोभनम्।।12।।
सर्वलोकहितोद्युक्तं पीताम्बरधरं विभुम्।
ध्यायन् सप्ताक्षरं जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते।।13।।

सीता के साथ क्रीडा करते हुए, नील मेघ के समान, वृषाकपिच्छ[1] अर्थात् हनुमान् आदि आठ देवताओं और वसिष्ठ के द्वारा स्मरण किए गये श्रीराम, जिनके पीठ पीछे दो धनुष लिए हुए सुन्दर रूप वाले लक्ष्मण धनुष और बाण लेकर तैयार हैं। ऐसे श्रीराम, जो सभी लोकों की भलाई करने के लिए तैयार हैं, पीत वस्त्र धारण करते हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान कर सात अक्षरों वाला मन्त्र जपकर सभी पापों से मुक्त हो जाता है।

सुनीलाम्बुदसंकाशं धनुर्बाणकरं मुने।
ध्यायेदष्टाक्षरं जप्त्वा राम एव भवेत्ततः।।14।।

सुन्दर नील मेघ के समान तथा हाथ में धनुष और बाण धारण करने वाले श्रीराम का ध्यान करते हुए अष्टाक्षर मन्त्र का जपकर इससे साधक राम ही हो जाये।

ज्ञानमुद्रालसद्बाहुं हनुमत्सेवितं पुनः।
शत्रुघ्नभरताभ्यां च लक्ष्मणेन समावृतम्।।15।।
ध्यायेदेकाक्षरं जप्त्वा मुक्तो भवति भाजनम्।

1. वैदिक साहित्य में 'वृषाकपि' वानरवाची शब्द प्रयुक्त हुआ है।

श्रीराम हाथ से ज्ञान मुद्रा धारण किए हुए हैं, हनुमान् जिनकी सेवा कर रहे हैं तथा शत्रुघ्न, भरत और लक्ष्मण से घिरे हुए हैं। ऐसे श्रीराम का ध्यान करते हुए आधार स्वरूप एकाक्षर मन्त्र का जप कर साधक मोक्ष प्राप्त करता है।

अन्याश्च मूर्त्तयः सन्ति बहवो मुनिसत्तम।।16।।
आसामन्यतमा मूर्तिः स्थापनीया प्रयत्नतः।
मन्त्राँस्तु वैष्णवानुक्त्वा मूलमन्त्रस्य चेतसा।।17।।
देवस्यापि प्रकुर्वीत ततोऽस्ति किमतः परम्।
प्राणप्रतिष्ठां तन्न्यासान् यथाविधि विचक्षणाः।।18।।
लक्ष्मणस्यापि मन्त्रस्य न्यासं देव्याश्च मारुतेः।
शत्रुघ्नभरतादीनां कुर्य्याद्यत्नेन देशिकः।।19।।

हे मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण! श्रीराम की ऐसी अन्य अनेक मूर्तियाँ हैं। इनमें से एक मूर्ति की स्थापना यत्नपूर्वक करनी चाहिए। वैष्णव-मन्त्रों का उच्चारण कर मूल मन्त्र का उचित प्रयोग करें, इससे बढ़कर और क्या होगा? लक्ष्मण, देवी सीता तथा हनुमान् के दिव्य-मन्त्रों को तथा शत्रुघ्न, भरत आदि के मन्त्रों का भी न्यास प्रयोग-साधक यत्नपूर्वक करें।

सुतीक्ष्ण उवाच

लक्ष्मणादिमनूनां च विधानं लक्षणं मुने।
वक्तुमर्हसि मे सर्वं भक्तस्यैवं दयानिधे।।20।।

सुतीक्ष्ण ने कहा- हे दयानिधि अगस्त्य! लक्ष्मण आदि के मन्त्रों के लक्षण एवं विधान भी आप मुझे कह सकते हैं, क्योंकि मैं भी भक्त हूँ।

अगस्त्य उवाच

शृणु वक्ष्यामि ते सर्वं सुविस्तरमनेकधा।
रेफपूर्वं समुद्धृत्य विन्दुलक्षणसंयुतम्।।21।।
ङेन्तोयं लक्ष्मणमनुर्नमसा च समन्वितः।
ऋषिः स्यामहमेवात्र गायत्रीच्छन्द उच्यते।।22।।
लक्ष्मणो देवता प्रोक्ता लं बीजं शक्तिरेव हि।
नमः स्याद्विनियोगे हि पुरुषार्थचतुष्टये।।23।।
दीर्घमात्राश्च बीजेन षडङ्गानि समाचरेत्।

अगस्त्य बोले- सुनो! मैं अनेक प्रकार से विस्तारपूर्वक तुम्हें सबकुछ कहता हूँ। रेफ के साथ बिन्दु लगाकर पहले बोलना चाहिए। तब ङेन्त लक्ष्मण पद (लक्ष्मणाय) 'नमः' पद जोड़कर बोलें। यह लक्ष्मण मन्त्र है। इसका ऋषि मैं हूँ, गायत्री छन्द कहा जाता है। इसके देवता लक्ष्मण हैं, लं बीज है और 'नमः' शक्ति है। विनियोग में पुरुषार्थचतुष्टय कामना है। बीज के साथ दीर्घमात्राओं को जोड़कर षडंगों का न्यास करें।

द्विभुजं स्वर्णरुचिरतनुं पर्णनिभेक्षणम्।
धनुर्बाणकरं रामसेवासंसक्तमानसम्।।24।।

दो भुजाओंवाले, स्वर्ण के समान सुन्दर शरीरवाले तथा कोमल पत्र के समान आँखोंवाले, हाथों में धनुष और बाण धारण करनेवाले और श्रीराम की सेवा में संलग्न चित्त वाले श्रीलक्ष्मण का ध्यान करें।

पूजापि वैष्णवे पीठे साङ्गावरणवर्जिते।
सप्तलक्षं पुरश्चर्या ततः सिद्धिं तु साधयेत्।।25।।

लक्ष्मण की पूजा भी वैष्णव पीठ पर होगी, जिसपर अंग देवता और आवरण देवता न रहें। लक्ष्मण का पुरश्चरण सात लाख मन्त्रों का है ईसके बाद सिद्धि के लिए साधना करनी चाहिए।

देव्यास्तु पूर्वमेवोक्तं सह रामेण तद्भवेत्।
भरतस्यैवमेवं स्यात् शत्रुघ्नस्याप्ययं विधिः।।26।।
अगस्त्येनोदिताः ह्येते प्राधान्येनापि सत्तम।
श्रीरामपूजानिरत एतेन पूजयेत् सदा।।27।।

देवी सीता का ध्यान आदि तो श्रीराम के साथ ही पूर्व में कहे गये हैं। वहीं करें। भरत का लक्ष्मण से समान होना चाहिए। शत्रुघ्न की भी यही विधि है। अंग-देवताओं के रूप में ये प्रमुख कहे गये हैं। श्रीराम की पूजा में रत साधक इस प्रकार पूजन करें।

आदौ जाप्यं ततो वापि पूजाया राघवस्य तु।
एतेषामपि कर्तव्या भुक्तिमुक्तिफलेप्सुभिः।।28।।

श्रीराम की पूजा के प्रारम्भ में इन अंग देवताओं के मन्त्रों का जप करना चाहिए अथवा पूजा के बाद जप करना चाहिए। भोग और मोक्ष के इच्छुक साधक इन अंग-देवताओं की भी पूजा करें।

प्राधान्येन पूज्येन अङ्गत्वे रामपीठके।
हनूमतोप्येवमेव कुर्यात् पूजामतन्द्रितः।।29।।

मुख्य रूप से श्रीराम के पीठ पर अंग देवता के रूप में हनुमान् की भी इस प्रकार से आलस्य छोड़कर पूजन करें।

पूर्वं नमः पदं चोक्त्वा ततो भगवते पदम्।
आञ्जनेयपदं ङेन्तं महाबलपदं तथा।।30।।
वह्निजायान्त एव स्यान्मन्त्रो हनुमतः परम्।
सर्वसिद्धिकरः प्रोक्तः सर्वेषामपि सर्वदा।।31।।
मालाख्यः परमो मन्त्रो मारुतेः सर्वसिद्धिदः।

पहले 'नमः' बोलकर तब 'भगवते' यह पद बोलें। इसके बाद चतुर्थी विभक्ति में 'आञ्जनेय' पद (आञ्जनेयाय) कहें तब वैसे ही महाबल पद (अर्थात् महाबलाय) कहें। इसके अन्त में वह्निजाया (स्वाहा) लगावें। इस प्रकार "नमो भगवते आञ्जनेयाय महाबलाय स्वाहा"- यह हनुमान का मन्त्र है। इसे सबके के लिए सदा सभी सिद्धियाँ देनेवाला कहा गया है। यह सभी सिद्धियाँ देनेवाला हनुमान् का माला मन्त्र है।

लक्ष्मणस्तु सदा पूज्यः प्राधान्येनैव नित्यशः।।32।।
यथा रामस्य पूजा स्यात् तथा तस्यापि नित्यशः।
वैष्णवं न्यासजालं च सर्वं कृत्वा समाहितः।।33।।
भूतशुद्धिं विधायैव मातृकापि प्रयत्नतः।
विधाय मानसीं पूजां बाह्यपूजामपि द्वयम्।।34।।
त्रिकालमेककालं वा नित्यमेकान्तमाश्रितः।

प्रधान देवता के रूप में प्रतिदिन लक्ष्मण की पूजा करें। जिस प्रकार श्रीराम की पूजा प्रतिदिन होती है उसी प्रकार लक्ष्मण की भी पूजा होनी चाहिए। सभी वैष्णव न्यास कर मानस-पूजा कर तीनों कालों में या एक काल प्रतिदिन एकान्त में रहते हुए पूजन करें।

साफल्यं रामपूजाया च इच्छेन्नियतव्रतः।।35।।
तेन यत्नेन कर्त्तव्या लक्ष्मणस्यापि विस्तरात्।

श्रीराम पूजा की सफलता की इच्छा जो रखते हों, वे नियम का पालन करते हुए यत्नपूर्वक लक्ष्मण की पूजा भी विस्तार से करें।

श्रीराममन्त्रभेदास्तु बहवः सन्ति वै मुने।।36।।
तत्साधकैस्सदा कार्य्या सौमित्रेरपि सर्वशः।
परं ब्रह्मापि लोकेस्मिन् रामलक्ष्मणसंज्ञया।।37।।
आविर्भूय च कात्स्न्र्येन सेव्यतां तु द्वयं सदा।

श्रीराम के मन्त्र अनेक प्रकार के हैं। उन मन्त्रों के जो साधक हैं, वे सदा हर प्रकार से लक्ष्मण की पूजा करें। परम ब्रह्म इस संसार में श्रीराम और लक्ष्मण के नाम से अंग के रूप में प्रकट हुए हैं, अतः दोनों की सदा सेवा करें।

अष्टोत्तरसहस्त्रं वा शतं वा सुसमाहितः।।38।।
लक्ष्मणस्य मनुर्जप्यो मुमुक्षुभिरतन्द्रितैः।

एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार एकाग्र होकर आलस्य का त्याग कर मोक्षार्थियों को लक्ष्मण के मन्त्र का जप करना चाहिए।

तारकं ब्रह्म लोकेऽस्मिन् यथा सेव्यो मुमुक्षुभिः।।39।।
तथैव लक्ष्मणमनुः सदा सेव्यो भवेदिह।

जिस तरह तारक ब्रह्म मोक्षार्थियों का पूज्य है, उसी प्रकार लक्ष्मण का भी मन्त्र इस संसार में सेव्य होना चाहिए।

दशाक्षरादिमन्त्राणां साफल्यस्यापि कांक्षया।।40।।
सेव्योऽयं सर्वदा मन्त्र ऐहिकामुष्मिकप्रदः।

दशाक्षर आदि मन्त्रों की सफलता की इच्छा से भी यह मन्त्र हमेशा जप करने योग्य है, जो संसार में और परलोक में कामनाओं को पूर्ण करता है।

अजप्त्वा लक्ष्मणमनुं राममन्त्रा जपन्ति ये।।41।।
तज्जप्तस्य फलं नैव प्रयान्ति कुशला अपि।
अरिमित्रविवेकोऽपि नैव कार्यो भवेदिह।।42।।

लक्ष्मण का मन्त्र जप किए विना जो श्रीराम का मन्त्र जपते हैं, उस जप का फल वे अच्छे साधक भी प्राप्त नहीं करते हैं। इस मन्त्र में शत्रु और मित्र का भी विचार नहीं होना चाहिए।

रामपूजारतैर्नित्यं सदा सेव्योऽयमञ्जसा।
यो जपेल्लक्ष्मणमनुं नित्यमेकान्तमास्थितः।।43।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो स कामानश्नुतेऽखिलान्।

श्रीराम की पूजा में लीन साधकों को इस मन्त्र का विधानपूर्वक जप करना चाहिए। जो प्रतिदिन एकान्त में रहते हुए लक्ष्मण-मन्त्र का जप करतें हैं वे सभी पापों से मुक्त होकर सभी कामनाओं का भोग करते हैं।

मनोवाक्कायकर्माद्यैरत्यन्तैरप्यनेकशः ।।44।।
महद्भिरपि पापौघैर्मुच्यते नात्र संशयः।
सर्वान् कामानवाप्नोति यान्ति विष्णोः परं पदम्।।45।।

मन, वाणी, शरीर और क्रिया से अनेक बार जो महान् पाप किए गये हो उस समूह से पाप मुक्त हो जाता है साधक, इसमें सन्देह नहीं। वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है और विष्णु के परमधाम को चला जाता है।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये लक्ष्मणादिपूजनविधिर्नाम त्रिंशोऽध्यायः।

एकत्रिंऽशोध्यायः

अगस्त्य उवाच

पुरोदितस्य मन्त्रस्य प्रयोगानखिलाञ्जसा[1]।
कथयामि यथाशक्ति सरहस्यं सुविस्तरम्।।1।।
प्रयोगायैव मन्त्रोऽयमुपदिष्टोऽथ शार्ङ्गिणा।
अर्जुनस्य पुरा सर्गे तेनैव[2] धनञ्जयः।।2।।
दिशो विजित्य सकलाः स कुरून् एक एव हि।
प्रातिष्ठिपद्धर्मराजं पैतृके राज्य उत्तमे।।3।।

अगस्त्य बोले- पूर्व में कहे गये मन्त्रों के रहस्य के साथ अपनी शक्ति के अनुसार मैं उनके प्रयोगों को विस्तारपूर्वक कहता हूँ। ये मन्त्र इससे पूर्व की सृष्टि में भगवान् विष्णु के द्वारा अर्जुन को प्रयोग करने के लिए ही दिये गये थे और उन मन्त्रों के द्वारा ही अर्जुन ने अकेले ही सभी दिशाओं और कुरुओं को जीत कर धर्मराज युधिष्ठिर को अपने उत्तम पैतृक राज्य में स्थापित किया।

1. घ. प्रयोगोऽहमञ्जसा।2. घ. अर्जुनस्य पुरा सम्यगनेनैव धनञ्जयः।

जपप्रधानो मन्त्रोऽयं राज्यप्राप्त्यैकसाधनम्।
यो जपेन्नियतो मन्त्रं लक्षमेकं समाहितः।।4।।
सोऽचिरान्नष्टराज्यं स्वं प्राप्नोत्येव न संशयः।

इस मन्त्र में जप की प्रधानता है। यह राज्यप्राप्ति का साधन है। जो नियमपूर्वक एकाग्र होकर इस मन्त्र का एक लाख जप करते हैं, वे शीघ्र ही अपने नष्ट राज्य को प्राप्त करते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

अभिषिक्तमयोध्यायां ध्यायेद्राममनन्यधीः।।5।।
पंचायुतमिदं जप्त्वा नष्टराज्यमवाप्नुयात्।

अयोध्या में राज्याभिषिक्त श्रीराम का ध्यान करें और एकाग्र होकर पचास हजार मन्त्र का जप कर अपने नष्ट राज्य को पावें।

नागपाशविनिर्मुक्तं ध्यायन्नेकान्त आस्थितः।।6।।
जप्त्वायुतं प्रमुच्येत निगडायैस्तदेव हि।

नागपाश से विमुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए एकान्त में रहकर दस हजार जप कर बेड़ी के बन्धन से मुक्त हो जाता है।

आञ्जनेयसमानीतैरोषधीभिर्गतव्यथम् ।।7।।
ध्यायन्नयुतजायेन स्वापमृत्युं जयेन्नरः।

हनुमानजी के द्वारा लायी गयी औषधियों के प्रभाव से कष्ट से मुक्त श्रीराम का ध्यान करते हुए दस हजार जप करने से मनुष्य अपनी अपमृत्यु को जीत लेता है।

इन्द्रजित्प्राणहन्तारं ध्यायन्नेव समाहितः।।8।।
दुर्जयं चापि वेगेन जयेदरिकुलं बहु।

मेघनाद का वध करनेवाले श्रीलक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकाग्र होकर जप करने से शीघ्र ही बहुत सारे दुर्जय शत्रुओं को जीत लेते हैं।

शूर्पणख्याश्च नासाग्रछेदनोद्युक्तमानसम्।।9।।
ध्यायन् सहस्रजापेन पुरहूतादिकान् जयेत्।

शूर्पणखा की नाक काटने के लिए उन्मुख श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एक हजार जप करने से इन्द्र आदि को भी जीत लेते हैं।

रामपादाब्जसेवार्थं कृतद्वारमथ स्मरन्।।10।।
जपन्नयुतमेकान्ते महारोगान् बहून्यपि।
क्षयापस्मारकुष्ठादीन्नाशयत्येव तत्क्षणात्।।11।।

श्रीराम के चरणकमल की सेवा करने के लिए द्वार बनाकर अवस्थित श्री लक्ष्मण का ध्यान करते हुए एकान्त में जप करते हुए साधक अनेक महारोगों को जीत लेते हैं।

त्रिमासं नियताहारो जपेत् सप्तसहस्रकम्।
दिने दिने विधानेन युगपद् विजितेन्द्रियः।।12।।
अष्टोत्तरशतैः पुष्पैः निच्छिद्रैः शतपत्रकैः।
पायसं शर्करोपेतं नैवेद्यं विधिवन्मुने।।13।।
घनसारसमायुक्तं चन्दनेनावलिप्य च।
देवोद्देशेन नित्यं च सम्पूज्यैव द्विजोत्तम।।14।।
कुष्ठरोगात् प्रमुच्येत दुःचिकित्स्यादनेकशः।
दुर्दोषजा बहुविधा मण्डलादिप्रभदेतः।।15।।
ते सर्वे नाशमायान्ति दुःचिकित्स्या अपि क्षणे।

तीन मास तक संयमित भोजन करते हुए प्रतिदिन सात हजार जप विधानपूर्वक कर के साथ साथ छिद्र रहित एक सौ आठ कमल के फूलों से तथा शक्कर के साथ पायस (खीर) नैवेद्य समर्पित कर, कर्पूर के साथ चन्दन से देवता का लेपन कर प्रतिदिन पूजा करके साधक कुष्ठ रोग से मुक्त हो जाता है। अन्य अनेक असाध्य रोग, मण्डल आदि अनेक प्रकार के रोग जो बुरे दोषों से उत्पनन होते हैं वे सभी क्षण भर में नष्ट हो जाते हैं।

एकान्ते नियताहारः षण्मासान् विजितेन्द्रियः।।16।।
जपन्नेवं विधानेन क्षयरोगात्प्रमुच्यते।

एकान्त में संयमित आहार लेकर छह मास तक इन्द्रियों को वश में कर के इस प्रकार जप करते हुए क्षय रोग से मुक्ति मिलती है।

मासं पूपादिनैवेद्यैः जपन्मन्त्रं समाहितः।।17।।
वातरोगात्प्रमुच्येत बहुभेदादपि क्षणात्।

एक मास तक पुआ आदि नैवेद्य समर्पित करते हुए एकाग्र होकर जप करने से अनेक प्रकार के बात रोगों से क्षण भर में मुक्ति मिल जाती है।

अभिमन्त्र्य जलं नित्यं मन्त्रेण त्रिः समाहितः।।18।।
पीत्वा सन्ध्यासु भक्त्या वै मुच्यते सर्वरोगतः।
दारिद्र्यं नाशयित्वा तु श्रियमाप्नोति सुव्रत।।19।।

मूल मन्त्र से अभिमन्त्रित कर प्रतिदिन तीन बार ध्यानस्थ होकर तीनों सन्ध्याओं में भक्तिपूर्वक पीने से सभी रोगों से मुक्ति मिल जाती है। वह अपनी दरिद्रता का नाश कर लक्ष्मी प्राप्त करता है।

विषादिदोषसंस्पर्शो न भवेच्च कदाचन।
प्रक्षाल्यैवं प्रतिदिनं मुखं भक्त्या समाहितः।।20।।
मुखनेत्रादिसम्भूतान् जयेद्रोगान् सुदारुणान्।
पीत्वाभिमन्त्रितं वारि कुक्षिरोगान् जयेद् बहून्।।21।।

उसे विष आदि दोषों का स्पर्श भी नहीं होता। इस अभिमन्त्रित जल से जो प्रतिदिन भक्तिपूर्वक अपने मुख का प्रक्षालन करते हैं, वे मुख। नेत्र आदि के अनेक रोगों की जीत लेते हैं और उस अभिमन्त्रित जल को पीकर कोख सम्बन्धी रोगों को जीत लेते हैं।

देवस्य प्रतिमादानं कृत्वा भक्त्या विधानतः।
सर्वेभ्योप्यथ रोगेभ्यो मुच्यते नात्र संशयः।।22।।

भक्तिपूर्वक तथा विधानों के साथ देवता की प्रतिमा का दान करनेवाले सभी रोगों से मुक्त हो जाते हैं, इसमें सन्देह नहीं।

कन्यार्थी चोर्मिलापाणिग्रहणासक्तमानसम्।
लक्ष्मणमनुर्जप्त्वा हुत्वा लाजैर्दशांशकम्।।23।।
ईप्सितां प्राप्नुयात् कन्यां शीघ्रमेव तपोधन।

पत्नी की इच्छा रखनेवाले साधक उर्मिला का पाणिग्रहण करने के लिए आसक्त चित्त वाले लक्ष्मण का ध्यान कर धान के खील (लाबा) से उसका दशांश हवन कर शीघ्र ही अभीष्ट पत्नी को प्राप्त करते हैं।

दीक्षितं स्तम्भनास्त्राणां[1] मन्त्रेषु नियतव्रतः।।24।।
संस्मरन् विधिवन्नित्यं मासत्रयममन्यधीः।
पूजापुरस्सरं सप्तसहस्रं विजितेन्द्रियः।।25।।
जपन्नखिलविद्यानां तत्त्वज्ञो भवति ध्रुवम्।

'स्तम्भन' नामक अस्त्र के सन्धान में दीक्षित श्रीराम का स्मरण करते हुए नियमपूर्वक, जितेन्द्रिय होकर तीन मास तक पूजन करते हुए मन्त्र का सात हजार जप करता हुआ साधक सभी विद्याओं का तत्त्वज्ञ बन जाता है।

विश्वामित्रक्रतुवरे कृताद्भुतपराक्रमम्।।26।।
ध्यायन्नयुतजापेन भयेभ्यो मुच्यतेऽचिरात्।
सन्ध्यां चोपास्य विधिवन्मूलमन्त्रेण मन्त्रवित्।।27।।
त्रिकालं नियतो भूत्वा कृतनित्यविधिः स्वयम्।
दीक्षायुतो यथान्यायं गुर्वनुज्ञापुरस्सरम्।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो याति विष्णोः परं पदम्।।28।।

विश्वामित्र मुनि के विशाल यज्ञ में अद्भुत पराक्रम दिखानेवाले श्रीराम का ध्यान करते हुए दस हजार जप करने से सभी प्रकार के भय से मुक्त हो जाते हैं। विधान पूर्वक मूलमन्त्र से तीनों समयों में सन्ध्यावन्दन कर मन्त्रज्ञानी नित्यकर्मों को सम्पन्न कर गुरु की आज्ञा से जप करते हुए सभी पापों से मुक्त हो जाते हैं तथा विष्णु के परम स्थान को प्राप्त करते हैं।

ऐहिकाननपेक्ष्यैव निष्कामो योऽर्चयेद्धरिम्।
दीक्षां प्राप्य विधानेन गुरोर्विगतकल्मषात्।।29।।
आचारनियताद् गृहस्थाद् विजितेन्द्रियात्।
तदनुज्ञानमात्रेण पुरश्चर्या यथाविधिः।।30।।
स सर्वान् पुण्यपापौघान् जित्वा निर्मलमानसः।
पुनरावृत्तिरहितं शाश्वतं पदमवाप्नुयात्।।31।।

जो अपने आचार में दृढ़ , जितेन्द्रिय, निष्पाप गृहस्थ गुरु से दीक्षा प्राप्त कर उनकी आज्ञा से सांसारिक विषयों की कामना न करते हुए हरि की अर्चना करते हैं और विधि के अनुसार पुरश्चरण करते हैं, वे सभी पुण्यों और पापों के समूह को जीतकर निर्मल मन से पुनर्जन्म से रहित शाश्वत स्थान को प्राप्त करते हैं।

---

1. घ. जृम्भणास्त्राणां।

सकामो वाञ्छितान् लब्ध्वा भुक्तभोगान् मनोहरान्।
जातिस्मरश्चिरं भूत्वा याति विष्णोः परं पदम्।।32।।

किन्तु सकाम साधक इस संसार में सभी सुन्दर भोगों को प्राप्त कर अपने जन्म को स्मरण करते हुए विष्णु के परम स्थान को प्राप्त करते हैं।

यथा श्रीराममन्त्राणां प्रयोक्तुः पापसम्भवः।
तथा न लक्ष्मणमनोः किन्तु यान्ति परां गतिम्।।33।।

जिस प्रकार सांसारिक कामना के लिए श्रीराम के मन्त्र का प्रयोग करनेवाले को पाप की सम्भावना हो सकती है, उस प्रकार लक्ष्मण के मन्त्र में पाप की सम्भावना नहीं है, किन्तु वे परम गति को प्राप्त करते हैं।

मन्त्रोऽयं ब्रह्मणा पूर्वं तुष्टेन तपसा चिरम्।
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे मह्यं दत्तो हि सादरम्।।34।।

प्राचीन समय में ब्रह्मा ने मेरी तपस्या से सन्तुष्ट होकर कुरुक्षेत्र में सूर्यग्रहण के समय यह मन्त्र मुझे दिया था।

मयाप्युपासितोऽयं वै भक्तियुक्तेन चेतसा।
गुरुभक्तिं समालोक्य मामेवास्याकरोदृषिम्।।35।।
प्रकाशितो मयाप्यस्मिंल्लोके गुर्वज्ञया पुनः।

मैंने भी भक्तियुक्त मन से इस मन्त्र की उपासना की। तब मेरी गुरु भक्ति से सन्तुष्ट होकर उन्होंने इस मन्त्र का ऋषि मुझे ही बना दिया। फिर मैंने गुरु की आज्ञा से इसे लोक में प्रकाशित किया।

उपास्य बहवो लोके मनुमेतदनेकशः।।36।।
संप्राप्य वाञ्छितानर्थानगमद्धाम वैष्णवम्।
अनेन सदृशो मन्त्रो मया दृष्टो न कुत्रचित्।।37।।

इस मन्त्र की उपासना कर अनेक लोग इच्छित सांसारिक कामनाओं को प्राप्त कर विष्णु के परम धाम को प्राप्त कर चुके हैं। इसके समान मन्त्र मैंने दूसरा कही नहीं देखा।

शैववैष्णवसौरेषु गाणत्येषु वा मुने।
केचिन्मुक्त्यर्थमेव स्युः केचिदैहिकसाधनाः।।38।।
भुक्तिमुक्तिकरश्चायमेको विजयते परम्।।39।।

शैव, वैष्णव, सौर और गाणपत्य मन्त्रों में से कुछ केवल मुक्ति देनेवाले हैं तथा कुछ केवल सांसारिक कामनाओं के साधक हैं, किन्तु यह मन्त्र भोग और मोक्ष दोनों प्रदान करनेवाला है, अतः यह परम जयशील श्रेष्ठ है।

इत्यस्त्यसंहितायां परमरहस्ये लक्ष्मणादिमन्त्रकथनं नाम एकत्रिंशोऽध्यायः।।31।।

द्वात्रिंशोऽध्यायः

सुतीक्ष्ण उवाच

सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो ननु निश्चलमानसः।
सम्यक् संशिक्षितश्चाहं बहुनापि कृपानिधे।।1।।
त्वया कारुण्यनिधिना पूर्वमज्ञास्तथा जहुः।
त्वत्प्रसादेन संजातं ज्ञानं विगतकल्मषम्।।2।।

हे करुणा के सागर! मुनि अगस्त्य! प्राचीन काल में आपकी सहायता से लोगों ने अपने अज्ञान को त्याग दिया था, वह निष्कलुष ज्ञान आपकी कृपा से आज प्रकट हुआ।

रामात्मनि परं ब्रह्मण्यासक्तमनसं च माम्।
लक्ष्मणे हि तथा रामे किञ्चिद् भेदोऽस्ति नैव हि।।3।।

श्रीराम के स्वरूप परम ब्रह्म मैं आसक्त हूँ, किन्तु अब ज्ञात हुआ कि लक्ष्मण और श्रीराम में किंचिद् भेद नहीं है।

हनुमन्मन्त्र इत्युक्तस्त्वया वै मुनिपुङ्गव।
तस्यानुष्ठानमेवाहं ज्ञातुमिच्छामि तत्प्रभो।।4।।
त्वयि प्रसन्ने सकलमाचक्ष्वाशु दयानिधे।

आपने हनुमान् का जो मन्त्र कहा, उसकी अनुष्ठान-विधि मैं जानना चाहता हूँ। जब आप प्रसन्न हों, तब मुझे यह सबकुछ बतलायें।

अगस्त्य उवाच

स्मारितः सम्यगेवाहं त्वया श्रद्धावता मुने।।5।।
आञ्जनेयमनुर्ल्लोके भुक्तिमुक्त्यैकसाधनम्।

प्रकाशितं शङ्करेण लोकानां हितमिच्छता।।6।।
भूतप्रेतपिशाचादिडाकिनीयक्षराक्षसाः।
दृष्ट्वा च प्रपलायन्ते मन्त्रानुष्ठानतत्परम्।।7।।

अगस्त्य बोले- हे मुनि सुतीक्ष्ण! आप तो श्रद्धा से भरे हुए हैं। आपने ठीक ही याद दिलाया कि हनुमान् का मन्त्र इस संसार में भोग और मोक्ष दोनों का अचूक साधन है। संसार का भला चाहनेवाले भगवान् शंकर के द्वारा यह मन्त्र प्रकट किया गया है। मन्त्र के अनुष्ठान में लगे साधक को देखते ही भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, यक्ष और राक्षस सब भाग जाते हैं।

ऋषिरीश्वर एव स्यादनुष्टुप् छन्द उच्यते।
हनुमान् देवता प्रोक्तो हं बीजं शक्तिरंतजौ।।8।।
कीलकं हात्रयं प्रोक्तं वेधकं तु हसौ पुनः।
हनुमत्प्रीणनं चैव फलमाद्यमुदीरितम्।।9।।
सर्वेप्सितानां दातृत्वमस्यैवास्ति न चान्यतः।

इस मन्त्र के ऋषि स्वयं ईश्वर शिव हैं, छन्द अनुष्टुप् है, हनुमान् देवता कहे गये हैं, 'हं' यह बीज है और अन्त के दो बीजवर्ण शक्ति हैं। तीन बार 'हा' का उच्चारण कीलक है 'हसौ' वेधक है। हनुमान् की प्रीति इस मन्त्र का मुख्य फल है। सभी कामनाओं की पूर्ति की शक्ति इसी मन्त्र में है, दूसरे मन्त्र से नहीं होती है।

प्रणवं पूर्वमुच्चार्य नमो भगवते पदम्।
ङेन्तं प्रकटसंयुक्तं पराक्रमपदं ततः।।10।।
तदाक्रान्तपदोपेतं दिङ्मण्डलमुदीरयेत्।
यशोवितानधवलीकृतजगत्त्रितयाय च।।11।।
वज्रदेहेति चोक्त्वा हं रुद्रावतारपदं तथा।
संबुद्ध्यन्तं पदं लङ्कापुरी दहनमीरयेत्।।12।।
उदधिर्ल्लङ्घनं चापि दशग्रीवकृतान्तकः।
सीताश्वासनेतिपदमञ्जनीगर्भसम्भव।।13।।
श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारिन् कपिसैन्यप्राकारक।
सुग्रीवसन्नद्धपदं पर्वतोत्पाटनं तथा।।14।।
बालब्रह्मचारिन्निति गम्भीरशब्दपदं तथा।
सर्वग्रहविनाशनसर्वज्वरहरं तथा।।15।।

डाकिनीविध्वंसनपदं ततस्तारमुदीरयेत्।
भयहात्रयमुच्चार्य हसावेहि वदत्ततः।।16।।
सर्वविषं हर परबलं क्षोभय द्विरुच्चरेत्।
सर्वकार्याणि साधयेति तथैवात्र द्विरुच्चरेत्।।17।।
हुं फट् स्वाहेति मन्त्रोऽयं मालाख्यः सर्वकामधृक्।

पहले प्रणव (ॐ) का उच्चारण कर 'नमो भगवते' यह पद जोड़ें। चतुर्थ्यन्त 'प्रकट' सहित 'पराक्रम' (प्रकटपराक्रमाय) पद जोड़े। तब 'आक्रान्त' पद के साथ 'दिङ्मण्डल' यह पद भी जोड़े। तब 'यशोवितानधवलीकृतजगत्त्रितयाय' यह कहें। 'वज्रदेह' ऐसा कहकर 'हं' और 'रुद्रावतार' भी चतुर्थ्यन्त पद के रूप में कहें। इसके बाद सम्बोधनान्त पद 'लंकापुरीदहन' का उच्चारण करें। तब 'उदधिर्ल्लङ्घन', दशग्रीवकृतान्तक! सीताश्वासन! अञ्जनीगर्भसम्भव! श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारिन्! कपिसैन्यप्राकारक! 'सुग्रीवसन्नद्ध', 'पर्वतोत्पाटन', 'बालब्रह्मचारिन्', 'गम्भीरशब्द' 'सर्वग्रहविनाशन', 'सर्वज्वरहर' एवं 'डाकिनीविध्वंसन' पद बोलकर तार (ॐ) का उच्चारण करें। इसके बाद तीन बार 'भयहा' बोलकर 'हसौ' बोलें। तब 'सर्वविषं हर' 'परबलं' कहकर 'क्षोभय' यह दो बार कहें। सर्वकार्याणि के बाद 'साधय' भी दो बार बोलें। इसके बाद 'हुं फट् स्वाहा' यह बोलें।

ॐ नमो भगवते प्रकटपराक्रमाय आक्रान्तदिङ्मण्डलाय यशोवितान-धवलीकृतजगत्त्रितयाय वज्रदेहाय हं रुद्रावताराय लङ्कापुरीदहन! उदधिर्ल्लङ्घन! दशग्रीवकृतान्तक! सीताश्वासन! अञ्जनीगर्भसम्भव! श्रीरामलक्ष्मणानन्दकारिन्! कपिसैन्यप्राकारक! सुग्रीवसन्नद्ध! पर्वतोत्पाटन! बालब्रह्मचारिन्! गम्भीरशब्द! सर्वग्रहविनाशन! सर्वज्वरहर! डाकिनीविध्वंसन! ॐ भयहा! भयहा! भयहा! हसौ एहि सर्वविषं हर परबलं क्षोभय क्षोभय सर्वकार्याणि साधय साधय हुं फट् स्वाहा। यह मन्त्र सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है।

ॐ नमो भगवते चाञ्जनेयायेत्यङ्गुष्ठाभ्यामुदीरितः।।18।।
रुद्रमूर्त्तय इत्येवं तर्जनीभ्यामनन्तरम्।
वायुसुतायापि तथा मध्यमाभ्यामपि स्फुटम्।।19।।
अग्निगर्भाय च तथानामिकाभ्यां प्रविन्यसेत्।
रामदूताय च पुनः कनिष्ठिकाभ्यां विचक्षणः।।20।।

ब्रह्मास्त्रनिवारणाय चास्त्रमन्त्रसमीरितः।
षडङ्गं च मुने कृत्वा ध्यायेदेवमनन्यधीः।।21।।

अब करन्यास कहते हैं। 'ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय' इससे दोनों हाथों के अंगूठे में न्यास कहा गया है। 'रुद्रमूर्तये' इससे दोनों तर्ज्जनी में न्यास करें। 'वायुसुताय' इसका दोनों मध्यमा में स्पष्ट रूप से न्यास करें। 'अग्निगर्भाय' इससे दोनों अनामिका में न्यास करें। तब 'रामदूताय' से दोनों कनिष्ठिका में न्यास करें। 'ब्रह्मास्त्रनिवारणाय' यह अस्त्रमन्त्र कहा गया है। इस प्रकार षडंगन्यास कर एकाग्र होकर भगवान् हनुमान् का ध्यान करें।

ॐ नमो भगवते आञ्जनेयाय इत्यङ्गुष्ठाभ्याम्।
ॐ नमो भगवते रुद्रमूर्त्तये इति तर्ज्जनीभ्याम्।
ॐ नमो भगवते वायुसुताय इति मध्यमाभ्याम्।
ॐ नमो भगवते अग्निगर्भाय इत्यनामिकाभ्याम्
ॐ नमो भगवते रामदूताय इति कनिष्ठिकाभ्याम्
ॐ नमो भगवते ब्रह्मास्त्रनिवारणाय हुं अस्त्राय फट्।

स्फटिकाभं स्वर्णकान्तिं द्विभुजं च कृताञ्जलिम्।
कुण्डलद्वयसंशोभिमुखाम्भोजं मुहुर्मुहुः।।22।।

स्फटिक के समान चमकते हुए, स्वर्ण के समान कान्तिवाले, दो भुजाओं वाले, अंजलि बाँधे हुए, दो कुण्डलों से शोभित मुखकमल वाले हनुमान् का ध्यान बार बार करता हूँ।

अयुतं च पुरश्चर्या रामस्याग्रे शिवस्य वा।
पूजां तु वैष्णवे पीठे शैवे वा विदधीत वै।।23।

हनुमान् का पुरश्चरण श्रीराम के आगे या शिव के आगे दस हजार मन्त्रों का होता है। पूजा वैष्णव या शैव पीठ पर करें।

अवृत्तिभिर्विना[1] नित्यं नक्ताशी विजितेन्द्रियः।
क्षुद्ररोगनिवृत्त्यर्थमष्टोत्तरशतं जपेत्।।24।।
जप्त्वा त्रिदिनमेकान्ते तेभ्यो मुच्येत तत्क्षणात्।

निराहार न रहकर प्रतिदिन केवल रात्रि में भोजन कर जितेन्द्रिय होकर छोटे छोटे रोगों से छुटकारा पाने के लिए एक सौ आठ बार जप करें। इस प्रकार एकान्त में तीन दिन जप करने से उन रोगों से तत्क्षण मुक्ति मिल जाती है।

क्षुद्रभूतेऽपि शान्त्यर्थमष्टोत्तरशतं जपेत्।।25।।
दिनत्रयमथो जप्त्वा भूतानां मुच्यते भयात्।

छोटे छोटे भूत-प्रेतों का प्रकोप होने पर शान्ति के लिए एक सौ आठ जप करें। तीन दिनों तक इस प्रकार जप कर भूतों-प्रेतों के भय से मुक्त हो जाता है।

भूतप्रेतपिशाचादि शान्तयेष्टोत्तरं शतम्।।26।।
प्रजप्त्वैतद्भयान्मुक्तो भवेदेव न संशयः।

भूत, प्रेत, पिशाच आदि की शान्ति के लिए एक सौ आठ जप कर उनके भय से मुक्त हो ही जाता है, इसमें सन्देह नहीं।

महारोगादिशान्त्यर्थमष्टोत्तरसहस्रकम् ।।27।।
जप्त्वा तस्मात् प्रमुच्येत निश्चितं नियताशनः।

महान् रोग आदि की शान्ति के लिए एक हजार आठ बार संयमित भोजन करते हुए जप कर उन रोगादि से निश्चित रूप से मुक्त हो जाता है।

जयाभिकांक्षिणां राज्ञामस्मादन्यो न विद्यते।।28।।
ध्यायन् राक्षसहन्तारमयुतं नियतात्मना।
जपन्नियमवाँश्चैव जयेद् दुर्जयमप्यरीन्।।29।।

युद्ध में जीतने की अभिलाषा रखनेवाले राजाओं के लिए इससे भिन्न कुछ भी नहीं है। चित्त एकाग्र कर राक्षसों का वध करनेवाले हनुमान् का ध्यान करते हुए विधिपूर्वक जप करनेवाले साधक दुर्जय शत्रुओं को भी जीत लेते हैं।

सन्धानाय तु सुग्रीवं संतारं संस्मरन्नपि।
अयुतेनैव बलिना संधिमाप्नोत्यशंसयः।।30।।

मैत्री के लिए विशालकाय सुग्रीव को भी हनुमान् के साथ स्मरण करते हुए दस हजार जप करने से बलवान् व्यक्ति के साथ मैत्री हो जाती है, इसमें सन्देह नहीं।

लंकाया दाहकं ध्यात्वा जपेदयुतमञ्जसा।
शत्रुराष्ट्रं दहेदेव दुग्धाब्धिमपि चानघ।।31।।
जयार्थी रिपुसंघानामस्मादन्यो न विद्यते।

लंका को जलानेवाले हनुमान् का ध्यान कर दस हजार की संख्या के परिमाण में जप करने से शत्रु के राष्ट्र को तो जला ही देता है बल्कि क्षीर-समुद्र को भी जला डालता है। इस प्रकार विजय प्राप्ति की कामना रखनेवाले जप करें। इसके अतिरिक्त दूसरा साधन नहीं है।

---

1. ग. आवृतीभिर्विना।

यस्तु गेहे हनूमतं सर्वदेव प्रपूजयेत्।।32।।
अर्चत्येतेन मन्त्रेण तस्य लक्ष्मीरचंचला।
दीर्घमायुर्ल्लभेदेव सर्वतो विजयी भवेत्।।33।।
मायादिभूतसंक्षोभस्तस्य देशे न जायते।
नान्यत्साधनमस्त्येव मन्त्रात्तस्माद्धनूमतः।।34।।
चौराधिव्याधिभूतानामयमेव परायणम्।
परापहृतराज्यानां[1] घर्षितानां परैः पुनः।।35।।
सन्नाहभाजां युद्धेषु बद्धानां परसैनिकैः।
शत्रवः सर्वदा मित्रभावेनैवासते सदा।।36।।

जो अपने घर में इस मन्त्र से प्रतिदिन हनुमान् की पूजा करते हैं उसके घर लक्ष्मी स्थिर होकर रहती है। वह दीर्घायु तो होता ही है, सभी जगत उसकी जीत होती है। माया आदि तथा भूतों का प्रकोप और कफ, पित्त और वायु का दोष नहीं होता। हनुमान् के उस मन्त्र को छोड़कर उनके लिए दूसरा साधन है ही नहीं। चोर, मानसिक सन्ताप, व्याधि और भूतों का भी यहीं पलायन् है। दूसरे ने जिनका राज्य छीन लिया हो या दूसरे ने कुचल डाला हो या जो कवच पहनकर युद्धों में लड़ रहे हों या शत्रु के सैनिकों ने पकड़ लिया हो ऐसे संकट में पड़े लोगों के शत्रु हमेशा मित्र की भाँति व्यवहार करने लगते हैं।

शैवानां वैष्णवानां वै षट्कर्मात्र प्रदर्शितम्।।[2]

वैष्णवों एवं शैवों के लिए यहाँ केवल छह कर्म प्रदर्शित किए गये हैं।

यात्राकाले हनूमन्तं स्मरन् यस्तु स्वकाद् गृहात्।।37।।
निर्गच्छति स वेगेन इष्टार्थमपि गच्छति।

यात्रा के समय जो हनुमान् का स्मरण कर अपने घर से निकलते हैं, वे शीघ्र ही अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचते हैं।

स्वापकाले स्मरन्नित्यं चौरभूतादिकं जपेत्।।38।।
यद्वयं वासुदेवाय हनूमन्तपदन्ततः।
फलेति च फलि पदं धगेति धगितेति च।।39।।
आयुरा ख फ डा डे हि सद्यः प्रत्ययकारकः।
चतुर्विंशत्यक्षरकोऽमोघमन्त्रोऽयं प्लीहरोगनुत्।।40।।

1. ग. परापह्रतराज्यानां। 2. बंगाल की प्रति में इसी स्थल पर ग्रन्थ की समाप्ति हो जाती है।

नागवल्लीदलं चैवमष्टप्रगुणितं शुभम्।
वंशजं सकलं स्थाप्य क्रमात् प्लीहोदरोपरि।।41।।
जप्त्वारण्योपलाग्नौ च दर्भमुष्टिं प्रजापयेत्।
मन्त्रेणानेनाभिमन्त्र्य सप्तवारं तथा पुनः।।42।।
तथाभिमन्त्रयेदेवं सप्तभिस्तु विचक्षणः।
स्फोटद्वारा भवेत् प्लीहो भस्मीभूतो न संशयः।।43।।

सोते समय नित्य हनुमान् का ध्यान करते हुए चौरभूतादि मन्त्र का जप करें। 'वासुदेवाय हनूमते फल फलि धग धगि आयुराखफडाडे' इस चौबीस अक्षरों के इस मन्त्र के जप से प्लीहा से ग्रस्त उदर पर रखकर बाँस का पत्ता उसपर क्रम से रखकर जंगली पत्थर से उत्पन्न आग जलाकर एक मूँठ कुश को इस मन्त्र से सात बार गर्म करें और उससे पेट पर सात बार अभिमान्त्रित करें। इससे फोड़ा बनकर प्लीहा भस्म हो जाएगा। इसमें सन्देह नहीं।

तारं हकारोऽग्निसमः षड्दीर्घस्वरविन्दुमान्।
प्रणवान्ततोऽष्टाक्षरको मूलमन्त्र उदाहृतः।।44।।

तारक (ॐ) के बाद अग्नि समान हकार छह दीर्घ स्वरों के साथ बोलें अन्त में पुनः प्रणव (ॐ) बोलें। यह हनुमान् अष्टाक्षर मन्त्र है।

ताराद्यं वज्रकायेति वज्रतुण्डेति ह्युद्धरेत्।
कपिलपिङ्गलप्रोक्ता ऊर्द्ध्वकेशं महाबलम्।।45।।
रक्तमुखतडिज्जिह्वा महारौद्रपदं ततः।
महादृढप्रहारश्च लंकेश्वरवधाय च।।46।।
महासेतुबन्धपदं महाशैलप्रवाह च।
गगने चर एह्येहि भगवंस्त्वं महापदम्।
बलपराक्रमपदं भैरवाज्ञां जयेति च।।47।।
एह्येहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्टय।
वैरिणं भञ्जयपदं द्विरुक्तो हं फडन्तकः।।48।।
पंचविंशत्याह्यधिकः प्रोक्तो मन्त्रः शताक्षरः।
मालाख्योऽयं ज्वरादीनां रोगानामन्तकः स्मृतः।।49।।

तार (ॐ) आदि में बोलकर 'वज्रकायं, 'वज्रतुण्ड' कहें। तब 'कपिलपिंगल' यह कहकर 'ऊर्ध्वकिश' और 'महाबल' कहें। 'रक्त मुखतडिज्जिह्वा' कहकर 'महारौद्र' पद कहें। तब 'महादृढप्रहार' और लंकेश्वरवधाय' कहें। इसके बाद 'महासेतुबन्ध' पद कहकर 'महाशैलप्रवाह' कहें। इसके बाद 'गगने चर', एहि एहि, भगवँस्त्वं और 'महा' कहें। तब 'बलपराक्रम' यह कहकर 'भैरवाज्ञां जय' ऐसा कहकर 'एहि एहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्टय' और वैरिणं भञ्जय' यह शब्द बोलकर दो बार 'हं' कहकर 'फट्' शब्द से अन्त करें। इस प्रकार यह मन्त्र होगा- ॐ **वज्रकाय वज्रतुण्ड कपिलपिंगल ऊर्ध्वकिश महाबल रक्तमुखतडिज्जिह्वा महारौद्र महादृढप्रहार लंकेश्वरवधाय महासेतुबन्ध महाशैलप्रवाह गगने चर एहि एहि भगवँस्त्वं महाबलपराक्रम भैरवाज्ञां जय एहि एहि महारौद्र दीर्घपुच्छेन वेष्टय वैरिणं भञ्जय भञ्जय हं फट्**। पचीस पदों से अधिक का यह शताक्षर मन्त्र है, जो ज्वर आदि रोगों का नाश करनेवाला हनुमान् का मालामन्त्र है।

आदौ षट्कोणमुद्धृत्य ततो वृत्तं लिखेन्मुने।
दलानि विलिखेदष्टौ ततः स्याच्चतुरस्रकम्।।50।।
सर्वलक्षणसंव्यक्तं साध्याख्याकर्मगर्भितम्।
तद्बीजं विलिखेद् भूयस्तत् क्रोडीकृतमान्मथम्।।51।।
ततस्तत् पंचबीजानि पुनरावर्तयेन्मुने।
पुनर्दशाक्षरेणैव तदेव परिवेष्टयेत्।।52।।
षडङ्गान्यग्निकोणादिकोणेष्वेव क्रमाल्लिखेत्।
तथा कोणकपोलेषु ह्रीं श्रीं द्वे विलिखेत्ततः।।53।।
हुं बीजं प्रतिकोणाग्रे केसराग्रेषु च स्वरान्।
मालामन्त्रस्य वर्णाः स्युश्चत्वारिंशच्च सप्त च।।54।।
वर्णाः सप्तदलेष्वेव षट्पञ्चाष्टमके दले।
पूर्वतो वेष्टयेत् काद्यैस्तत्सर्वं च तपोधन।।55।।
दिग्विदिक्षु लिखेद् बीजे नारसिंह वराहयोः।
क्रौं हुं चेति पूर्वादिभूगृहे चतुरस्रके।।56।।
यन्त्रेऽस्मिन् सम्यगाराध्य भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।

सबसे पहले षट्कोण लिखें, तब उसके बाहर एक वृत्त लिखें। इसके बाद आठ दल लिखें। तब चतुर्भुज बनावें। इस यन्त्र के मध्यभाग में सभी लक्षणों को स्पष्ट करते हुए साध्य का नाम बीच में लिखकर दोनों ओर क्रिया लिखें। तब उसका बीज बार कामबीज (क्लीं) के सम्पुटित कर लिखें। तब उन पाँच बीजाक्षरों को फिर दुहरावें। पुनः दशाक्षर मन्त्र से उसे वेष्टित करें। अग्निकोण से आरम्भ कर क्रम में लिखें। कोणों के दोनों कपोलों पर 'ह्रीं श्रीं' दो बार लिखें। प्रत्येक कोण के अग्रभाग में 'हुं' बीज लिखें और केसरों के अग्रभाग में सोलह स्वर लिखें। मालामन्त्र में सैंतालीस वर्ण हैं, जिनमें छह छह वर्ण सात दलों में और पाँच आठवें दल में लिखें। पूर्व दिशा से आरम्भ कर 'क' से ह तक व्यंजनों से सबको वेष्टित करें। दिशाओं और दिक्कोणों में नरसिंह (क्ष्रौं) और वराह के बीज (ह्रौं) लिखें। पूर्व दिशा से आरम्भ कर चतुर्भुज भू-पुर पर 'क्रौं हुं' यह लिखें। इस मन्त्र पर सम्यक् रूप से आराधना कर साधक भोग और मोक्ष प्राप्त करते हैं।

एतद्यन्त्रं समालिख्य सौवर्णे राजते पटे।।57।।
भूर्ज्जे वा सम्यगालिख्य गुलिकीकृत्य धारयेत्।।58।।
अपुत्रो लभते पुत्रान् अधनो धनमाप्नुयात्।
किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिप्रदं नृणाम्।।59।।
यन्त्रमेतत्समाख्यातं धारणात् पातकापहम्।

इस यन्त्र को सोना, चाँदी, कपड़ा या भोजपत्र पर लिखकर गोली बनाकर धारण करें। इससे अपुत्र पुत्र प्राप्त करते हैं, निर्धन धन पाते हैं अधिक क्या कहना! यह मनुष्यों के लिए सभी सिद्धि प्रदान करनेवाला है। इसे धारण करने से पापों को नाश होता है। यह यन्त्र इस प्रकार कहा गया।

षट्कोणादिमनोहरान्तं यन्त्रं लिखित्वा तस्य मध्ये साध्याख्या कर्मगर्भितं रामबीजं लिखेत्। तत्सर्वं मन्मथेन क्रोडीकृत्य अवशिष्टैर्मन्त्रार्णैर्मन्मथेन वेष्टयेत्।।60।। अष्टदलाद्बहिर्द्वारं दशाक्षरवेष्टनम्। इति वसिष्ठ कल्पभेदः। शेषं स्पष्टम्। षट्कोणादिरथ पूर्ववद् विलिखेत्। अथ तस्य मध्ये लिखेत्कर्म षट्सुकोणेष्वपि क्रमात्।।61।।

षट्कोण से सुन्दर भूपुर तक यन्त्र लिखकर उसके बीच में साध्य का नाम लिखना चाहिए और क्रिया से सम्पुटित कर रामबीज (रां) लिखें। सबको कामबीज से सम्पुटित कर मन्त्र के शेष वर्णों से और कामबीज से वेष्टित करें। अष्टदल के बाहर द्वार बनाकर दशाक्षर मन्त्र से वेष्ठित करें- यह वसिष्ठ कल्प में भिन्नता है। शेष स्पष्ट है। षट्कोणादि भी पूर्वोक्त विधि से लिखें। इसके बाद षट्कोण के मध्य में अभीष्ट कार्य लिखें और छह कोणों में भी क्रमशः लिखें।

मूलमन्त्राक्षराण्येव सन्धिष्वङ्गं च मन्मथम्।
माया गण्डेषु किञ्जल्के स्वराणां लेखनं मतम्।।62।।

रेखाओं की सन्धियों पर मूलमन्त्र और रेखाओं पर कामबीज (क्लीं) लिखें। कोण के कपोलों पर माया (ह्रीं) और केसरों पर सोलह स्वर लिखें।

पत्रेषु पूर्ववन्मालामन्त्रो लेख्यः। क्रमेण हि दशाक्षरेण संवेष्ट्य काद्यानि व्यञ्जनानि च।।63।।

पत्रों पर पूर्वोक्त रीति से मालामन्त्र लिखें। क्रमशः दशाक्षर मन्त्रों से वेष्ठित कर 'क' आदि व्यञ्जनों से वेष्टित करें।

दिग्विदिक्षु लिखेद् बीजे नारसिंहवराहयोः।
एतद् यन्त्रवरं चात्र साङ्गावरणमर्चयेत्।।63।।
सौवर्णे राजते भूर्ज्जे लिखित्वार्चनमाचरेत्।
फलं तु पूर्ववज्ज्ञेयं यन्त्रस्यास्य विचक्षणैः।।64।।

दिशाओं और कोणों में नरसिंह (क्ष्रौं) और वराह का बीजमन्त्र(फट्) लिखें। यह यन्त्रराज है, इसका पूजन अंग और आवरण के साथ करें। सोना, चाँदी या भोजपत्र पर लिखकर इसका पूजन करें। इस यन्त्र की आराधना का फल विद्वान् वहीं जानें जो पूर्व में कहा गया है।

अगस्त्य उवाच

वक्ष्यामि रामचन्द्रस्य यन्त्रं कवचसंज्ञितम्।
धारणात् तस्य मर्त्यानां जायन्ते सर्वसिद्धयः।।65।।
नश्यन्ति सर्वपापानि विपदो यान्ति संक्षयम्।
भूतप्रेतपिशाचाद्याः पलायन्ते च दर्शनात्।।66।।

मित्राणि स्थिरतां यान्ति शत्रवो यान्ति मित्रताम्।
ग्रहाः प्रसादमायान्ति दास्यं यान्ति महीभृतः।।67।।
किमत्र बहुनोक्तेन नास्त्यनेन सुदुर्ल्लभम्।
यन्त्रेण रामचन्द्रस्य वज्रपञ्जरसंज्ञितम्।।68।।

अब मैं श्रीराम का वह यन्त्र बतलाता हूँ, जिसे कवच कहा गया है। इस यन्त्र के धारण करने से मनुष्यों को सभी सिद्धियाँ मिल जाती हैं। सभी पाप नष्ट हो जाते हैं, सारी विपत्तियाँ नष्ट हो जाती है। भूत, प्रेत पिशाच आदि देखने से ही भाग जाते हैं। उनकी मित्रता स्थिर होती है, शत्रु भी मित्र हो जाते हैं, ग्रह प्रसन्न होते हैं और राजागण उस व्यक्ति के दास बन जाते हैं। अधिक क्या कहना! श्रीरामचन्द्र के वज्रपंजर नामक यन्त्र के धारण करने से कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता।

कोष्ठैः सहैकविंशत्या पंक्तिद्वयविभूषितम्।
विन्यसेदुत्तमं चक्रमेतस्मिन् कवचं लिखेत्।।69।।

इक्कीस कोष्ठों के साथ दो पंक्तियों में सुसज्जित उत्तम चक्र लिखें और इसमें कवच लिखें।

द्वादशाक्षरवर्णानि गृहाद्यन्त्रेषु विन्यसेत्।
अनुलोमविलोमाभ्यां प्राग्दाक्षिण्यक्रमेण च।।70।।

भू-पुर से यन्त्र तक द्वादशाक्षर मन्त्र अनुलोम और प्रतिलोम की विधि से पूर्व-दक्षिण क्रम से लिखें।

राघवादीनि नामानि नमस्कारेण योजयेत्।
मे शिरः पात्विति च स्यात् सर्वतो वाक्ययोजना।।71।।

राघव आदि नाम नमस्कार के साथ लिखकर 'मे शिरः पातु' इत्यादि सभी स्थलों पर वाक्य योजना होगी।

साध्याख्यसंयुतां षष्ठ्यां स्वाहेत्येकादशे गृहे।
स्वकामशक्तिवाग्वर्म नारसिंहमतः परम्।।72।।
लक्ष्मीपाशाङ्कुशार्णानि वाराहं फट्स्वरूपके।
स्वाहेति रामभद्रस्य द्वादशाक्षरमीरितम्।।73।।

छठे कोष्ठ में साध्य का नाम लिखकर ग्यारहवें कोष्ठ में स्वाहा लिखें। तब स्वबीज (रं) , इसके बाद कामबीज (क्लीं), शक्ति(ह्रीं), वाग्बीज(ऐं), वर्म(हुं) तथा नरसिंह बीज (क्ष्रौं), लक्ष्मीबीज (श्रीं), पाश (आं), अंकुश (क्रौं) और वाराहबीज (फट्) लिखकर स्वाहा लिखे। यह श्रीराम का द्वादशाक्षर मन्त्र कहा गया है– रं क्लीं ह्रीं ऐं हुं क्ष्रौं श्रीं आं क्रौं फट् स्वाहा।

सौवर्णे राजते पात्रे भूर्जे वा सम्यगालिखेत्।
अथवा ताम्रपत्रे च गुलिकीकृत्य धारयेत्।।74।।

सोना, चाँदी, भोजपत्र या ताँबा के पत्र भलीभाँति लिखें और गोली बना कर धारण करें।

यावज्जीवं तु सौवर्णे रौप्ये विंशतिवर्षकम्।
भूर्जे द्वादशवर्षाणि तदर्द्धे ताम्रपत्रके।।75।।

सोना पर लिखा हुआ जीवनपर्यन्त, चाँदी पर बीस वर्ष, भोजपत्र पर बारह वर्ष और ताँबा पर लिखा हुआ छह वर्ष तक यन्त्र प्रभावशाली रहता है।

एवं लिख्य विशेषेण यन्त्रशक्तिं प्रतिष्ठिताम्[1]।
एतां [2]रामबलोपेतामित्यादिश्लोकषट्ककम्।।76।।
यन्त्राद् बहिःप्रदेशे तु वृत्ताकारं यथालिखेत्।

---

1. क. यंत्रशक्तिंप्रतिष्ठिता।
2. ये छह श्लोक बुधकौशिक-प्रोक्त रामरक्षास्तोत्र में इस प्रकार उपलब्ध होते हैं– एतां रामबलोपेतां रक्षां यः सुकृती पठेत्। स चिरायुः सुखी पुत्री विजयी विनयी भवेत्।।10।। पाताल-भूतल-व्योमचारिणश्छद्मचारिणः। न द्रष्टुमपि शक्तास्ते रक्षितं रामनामभिः।।11।। रामेति रामभद्रेति रामचन्द्रेति वा स्मरन्। नरो न लिप्यते पापैर्भुक्तिं मुक्तिं च विन्दति।।12।। जगज्जैत्रैकमन्त्रेण रामनाम्नाभिरक्षितम्। यः कण्ठे धारयेत्तस्य करस्थाः सर्वसिद्धयः।।13।। वज्रपञ्जरनामेदं यो रामकवचं स्मरेत्। अव्याहताज्ञः सर्वत्र लभते जयमङ्गलम्।।14।। आदिष्टवान् यथा स्वप्ने रामरक्षामिमां हरः। तथा लिखितवान् प्रातः प्रबुद्धो बुधकौशिकः।।15।। (रामरक्षास्तोत्र श्लोक सं.10-15)

इस प्रकार विशेष रूप से लिखकर यन्त्रशक्ति के रूप में 'एतां रामबलोपेतां' आदि छह श्लोक लिखकर प्रतिष्ठित करें। यन्त्र के बाहर वृत्त बनावें।

सर्वदुष्टोपशमनं सर्वोपद्रवनाशनम् ।।77।।
आयुरारोग्यमैश्वर्यपुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम् ।
सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुलोकं[1] च गच्छति।।78।।

यह यन्त्र सभी दुष्टों को शान्त करता है, सभी उपद्रवों का नाश करता है, आयु आरोग्य, ऐश्वर्य, पुत्र, पौत्र आदि की वृद्धि करता है। इसे धारण करनेवाले सभी कामनाओं को प्राप्त करते हैं और विष्णुलोक भी जाते हैं।

इत्यगस्त्यसंहितायां परमरहस्ये श्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।[2]

समाप्तश्चायं ग्रन्थः

1. क. विष्णुलोके। 2. क. हनुमन्मन्त्रयंत्रश्रीरामकवचोद्धारकथनं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः।

परिशिष्ट 3

'अगस्त्य-संहिता' से उद्धृत रामनवमी-व्रत-कथा

पाण्डुलिपि 'अ' में लिखित रामनवमीपूजा विधि

अथ रामनवमीपूजाविधिः। सुवर्णप्रतिमां कारयित्वा मृण्मयीं वा प्रातः कृतनित्यक्रियः आचम्य पूर्व्ववत् ताम्रपात्रमादाय उदङ्मुख उत्तिष्ठन् ॐ भगवन् सूर्य्य भगवत्यो देवता यूयमत्र साक्षिण्योऽद्यादिप्रतिवत्सरं चैत्रशुक्लनवम्यां श्रीरामनवमीव्रतमहमाचरिष्यामीति **निवेद्य कुशत्रय-तिल-जलान्यादाय सङ्कल्पङ्कुर्यात्।** ॐ कुलकोटिसमुद्धरणपूर्व्वक-विष्णुलोकमहितत्त्व-कामनया अद्यादि-प्रतिवत्सरं चैत्रशुक्लनवम्यां भगवन्तं ससीतलक्ष्मणराममहं पूजयिष्ये।

ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳसमिमं दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ।।ॐ ससीतरामलक्ष्मण इह सुप्रतिष्ठितो भव। **इति प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्।**

ततो दूर्वादलश्यामं पद्मपत्राक्षं पीतवाससम् द्विभुजं धनुर्द्धरं कवचिनं ध्यात्वा रां रामाय नम **इति स्नपनं** ॐ भूर्भुवःस्वर्भगवन् राम इहागच्छ इह तिष्ठेत्या**वाह्य स्नापयित्वा**

ॐ सीतापते नमस्तुभ्यं रावणस्यान्तकारक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कौशल्यानन्दवर्द्धन।।

एषोर्घ्यः रां रामाय नमः। इदमनुलेपनं 3। एते तिलाः। एते **यवाः** रां रामाय नमः। **पुष्पाण्यादाय**

सीतापते नमस्तुभ्यं रावणस्यान्तकारक।
गृहाण कुसुमं देव कौशल्यानन्दवर्द्धन।।
एतानि पुष्पाणि रां रामाय नमः।

इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते रां (रामाय नमः।) इदं वस्त्रं बृहस्पति दैवतं रां (रामाय नमः।)

एतानि गन्धपुष्पधूपदीपताम्बूलनैवेद्यानि रां रामाय नमः।

ॐ सीते इहागच्छ इह तिष्ठ। **तत्रार्घदानमन्त्रः—**

ॐ सीते देवि नमस्तुभ्यं रामचन्द्रप्रिये सदा।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव शोभने।।

एषोऽर्घ्यः ॐ सीतायै नमः। **एवं पञ्चोपचारैः पूजयेत्।**

तथैव कौशल्यां पूजयेत्। कौशल्ये इहागच्छ इह तिष्ठ। **अर्घ्यदानमन्त्रः—**

ॐ कौशल्ये प्रणमामि त्वां राममातः सुशोभने।
अदिते त्वं गृहाणार्घ्यं वरदा भव सर्वदा।।

एषोऽर्घ्यः ॐ कौशल्यायै नमः। **एवं पञ्चोपचारैः पूजयेत्।**

ततः ॐ कैकेयि इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ कैकेयि प्रणमामि त्वां रावणस्यान्तकारिणि।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव शोभने।।

एषोऽर्घ्यः ॐ कैकेय्यै नमः। **एवं चन्दनादिना पूजयेत्।**

ततः सुमित्रापूजा।

ॐ सुमित्रे इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ सुमित्रे त्वां नमस्यामि शेषमातर्नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव सुन्दरि।।

एषोऽर्घ्यः ॐ सुमित्रायै नमः। **एवं चन्दनादिना पूजयेत्।**

ॐ दशरथ इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ अजपुत्र महाबाहो श्रीमद्दशरथ प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रामतात नमोऽस्तु ते।।

एषोऽर्घ्यः ॐ दशरथाय नमः। **एवं पूजयेत्।**

ॐ भरत इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ दाशरथे त्वां नमस्यामि रामभक्त नृपात्मज।
मया समर्पितं तुभ्यमर्घोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

एषोऽर्घ्यः ॐ भरताय नमः।

ॐ लक्ष्मण इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ लक्ष्मणत्वं महाबाहो इन्द्रजिद्वधकारक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं सुमित्रातनय प्रभो।।

एषोऽर्घ्यः ॐ लक्ष्मणाय नमः। **एवं पूजयेत्।**

ॐ शत्रुघ्न इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ शत्रुघ्न प्रणमामि त्वां लवणस्यान्तक प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रामभक्तं प्रयच्छ मे।।

एषोऽर्घ्यः ॐ शत्रुघ्नाय नमः।

एताय्थोक्तविधिना पञ्चोपचारैः पूजयेत्। ततः प्रत्येकमपरे पूजनीयाः।

ॐ सुग्रीव इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय।
गृहाणार्घ्यं महावीर किष्किन्धानायक प्रभो।।

एषोर्घ्यः ॐ सुग्रीवाय नमः। एवं पूजयेत्।

ॐ हनुमन् इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ कूर्मकुम्भीरसंकीर्णस्वात्तीर्णोऽसि महार्णवम्।
हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते।।

एषोर्घ्यः ॐ हनूमते नमः। **एवं पूजयेत्।**

विभीषण अंगद धृष्टि जय विजय जयन्त सुराष्ट्र राष्ट्र अशेष नल नील द्वारपाल सुमन्त एते सचिवाः पूज्याः। ततो वज्र दण्ड पाश खड्ग शूल अम्बुज चक्र शङ्ख गदा शार्ङ्ग बाण वसिष्ठ वामदेव जाबालि गौतम विष्वक्सेनप्रभृतयः पूजनीयाः। एवम्।

<u>पाण्डुलिपि 'आ' में लिखित रामनवमीपूजा विधि</u>

(1) राम
(2) सीता
(3) लक्ष्मण
(4) दशरथ
(5) कौशल्या
(6) कैकेयी
(7) सुमित्रा
(8) भरत
(9) शत्रुघ्न
(10) सुग्रीव
(11) हनुमान्
(12) जाम्बवान्
(13) विभीषण
(14) अंगद
(15) नल
(16) नील
(17) धृष्ट
(18) जय
(19) विजय
(20) सुराष्ट्र
(21) राष्ट्र
(22) कोपन
(23) अकोपन
(24) सुमन्त्र
(25) इन्द्रादिदशदिक्पाल
(26) अनन्त
(27) ब्रह्मा

ततोऽत्र पूजयेत् पुष्पाक्षतैः ॐ वज्राय नमः, ॐ शक्त्यै नमः, ॐ दण्डाय नमः, ॐ शङ्खाय नमः, ॐ पाशाय नमः, ॐ गदाय नमः, ॐ शूलाय नमः, ॐ चक्राय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ अङ्कुशाय नमः। ततः सूर्यादिनवग्रहाः इति।

अथ घृतदीपम्।

नमोऽस्यां रात्रौ चैत्रशुक्लरामनवम्यां सकलपापविनिर्म्मुक्तिपूर्व्वक-ज्योतिष्मद् विमानकरणक-विष्णुलोकगमनकामनयामुं घृतदीपं श्रीरामचन्द्रायाहन्ददे।।

प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः। ॐ मनोजूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमन्तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वेदेवास इह मादयन्तामों प्रतिष्ठ।।। श्रीरामचन्द्र साङ्ग-सायुध-सवाहन-सपरिवार इह सुप्रतिष्ठितो भव। **इति**

छन्दोगानां प्राणप्रतिष्ठामन्त्रः ॐ वाङ्मनः प्राणापानो व्यान चक्षुः श्रोत्रं शर्म्मवर्म्मभूतिः प्रतिष्ठा ॐ श्रीरामचन्द्र साङ्ग-सायुध-सवाहन-सपरिवार इह सुप्रतिष्ठितो भव।।

पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वोपविश्य-

नमो नमस्ते देवेश सुरासुरपते जय।
जय कामद भक्तानां जय दाशरथे प्रभो।।
जय सीतापते नाथ जय भग्नेशकार्मुक।
जब ब्रह्माण्डखण्डेश जय रावणमर्द्दन।।
जय बालिकपीशघ्न जय सुग्रीवराज्यद।
जय द्विजगणानन्द जय वायुसुतप्रिय।।
इति संकीर्त्य देवेशं प्रणिपत्य पुनः पुनः।
सर्वान् कामानवाप्नोति ततो मोक्षमवाप्नुयात्।।

एष पुष्पाञ्जलिः नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।।

।। श्रीरामचन्द्राय नमः।।

अथ रामनवमीपूजाविधिः

मृण्मयीं प्रतिमां विधाय ॐ रामोऽसीति **नाम कृत्वा** ॐ मनोजूति**रित्यादिमन्त्रेण प्रतिष्ठां कृत्वा रामं ध्यायेत्-**

कोमलाङ्गं विशालाक्षमिन्द्रनीलसमप्रभम्।
दक्षिणांशे दशरथं पुत्रावेक्षणतत्परम्।।

पृष्ठतो लक्ष्मणन्देवं सैच्छत्रं कनकप्रभम्।
पार्श्वे भरत शत्रुघ्नौ तालवृन्तकरावुभौ।।
अग्रेप्यग्रं हनूमन्तं रामानुग्रहकांक्षितम्।

एवं ध्यात्वा प्रतिमां स्वशाखोक्तविधिना संस्थापयेत्।

ॐ इन्द्राग्निर्यमश्चैव निर्ऋतोवरुणोऽनिलः।
कुबेर ईशो ब्रह्मा च दिक्पालाः स्नापयन्तु ते।।

इत्यनेन स्नापयेत्।

ततो यवमादाय ॐ हौं श्रीं महावीर समरवीरपते श्रीरामचन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ **इत्यावाह्य स्थापयित्वा फल-पुष्पाम्बुसम्पूर्ण-चूताशोक-तुलसीदल-संयुक्तमुज्ज्वलं शङ्खं गृहीत्वा।**

दशग्रीवविनाशाय जातोऽसि रघुनन्दन।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद परमेश्वर।।

एषोऽर्घ्यः भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

सुगन्धिचन्दनं दिव्यं कर्प्पूरादिमिश्रितम्।
सीतया भार्य्यया सार्द्धं रक्षोघ्नं परिगृह्यताम्।।

इदमनुलेपनं भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

पुष्पमादाय

पुष्पन्तु परं दिव्यं पुण्यं सुरभिसंयुतम्।
गृहाण परया भक्त्या मया दत्तं जगत्पते।।

इदं पुष्पं भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

ततो यज्ञोपवीतमादाय

श्रीरामविबुधाधीश सुरासुरवरप्रद।
यज्ञोपवीतं मद्दतं परिधत्स्व रघुनन्दन।।

इमे यज्ञोपवीते बृहस्पतिदैवते भगवते श्री रामचन्द्राय नमः।

ततो वासोयुगलमादाय

ॐवासो युगं गृहाणेश तन्तुसन्तानकल्पितम्।
सीतया भार्य्यया सार्द्धं रक्षोघ्नं परिधीयताम्।।

इमे वासोयुगे बृहस्पतिदैवते भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

ॐरामचन्द्र सुरश्रेष्ठ जानक्या भ्रातृभिः सह।
पूजितोऽसि मया देव धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम्।।

एष धूपः भगवते श्रीरामचन्द्राय नमः।

ॐ मारीचघ्न महाबाहो सङ्ग्रामव्यसन प्रभो।
दीपोऽयं गृह्यतां देव त्रैलोक्यध्वान्तनाशन:।।

एष दीप: भगवते श्रीरामचन्द्राय नम:।

इदं ताम्बूलं भगवते श्रीरामचन्द्राय नम:।

नैवेधं फल पक्वान्नं शर्क्कराघृतपाचितम्।
गृहाण जगतां सर्व्वैर्बन्धुजनैस्सह।।

एतानि नैवेधानि ॐ भगवते श्रीरामचन्द्राय नम:।

ॐ नमस्ते पुण्डरीकाक्ष त्राहि मां भवसागरात्।
सर्वपापप्रणाशार्थं दण्डवत् प्रणमाम्यहम्।।

इत्यनेन दण्डवत् प्रणामं कुर्य्यात्।

ॐ यानि कानि कृतानीह पापानि मम जन्मनि।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे।।

अनेन मन्त्रेण प्रदक्षिणं कुर्य्यात्। ततः उपविश्य पठेत्।

ॐ नमस्ते देव देवेश सुरासुरपते जय।
जय कामद भक्तानां जय दाशरथे प्रभो।।
जय सीतापते नाथ जय भग्नेशकार्मुक।
जय ब्रह्माण्ड खण्डेश जय रावणमर्दन।।
जय बालीकपीशघ्न जय सुग्रीवराज्यद।
जय द्विजगणानन्द जय वायुसुतप्रिय।।
इति संकीर्त्य देवेशं प्रणिपत्य पुन: पुन:।
सर्वान् कामानवाप्नोति ततो मोक्षमवाप्नुयात्।।

एष पुष्पाञ्जलि: नमो भगवते श्रीरामचन्द्राय नम:।

ततः सीतापूजा।

ॐ सीते इहागच्छ इह तिष्ठ **इत्यावाह्य**

ॐ दशाननविनाशाय जाता धरणिसंभवा।
मैथिली शीलसम्पन्ना पातु न: पतिदेवता।।

एषोऽर्घ्य: ॐ सीतायै नम:। इदमनुलेपनम्। इदं सिन्दूरम्। इदमक्षतम्। इदं पुष्पम्। एतानि गन्ध-पुष्प-धूप-दीप-ताम्बूल-नैवेद्यानि ॐ सीतायै नम:।

ततो लक्ष्मण इहागच्छ इह तिष्ठ इत्यावाह्य

ॐ निहतो रावणिर्य्येन शक्रजिच्छत्रुघातिना।
स: पातु लक्ष्मणो धन्वी सुमित्रानन्दवर्द्धन।।

एषोऽर्घ्य: भगवते श्री लक्ष्मणाय नम:।

ततोऽष्टदलमध्ये पूर्वदले ॐ दशरथ इहागच्छ इह तिष्ठेत्यावाह्य

ॐ नानाविधगुणागार गृहाणार्घ्यं नृपोत्तम।
रविवंशप्रदीपाय नमो दशरथाय वै।।

एषोऽर्घ्यः दशरथाय नमः।

एवं गन्धादिना पूजयेत्। आग्नेयदले कौशल्यामावाहयेत्।

ॐ कौशल्ये इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ गृहाणार्घ्यं मया देवि रम्ये दशरथप्रिये।
जगदानन्दवन्द्यायै कौशल्यायै नमो नमः।।

एषोऽर्घ्यः कौशल्यायै नमः। इदमनुलेपनम्। इदं सिन्दूरम्। इदमक्षतम्। **इत्यादिना पूजयेत्।**

याम्यदले कैकेयि इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ दृढप्रतिज्ञे कैकेयि मातर्भरतवन्दिते।
गृहाणार्घ्यं महादेवि रक्ष मां भक्तवत्सले।।

एषोऽर्घ्यः कैकेय्यै नमः। इदमनुलेपनम्। इदं सिन्दूरम्। इदमक्षतम्। **इत्यादिना पूजयेत्।**

नैर्ऋत्यदले सुमित्रे इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ शुभलक्षणसम्पन्ने लक्ष्मणानन्दकारिणि।
सुमित्रं देहि मे देवि सुमित्र्यै वै नमो नमः।।

एषोऽर्घ्यः सुमित्रायै नमः। एवं गन्धादिना पूजयेत्।

पश्चिमदले भरत इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ भक्तवत्सल भक्त्यात्म रामभक्तिपरायण।
भक्त्या दत्तं गृहाणार्घ्यं भरताय नमो नमः।।

ॐ एषोऽर्घ्यः ॐ भरताय नमः। इदमनुलेपनेम्। एते तिलाः। इदं पुष्पम्। **एवं पूजयेत्।**

ततः वायव्यदले शत्रुघ्न इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ लवणान्तक शत्रुघ्न शत्रुकाननपावक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं प्रसीद कुरु मे शुभम्।।

एषोऽर्घ्यः ॐ शत्रुघ्नाय नमः। **एवं गन्धादिना पूजयेत्।**

उत्तरदले सुग्रीव इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ सुग्रीवाय नमस्तुभ्यं दशग्रीवान्तकप्रिय।
गृहाणार्घ्यं महावीर किष्किन्धानायक प्रभो।।

एषोर्घ्यः ॐ सुग्रीवाय नमः।

ईशानदले ॐ हनुमन्निहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ कूर्मकुम्भीव संकीर्णमुत्तीर्णोऽसि महार्णवम्।
हनूमते नमस्तुभ्यं गृहाणार्घ्यं महामते।।

एषोर्घ्यः ॐ हनुमते नमः। **एवं चन्दनादिना पूजयेत्।**

ततो विभीषण इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ विभीषणाय नमः। **इति पूजयेत्।**

ॐ जाम्बवान् इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ जाम्बवते नमः **इति पूजयेत्।**

ॐ अंगद इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ अङ्गदाय नमः। **एवं पूजयेत्।**

ॐ नल इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ नलाय नमः। **एवं पूजयेत्।**

ॐ नील इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ नीलाय नमः। **एवं पूजयेत्।**

ततोऽष्टदलमध्ये धृष्टे इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः धृष्ट्यै नमः।

ॐ जय इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः जयाय नमः।

ॐ विजय इहागच्छ इह तिष्ठ।

ॐ सुराष्ट्र इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ सुराष्ट्राय नमः।

ॐ राष्ट्रवर्द्धन इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः राष्ट्रवर्द्धनाय नमः।

ॐ अकोपन इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ अकोपनाय नमः।

ॐ धर्मपाल इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ धर्मपालाय नमः।

ॐ सुमन्तो इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोर्घ्यः ॐ सुमन्ताय नमः।

दलाग्रे ॐ लोकपाल इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोर्घ्यः लोकपालाय नमः। **एवं संपूजयेत्।**

ॐ इन्द्र इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ इन्द्राय नमः। एवं पूजयेत्।

ॐ अग्ने इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ अग्नये नमः।

ॐ यम इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ यमाय नमः।

ॐ निर्ऋते इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ निर्ऋतये नमः।

ॐ वरुण इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ वरुणाय नमः।

ॐ वायो इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ वायवे नमः।

ॐ कुबेर इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ कुबेराय नमः।

ॐ **ईशान** इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ ईशानाय नमः।

निर्ऋतिवरुणयोर्मध्येऽनन्तपूजा। ॐ अनन्त इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ

अनन्ताय नमः।
इन्द्रेशानयोर्म्मध्ये ब्रह्मन् इहागच्छ इह तिष्ठ। एषोऽर्घ्यः ॐ **ब्रह्मणे नमः।**
ततोऽस्त्राणि पूजयेत्। ॐ वज्राय नमः। ॐ शक्त्यै नमः। ॐ दण्डाय नमः ॐ खड्गाय नमः। ॐ पाशाय नमः। ॐ अङ्कुशाय नमः। ॐ गदायै नमः। ॐ शूलाय नमः। ॐ चक्राय नमः। ॐ पद्माय नमः। **पुष्पाक्षतैः पूजयेत्।**

ॐ सूर्यादिनवग्रहाः इहा गच्छत इह तिष्ठत। एषोऽर्घ्यः ॐ सूर्यादिनवग्रहेभ्यो नमः। **इति गन्धादिभिः पूजयेत्। प्रभातसमये विसर्ज्जनम् कुर्यात्। तद्यथा-**

देवदेव महाबाहो दशग्रीवनिकृन्तन।
गृहीत्वा मत्कृतां पूजां स्वस्थानं गच्छ ते नमः।।
मम कृतां देव पूजां सौभाग्यसुखदान्तथा।
गृहीत्वा गच्छ स्वस्थानमपराधं क्षमस्व मे।।
न्यूनाधिकं च यत्किञ्चिन्नवम्यां च यत्कृतम्।
कृपां मयि विधायेत्थं क्षमस्व पुरुषोत्तम।।
रामचन्द्र सुराधीश वैकुण्ठं व्रज पार्थिव।
पूजां मदीयामादाय मम स्वस्तिकरो भव।।
ॐ रूपन्देहि यशो देहि भाग्यं भगवन् देहि मे।
धर्मान्देहि धनन्देहि सर्वान् कामान् प्रदेहि मे।।

इति प्रणमेत्।

यान्तु देवगणाः सर्वे पूजामादायमामकीम्।
इष्टकामप्रसिद्ध्यर्थं पुनरागमनाय च।।

श्रीरामचन्द्र पूजितोऽसि प्रसीद **इति विसर्ज्जयेत्।**

ततो लक्ष्मणादयो देवाः पूजिताः स्थः क्षमध्वमिति **तान् विसर्ज्जयेत्।**

ॐ अद्य कृतैतद्रामनवम्यां ससीतश्रीरामलक्ष्मणादिपूजनप्रतिष्ठार्थमिदं हिरण्यमग्निदैवतं यथानामगोत्राय ब्राह्मणाय दक्षिणामहं ददे।

मृण्मयीञ्च महानद्यां विसर्ज्जयेत्। ततः स्नात्वा नित्यं च विधाय ब्राह्मणान् भोजयित्वा तेभ्यो दक्षिणान्दत्वा स्वयं भुञ्जीत इति पूजाविधिः।

अथ कथा

प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते[1]।।1।।
यत्किंचिद्राममुद्दिश्य नो ददाति स्वशक्तितः।
रौरवेषु स मूढात्मा[2] पच्यते[3] नात्र संशयः।।2।।
पीताम्बराणि[4] देवाय प्रार्थितान्यर्पयेत्सुधीः।
स्वर्णयज्ञोपवीतानि दद्याद्देवाय शक्तितः।।3।।
नानारत्नविचित्राणि दद्यादाभरणानि च।
हिमाम्बुघृष्टरुचिरघनसारसमन्वितम् ।।4।।
गन्धं दद्यात्प्रयत्नेन सागुरुं च सकुङ्कुमम्।
मूलमन्त्रेण सकलानुपचारान्प्रकल्पयेत्।।5।।
कह्लारकेतकीजातीपुन्नागाद्यैः प्रपूजयेत्।
चम्पकैः शतपत्रैश्च सुगन्धैः सुमनोहरैः।।6।।
घण्टां च वादयन्[5] धूपं दीपं चास्मै समर्पयेत्।
भक्ष्यभोज्यादिकं भक्त्या देवाय[6] विधिनार्पयेत्।।7।।
एवं सोपस्करं देवं [7]दत्वा पापैः प्रमुच्यते।
जन्मकोटिकृतैः घोरैर्नानारूपैः सुदारुणैः।।8।।
विमुक्तस्तत्क्षणादेव[8] राम एव भवेन्मुने।
श्रद्धधानस्य ते प्रोक्तं[9] श्रीरामनवमीव्रतम्।।9।।
सर्वलोकहितार्थाय पवित्रं पापनाशनम्।[10]
लौहेन निर्मितं चापि शिलया दारुणापि वा।।10।।
येन केन प्रकारेण यस्मै कस्मै क्रमान्मुने।[11]
चैत्रशुक्लनवम्यां तु दत्वा विप्राय भक्तितः।।11।।
सर्वपापविनिर्मुक्तो भवेदेव न संशयः।
तस्मिन् दिने महापुण्ये स्नानदानादिकं मुने।।12।।
कृतं सर्वप्रयत्नेन यत्किंचिदपि भक्तितः।
महादानादितुल्यं स्याद्रामोद्देशेन यत्कृतम्।।13।।
वित्तसाठ्यन्न कर्तव्यं सर्वं कुर्यात्स्वभक्तितः।
तस्मिन् दिने महापुण्ये प्रातरारभ्य भक्तितः।।14।।

---

1. मज्जति। 2.समारूढा। 3. पच्यन्ते। 4.चीराम्बराणि। 5 वादयेत्। 6. दद्याद्देवाय।
7. अधिक पाठ – ब्राह्मणाय निवेदयेत्। अनेन विधिना कुर्यात्।।8. मुच्यते तत्क्षणादेव।
9. भक्त्या त्वयि संप्रोक्तं।10. यः कुर्याद्विधिवत्प्राज्ञो राम एव न संशयः। 11. च वा मुने।

जपेदेकान्त आसीनो यावत्स्याद्दशमीदिनम्।
तेनैव स्यात्पुरश्चर्य्या दशम्यां भोजयेद् द्विजान्।।15।।
भक्ष्यभोज्यैर्बहुविधैर्दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम्।
कृतकृत्यो भवेत्तेन सद्यो रामः प्रसीदति।।16।।
तूष्णीं तिष्ठन्नरो याति पुनरावृत्तिवर्जितः।
द्वादशाब्दशतेनापि[1] यत्पापं नापपद्यते[2]।।17।।
विलयं याति तत्सर्वं श्रीरामनवमीदिने।
मुमुक्षवोऽपि सदा राम श्रीरामनवमीव्रतम्।।18।।
न त्यजन्ति सुरश्रेष्ठो देवेन्द्रोऽपि विशेषतः[3]।
तस्मात्सर्वात्मना सर्वे कृत्वैव नवमीव्रतम्[4]।।19।।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
अथ पूजां प्रवक्ष्यामि ब्रह्मोक्तां सुरपूजिताम्।20।।
सीते देवि नमस्तुभ्यं रामचन्द्रप्रिये सदा।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव शोभने।।21
कौशल्ये प्रणमामि त्वां राममातः सुशोभने।
अदिते त्वं गृहाणार्घ्यं वरदा भव सर्व्वदा।।22।।
कैकेयि प्रणमामि त्वां रावणस्यान्तकारिणि।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव शोभने।।23।।
सुमित्रे त्वां नमस्यामि शेषमातर्नमोऽस्तु ते।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं वरदा भव शोभने।।24।।
अजपुत्र महाबाहो श्रीमद्दशरथ प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रामतात नमोऽस्तु ते।।25।।
सीतापते नमस्तुभ्यं रावणस्यान्तक प्रभो।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं कौशल्यानन्दवर्द्धन।।26।।
दाशरथे नमस्यामि रामभक्तिन् नृपात्मज।
मया समर्पितं तुभ्यमर्घ्योऽयं प्रतिगृह्यताम्।।27।।
लक्ष्मण त्वं महाबाहो इन्द्रजिद्वधकारक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं [5]सुमित्रातनय प्रभो।।28।।
नारिकेरैश्च कूष्माण्डैर्मातुलङ्गैः सपूगकैः।
दद्यादर्घ्यं सुरेशाय रामाय वरदायिने।।29।।

---

1. द्वादशाब्दकृतं पापं। 2.नानुमुच्यते। 3.देवेन्द्रास्वानशंसयः। 4.तस्मात्सर्वात्मना सर्वैः कृतञ्च नवमीव्रतम्। 5 यहाँ से 8 चरण 'अ' में खण्डित।

हनुमद् वायुतनय रावणस्यान्तकारक।
गृहाणार्घ्यं मया दत्तं रामभक्तिं प्रयच्छ मे।।30।।
लब्ध्वा सुतौ त्वया राम प्राप्तं सुखमनूत्तमम्।
तथा मां सुखितं देव कुरुष्व त्वां नमाम्यहम्।।31।।
अवतीर्य्य त्वया देव वायुपुत्रासुरान्तक।
अवतारय मां भक्तं भवसिन्धुसुदुस्तरात्।।32।।
पापिनो हि नो रामं प्राप्यन्ते चात्र संशयः।
चैत्रशुक्लनवम्यान्तु भुञ्जन्ते ये नराधमाः।।33।।
पच्यन्ते रौरवे घोरे विष्णुना भाषितं पुरा।
नवमी चैत्रमासस्य पुनर्वसुयुता भवेत्।।34।।
उपवासः सदा देव अश्वमेधशताधिकः।
बुधवारो भवेत्तत्र अतिगण्डस्तथैव च।।35।।
पूजयन्ति तथा रामं यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
मुमुक्षुणापि कर्तव्यं गृहस्थेनापि वा पुनः।।36।।
क्षत्रियेण च वैश्येन शूद्रेणापि महामुने।।
चाण्डालेनापि कर्तव्यं व्रतमेतदनुत्तमम्।।37।।
व्रतं ये नैव कुर्वन्ति मानवाः काममोहिताः।
ते यान्ति नरकं घोरं शतकल्पावधि ध्रुवम्।।।38।।
भ्रूणहत्या च यत्पापं सुरापानाच्च यद्भवेत्।
तत्पापं कोटिगुणितं जयन्त्यां भोजनाद्भवेत्।।39।।
गवां वधे च यत्पापं स्त्रीवधे यत्प्रजायते।
कृतघ्नस्यापि यत्पापं संसारे संभवेन्मुने।।40।।
तत्पापं कोटिगुणितं जयन्त्यां भोजनाद् भवेत्।
काकमांसं गवीमांसं शुनश्चापि नरस्य च।।41।।
भक्षयित्वा च यत्पापं जयन्तीभोजनाद् भवेत्।
ये कुर्वन्ति नरा नित्यं जयन्तीव्रतमुत्तमम्।।42।।
कुलकोटिसमायुक्तं यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन व्रतमेतत् समाचरेत्।
अकुर्वन् यान्ति निरयं सत्यं सत्यं वदाम्यहम्।।43।।

अगस्तिरुवाच

पूजाविधानं वक्ष्यामि कथितं नारदेन यत्।

वाल्मीकाय मुनीन्द्राय द्वारपूजादिकं तथा।।44।।
आकर्णय मुनिश्रेष्ठ सर्वाभीष्टफलप्रदम्।
श्रीरामद्वारपीठाङ्गपरिवाराँस्तथा स्थितान्।।45।।
ये प्रोक्तास्तानिह स्तौमि तन्मूलाः सिद्धयो यतः।
वंदे गणपतिं भानुं तिलकं स्वामिनं शिवम्।।46।।
क्षेत्रपालं तथा धात्रीं [1]विधातारमनन्तरम्।
गृहाधीशं गृहं गङ्गां यमुनां कुलदेवताम्।।47।।
प्रचण्डचण्डा च तथा शंखपद्मनिधी अपि।
वास्तोष्पतिं द्वारलक्ष्मीं गुरुं वागधिदेवताम्।।48।।

एता वै द्वारदेवताः पूज्याः। महामन्त्रककालागुरुद्रव्याभ्यान्नमः।

आधारं शङ्खं कूर्मं शेषं सवासुकिम्।
सुधार्णवं श्वेतद्वीपं कल्पवृक्षं मणिमण्डपम्।।49।।

अश्वं विमानं सिंहासनम्। आरक्तपद्मं धर्मादींश्चसत्त्वादिकाँश्च। अर्द्धचन्द्राग्नि-विमलोत्कर्षिणी-क्रिया-योगा-ईशानाः प्रसिद्धसत्त्वा। ईशानायै सर्वात्मने योगपीठात्मने नमः।

यजामहेत्विष्टौ रामौ ह्रीमानात्मनौ व्यवस्थितौ।
ससीताय रामाय वषट् नेत्रत्रयाय च।।50।।
रां रामाय नमो राममर्चयेन्मनुना ततः।
ह्रीमाद्यं ससीतायै स्वाहान्तोऽयं षडक्षरः।।51।।
ऐं मन्त्रस्वरूपाय नमो ज्योतिषेन्द्राय नमः।
आत्मान्तरात्ममनसोत्पत्यै ज्ञानात्मने नमः।।52।।

आग्नेयात् प्रवृत्यै प्रतिष्ठायै विद्यायै ईशान्यै वासुदेवाय संकर्षणाय प्रद्युम्नायानिरुद्धाय शान्त्यै प्रकृत्यै रत्यै प्रीत्यै नमः।

अग्रे हनूमान् जाम्बवान् सुग्रीव विभीषण अङ्गद शत्रुघ्न, धृष्टि जय विजय राष्ट्र सुराष्ट्रवर्द्धन अशोक सुमन्त द्वारपालाः रामरूपाः।

वज्र शक्ति दण्ड खड्ग पाश गदा त्रिशूल अम्बुज चक्र एतान्यस्त्राणि।

वसिष्ठ वामदेव गौतम नल नील गवय गवाक्ष गन्धमादन शरभ मैन्द द्विविदादयः।

---

1. विधातारं गृहाधिपम्। गृहं गङ्गाञ्च यमुनां कुलदेवीं प्रचण्डकम्। पद्मनिधि वास्तुद्वारं निधिं लक्ष्मीं वाग्देवताम्।

शङ्ख चक्र गदा पद्म शार्ङ्ग बाण गरुड विष्वक्सेन एते विष्णुरूपाः। सर्वस्मै विष्णुरूपाय नमः। ज्योतिषे विष्णुरूपिणे।

मनोवाक्कायजनितं कर्म यच्च शुभाशुभम्।
तत्सर्वं भूतये भूयान्नमो रामाय देहिने।। 53
एतद्रहस्यं परमं प्रत्यूषःसु समासतः।
यः पठेद्राममाहात्म्यं विद्यैश्वर्य्यनिधिर्भवेत्।।54।।
ऋणध्वंसश्च सौभाग्यं दारिद्र्यञ्च निकृन्तयेत्।
उपद्रवाँश्च शमयेत् सर्व्वलोकं वशं नयेत्।।55।।
यः पठेत्प्रातरुत्थाय धर्म्मार्पणधिया सदा।
स याति परमं ब्रह्म पुनरावृत्तिवर्जितम्।।56।।

इत्यगस्त्यसंहितोक्ता रामनवमीकथा समाप्ता।

ॐ यदक्षरेत्यादि।[1]

ॐ नमः ससीतरामलक्ष्मणाभ्याम्।

---

1. यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनञ्च यद् भवेत्।
तत् सर्वं क्षम्यतां देव कस्य वै निश्चलं मनः।।

परिशिष्ट 4

श्रीमदगस्त्यसंहितान्तर्गत श्रीरामानन्दाचार्यजन्मोत्सवकथा

अथ एकत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः

सिंहासने समासीनः सहितः सीतयानुजैः।
अतसीकुसुमश्यामो रामो विजयतेऽनिशम्।।1।।
स्वाश्रमे संश्रितं शिष्यैः प्रातर्हुतहुताशनम्।
बोधयन्तं परं तत्त्वं तमगस्त्यं महामुनिम्।।2।।
कृतक्षणः सुतीक्ष्णस्तमुपागम्य कृताञ्जलिः।
पश्यन्वनानि रम्याणि विचरंश्च महामुनिः।।3।।
भाविनो नृन् कलौ बुध्वा विषयासक्तचेतसः।
अज्ञानाल्पायुषः श्रीमच्छ्रीशांघ्रिविमुखान्भुवि।।4।।
संसारार्णवसंमग्नान् कृपालुर्मुनिसत्तमः।
उद्धर्तुकामस्तांस्तस्मात् पृष्ठवान् श्रेय उत्तमम्।।5।।

सुतीक्ष्ण उवाच

भगवन्! मुनिशार्दूल! सर्वज्ञ! कलशोद्भव!
नृणां श्रेयसि मूढानां श्रेयश्चिन्तय सुव्रत!।।6।।
उपायं वद निश्चित्य तेषां श्रेयो यथा भवेत्।
परोपकारनिरताः साधवो हि कृपालवः।।7।।

अगस्त्य उवाच

कुम्भजोऽथनिशम्येत्थं वाचं मुनिसमीरिताम्।
अल्पाक्षरमनल्पार्थां धर्मसंप्रश्नभूषिताम्।।8।।

प्रसन्नवदनाम्भोजः प्रशस्य मुनिपुङ्गवः।
तं प्रत्युवाच संप्रीतो वाचं हृदयहर्षणीम्।।9।।
श्रूयतामितिहासोऽयं कुमारेभ्यो मया श्रुतः।
मुनिवर्यो महाभागो जगतामुपकारकः।।10।।
हिरण्यगर्भसम्भूतो मतिमान् वाग्विदां वरः।
सर्वलोकजनान् दृष्ट्वा विमूढान् विमुखाञ्छ्रुतेः।।11।।
चिन्तयन् वत तच्छ्रेयो दिव्यं धाम जगाम सः।
कृपालुरच्युतस्याद्यं सिद्धिभिः सिद्धभूषणम्।।12।।
तत्र सिंहासनं दिव्यमध्यासीनं जगत्प्रभुम्।
निजैर्वरायुधैः सर्वैर्मूर्त्तिमद्भिरुपासितम्।।13।।
पार्षदप्रवरैः कृत्स्नैर्महार्हाम्बरभूषणैः।
पद्मपत्रविशालाक्षं पद्मया पद्मनेत्रया।।14।।
उपविष्टं जगद्धेतुं नारदोऽपश्यदच्युतम्।
दिव्याम्बरधरं देवं दिव्यभूषणभूषितम्।।15।।
प्रणतस्तं प्रतुष्टाव हृष्टात्मा जगदीश्वरम्।
जगद्योनिरयोनिस्त्वं व्यक्तोऽव्यक्ततरो विभुः।।16।।
कर्त्रे विश्वस्य संभर्त्रे संहर्त्रे ते नमोनमः।
आदिमध्यान्तहीनाय प्रभवे परमात्मने।।17।।
नमस्ते विश्वरूपाय नमस्ते विश्वबन्धवे।
विश्वम्भर! नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ! कृपाम्बुधे!।।18।।
संसारेऽस्मिन् महाघोरे पापाभिरतचेतसाम्।
जन्तूनां का गतिर्देव कर्मणा भ्रमतामिह।।19।।
मुक्तिस्तेषां कथं श्रीश! भवेद्धर्मे कथं रतिः।
कृपाकूपार भगवञ्जन्तूनुद्धर माधव।।20।।
श्रुतिस्मृत्युदिता धर्माः क्लेशसाध्या नृभिः सदा।
अतस्त्वं सुकरोपायं वद त्वद्भक्तिवर्धनम्।।21।।
सर्वबन्धविनाशाय मुक्तये प्राणिनां प्रभो!
प्रवक्ता त्वं हि धर्माणामविता जगतामपि।।22।।
इत्थमाकर्ण्य भगवान् वाचं मुनिसमीरिताम्।
तं प्रत्युवाच संप्रीतः शुचिस्मितमुखाम्बुजः।।23।।

मुनिवर्य! महाभाग! जगतां हितकारक!
मया जगद्धितायैव पुरैतदवधारितम्।।24।।
दिव्ये हि भारते वर्षे तीर्थराजे सुविश्रुते।
प्रयागे पुण्यसदने भवद्भिर्नित्यसूरिभिः।।25।।
सार्द्धमेवावतीर्याहं प्रणेष्ये मोक्षसाधनम्।
दृढसंसारबन्धस्य शातनं भक्तिवर्द्धनम्।।26।।
सुबोधं सुकरं सर्वैर्धर्ममार्गं सुखावहम्।
वेदवेदान्तसच्छास्त्रसारभूतं सदाश्रयम्।।27।।
तत्र तत्रावतीर्णास्तु भवन्तो वीतकल्मषाः।
मदुक्तस्योपदेष्टारः प्राणिभ्यो तत्परायणाः।।28।।
भविष्यन्ति महात्मानो जगदुद्धारहेतवः।
सुशीला धर्मनिरता जगतामुपकारकाः।।29।।
ये ग्रहीष्यन्ति सन्मार्गे प्राणिनो भक्तितत्पराः।
स्यादनायासतो मोक्षस्तेषामत्र न संशयः।।30।।
वाणीपीयूषमास्वाद्य क्षणमासीद्धरेर्मुनिः।
मग्नः सुखसुधांभोधौ विनीतो गतसंशयः।।31।।

निशम्य तद्वाक्यममोघमद्भुतं
हिरण्यगर्भाङ्गसमुद्भवो मुनिः ।
प्रहृष्टरोमवलिभूषिताकृतिः
कृती कृतज्ञः कृतकृत्य ईशितुः।।32।।
दृढव्रतस्याथ विनम्रकन्धरः
स्मरन् सुरेशस्य विभोः प्रतिश्रुतम्।
प्रणम्य तं देववरं रमापतिं
महाविभूतेर्निरगात्ततः सुधीः।।33।।
सुवादयन् दिव्ययशोऽथवल्लकीं
हरेः स्वरब्रह्मविभूषितानसौ।
गायंश्च लोके विचचार सर्वतः
सुरासुरेन्द्रैरभिपूजितो मुनिः।।34।।
मुनीश्वरे देवऋषौ विनिर्गते
सुरैरपीड्यो जगतामधीश्वरः।
रेमे रमेशो रमया स्मितानन:
प्रभूतभूतैर्निजदिव्यधामनि ।।35।।

इति श्रीमदगस्त्यसंहितायां भविष्यखण्डेऽगस्त्यसुतीक्ष्णसम्वादे श्रीरामानन्दाचार्यावतारोपक्रमे श्रीरामनारदसम्प्रश्नोत्तरं नामैकत्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

अथ द्वात्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः

व्यतीते द्वापरे पुण्ये श्रीमद्भगवतोज्झिते।
कलौ सत्त्वहरे पुंसां प्रवृत्तेऽधर्मवर्द्धके॥1॥
जनेऽधर्मरुचौ नित्यं शौचाचारविवर्जिते।
मोक्षसाधनमार्गेभ्यो विमुखे पशुतां गते॥2॥
मन्दे मन्दमतौ शश्वदल्पभाग्येऽल्पजीवने।
तत्रत्ये पापनिरते महत्सङ्गविवर्जिते॥3॥
प्रवर्धमानानभितो वादैर्निर्जित्य नास्तिकान्।
आचार्यैर्भगवद्धर्मो वेदवेदान्तपारगैः॥4॥
स्थापितोऽपि महायोगैर्वृद्धिं नैव गमिष्यति।
विधातुं सत्यसन्ध! सुरेड्यो निजभाषितम्॥5॥
वीक्ष्य विष्णुः कृपासिन्धुः प्रबुद्धं तादृशं कलिम्।
सदृशांश्च जनान् सर्वान् दुर्मतीन् क्लेशसंयुतान्॥6॥
मनःकर्ताऽवताराय स्मृत्वाथो स्वं प्रतिश्रुतम्।
खं नभो वेद वेद प्रमिते वर्षे गते कलौ॥7॥
कालिन्दीजाह्नवीसङ्गशोभिते देवपूजिते।
तीर्थराजे महापुण्ये प्रयागे तीर्थ उत्तमे॥8॥
गृहे श्रीपुण्यसदनद्विजातेर्भूरिकर्मणः।
योगिनो योगयुक्तस्य कान्यकुब्जशिरोमणेः॥9॥
पतिसेवापरा तस्य सुशीला गृहिणी ततः।
माघकृष्णस्य सप्तम्यां शुभधर्मप्रवर्तके॥10॥
सप्तदण्डोद्गते सूर्ये सिद्धयोगयुजि प्रभुः।
नक्षत्रे त्वाष्ट्रदैवत्ये कुम्भलग्ने शुभग्रहे॥11॥

एवं सर्वगुणोपेते देशे काले च माधवः।
गुण्ये पुण्ये शरण्यः स शरणागतवत्सलः।।12।।
आविर्भूतो महायोगी द्वितीय इव भाष्करः।
रामानन्द इति ख्यातो लोकोद्धरणकारणः।।13।।
अष्टमेऽब्दे चोपवीतं जातं तस्य तदा ह्यसौ।
ब्रह्मचर्यं गृहीत्वा तु विद्याभ्यासं करिष्यति।।14।।
वर्षे द्वादशे जाते काश्यां गत्वा पुनः स्वयम्।
वेदवेदाङ्गशास्त्राणि पुराणादि पठिष्यति।।15।।
आचार्यलक्षणैर्युक्तं वेदवेदान्तपरागम्।
श्रीसम्प्रदायश्रेष्ठञ्च जनोद्धारपरं सदा।।16।।
विज्ञाय राघवानन्दं लब्ध्वा तस्मात् षडक्षरम्।
रहस्यत्रयवाक्यार्थं तात्पर्यार्थं च सन्मतम्।।17।।
आचार्यलक्षणैर्दिव्यैर्लक्षितो वै भविष्यति।
प्रवक्ता सर्वधर्माणामनुष्ठाता च कर्मणाम्।।18।।
रक्षिता धर्मसेतूनामुपदेष्टा महायशाः।
शश्वद्वैष्णवधर्माणां महाकीर्तिरुदारधीः।।19।।
प्रसन्नवदाम्भोजो विशालाक्षो महाभुजः।
कृपालुस्सर्वजीवानामितरेषां च नित्यशः।।20।।
संसाराम्भोनिधेर्घोरात् समुद्धारपरायणः।
वेदवेदान्तनिरतस्सर्वशास्त्रविशारदः ।।21।।
कामान् पूरयिता नृणां कविः कल्पद्रुमो यथा।
गुणवान् दयितः पूज्यः सर्वज्ञो विजितेन्द्रियः।।22।।
शोभिष्यति धर्मरतैः सद्भिः परिवृतोऽनिशम्।
लोके पूर्णकलः खे वै शीतांशुर्भगणैरिव।।23।।
सुशीलः समदृक् शान्तो दान्तः श्रीमान् जगद्गुरुः।
पुनः सत्सम्प्रदायस्य वर्त्तयिता मुनीश्वरः।।24।।
कृपया यस्य लोकेऽस्मिन् जनाः सर्वे निरामयाः।
श्रीरामभक्तिनिरताः सदा धर्मपरायणाः।।25।।
तादृशस्य महाबुद्धेर्योगिवर्यस्य सत्कवेः।
गुणान् कात्स्न्येन संवक्तुं कविः कः क्षमतेऽधुना।।26।।

तेऽथाप्यवतरिष्यन्ति भगवन्मतकोविदा:।
स्वयम्भूप्रमुखा: सर्वे महान्तो नित्यसूरय:।।27।।
इङ्गितज्ञा हरेराज्ञां वहन्त: शिरसा मुदा।
नानादेशेषु वर्णेषु तत्तत्कालेऽर्कसन्निभा:।।28।।
आयुष्मन्! कृत्तिकायुक्तपूर्णिमायां धनौ शनौ।
स्वयंभू: कार्तिकस्याद्धाऽनन्तानन्दो भविष्यति।।29।।
योगनिष्ठ: सदा धीमान् सदाचारपरायण:।
शिष्य आचार्यवर्यस्य रामानन्दस्य धीमत:।।30।।
जात: सुरसुरानन्दो नारदो मुनिसत्तम:।
वैशाखसितपक्षस्य नवम्यां स वृषे गुरौ।।31।।
शुक्रे वरुणभे योगे शीलरत्नाकरो महान्।
मन्त्रमन्त्रार्थसन्निष्ठो गुरुभक्तिपरायण:।।32।।
तस्यामेव तुलालग्ने तादृशीन्दुरिवोग्रधी:।
शम्भुरेव सुखानन्द: पूर्वाचार्यार्थनिष्ठक:।।33।।
व्यतिपातेऽनुराधाभे शुक्रे मेषे गुणाकरे।
वैशाखशुक्लपक्षस्य तृतीयायां महामति:।।34।।
कुमारो नरहरियान्दो जात उदारधी:।
वर्णाश्रमकर्मनिष्ठ: शुभकर्मरत: सदा।।35।।
वैशाखकृष्णसप्तम्यां मूले परिघसंयुते।
बुधे कर्केऽथ कपिलो योगानन्दो जनिष्यति।।36।।
योगनिष्ठो महायोगी सत्सेवितपदाम्बुज:।
सदा वैष्णवधर्माणामुपदेशपरायण: ।।37।।
मनु: पीपाभिधो जात उत्तराफाल्गुनीयुजि।
पूर्णिमायां ध्रुवे चैत्र्यां धनवारे बुधस्य च।।38।।
निष्ठा तदीयकैङ्कर्ये सततस्तस्य महात्मन:।
नक्षत्रे शशिदैवत्ये चैत्रकृष्णाष्टमीतिथौ।।39।।
प्रह्लादोऽपि कविरस्तु कुजे सिंहे च शोभने।
जातो वेदान्तसन्निष्ठ: क्षेत्रवासरत: सदा।।40।।
भवानन्दोऽथ जनको मूले परिघसंयुते।
वैशाखकृष्णषष्ठ्यान्तु कर्के चन्द्रे जनिष्यति।।41।।

रामसेवापरो नित्यं स महात्मा महामतिः।
भीष्मः सेनाभिधो नाम तुलायां रविवासरे।।42।।
द्वादश्यां माघकृष्णे तु पूर्वभाद्रपदे च भे।
तदीयाराधने सक्तो ब्रह्मयोगे जनिष्यति।।43।।
श्रीमाघस्यासिताष्टम्यां वृश्चिके शनिवासरे।
धनाभिधो बलिः साक्षात् पूर्वाषाढयुते शिवे।।44।।
वरो भक्तिमतां जातस्तदीयाराधने रतः।
सदाचारपरो धीमान् गुरुपादाम्बुजार्चकः।।45।।
तत्त्वज्ञो गालवानन्दो जात एकादशीतिथौ।
चैत्रे वैयासकिश्चन्द्रे कृष्णे लग्ने वृषे शुभे।।46।।
सर्वदा ज्ञाननिष्ठोऽयमुपदेशपरायणः ।
वेदवेदान्तनिरतो महायोगी महामतिः।।47।।
चैत्रशुक्लद्वितीयायां शुक्रे मेषेऽथ हर्षणे।
यम एव रमादासस्त्वाष्ट्रे प्रादुर्भविष्यति।।48।।
पालनं वैष्णवाज्ञानां कुर्वन् नित्यमतन्द्रितः।
धर्ममेवाचरँल्लोके धर्माधीश उदारधीः।।49।।
चैत्रशुक्लत्रयोदश्यां गुरौ कर्के ध्रुवान्विते।
उत्तराफाल्गुनी संज्ञे जाता पद्मावती सती।।50।।
श्रीमदाचार्यसन्निष्टा सा पद्मेवापरा सदा।
धर्मज्ञा धर्मनिरता गुरुभक्तिपरायणा।।51।।
एवमेतादृशैस्तैस्तैः शिष्यैर्द्वादशभिर्महान्।
शोभिष्यत्यर्चितो देव्या पद्मावव्या च सन्ततम्।।52।।
श्रीमानाचार्यवर्योऽयं रामानन्दो महामतिः।
शिष्योपशिष्यैरन्यैश्च शोभितोऽहर्दिवं भुवि।।53।।
पूज्यो ध्येयश्च जगतां रामरूपो जगद्गुरुः।
हेतुः कल्याणमार्गस्य शुभदो ज्ञानदोऽनिशम्।।54।।
यस्य दर्शनमात्रेण स्मरणेन सदा क्षितौ।
नाम व्याहरणाद्धीना नरा मुक्ता न संशयः।।55।।
यदीयमतमालम्ब्य मन्त्रमन्त्रार्थभूषितम्।
भूष्यते भूरियं लोकै राजितैर्मुनिवृत्तिभिः।।56।।

शरच्चन्द्रायते लोके कीर्तिर्यस्य महात्मनः।
विशदा पावनी पुण्या शृण्वतां पापनाशिनी।।57।।
हरिभक्तिप्रदा नृणां तथा ज्ञानप्रकाशिनी।
मोहान्धकारसंघप्रध्वंसिनी शुभदायिनी।।58।।
स एष भगवद्रूपो धर्मो विग्रहवानिव।
द्विषतानिह दुर्धर्षः सेवनीयः सतां सदा।।59।।
तज्जन्ममासर्क्षतिथौ तदीयै-
स्तदीयजन्मोत्सवमुत्सवोत्सुकैः ।
विधेयमेवं प्रतिवर्षमुत्तमं
विधानविज्ञैर्विधिना हि वैष्णवैः।।60।।
पूजोपहारै रुचिरैर्यथोचितं
देवं समभ्यर्च्य सशिष्यसङ्घम्।
वाद्यैर्मृदङ्गादिभिरद्भुतैः परै-
र्नृत्यैस्तथा गीतवरैः प्रसादयेत्।।61।।
तदीयजन्मोत्सवसत्कथाभि-
स्तत्तोषहेतुस्तुतिभिस्तथैव ।
अन्यैस्तदीयाचरितैर्व्रतादिभि-
र्निस्तन्द्रिरेवं गुरुभक्तितत्परः।।62।।
एवं स कुर्वन् विधितस्तदर्चनं
तत्तोषहेतुं च महोत्सवं बुधः।
निरालसो भक्तियुतो लभेत
स्वाभीष्ठसिद्धिर्महती न संशयः।।63।।
निशम्य तद्वाक्यमथो महात्मनो
मुनेः प्रहृष्टः कलशोद्भवस्य।
मुनिः सुतीक्ष्णः समुतीक्ष्णबुद्धि-
र्विधिं च प्रष्टा हि तदर्चने पुनः।।64।।

इतिश्रीमदगस्त्यसंहितायामगस्त्यसुतीक्ष्णसंवादे भविष्यखण्डे श्रीरामानन्दाचार्यावतारोपाख्यानं नाम द्वात्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः।।१३२।।

अथ त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः

तज्जन्म पावनं पुण्यं कथितं परमं त्वया।
तदर्चनविधिं मह्यं वक्तुमर्हस्यथाधुना।।1।।
जगतामुपकर्ता त्वं दयालुर्धीमतां वरः।
समभ्यर्च्य जना येनाचार्यं श्रेयः समाप्नुयुः।।2।।
श्रूयतामिति चामन्त्र्य कथयिष्यति कुम्भजः।
अम्बुजं वर्त्तुलाकारं द्वादशदलसंयुतम्।।3।।
सुव्यक्तं तैर्दलैर्व्यक्तैर्दर्शनीयं सुशोभनम्।
तन्मध्ये कर्णिकायान्तु यन्त्रषट्कोणमालिखेत्।।4।।
तत्राचार्यवरं देवं रामानन्दमुदारधीः।
विन्यसेत् साङ्कमर्काभं तं दिव्यगुणशालिनम्।।5।।
सपूर्वदिशमारभ्य दलेषु क्रमशो न्यसेत्।
अनन्तानन्दमुख्यांस्तान् द्वादशादित्यसन्निभान्।।6।।
यन्त्रमेवं सुसम्पाद्य तदर्चनपरायणः।
पूजयेत्तत्र तान् सर्वानर्घ्यपाद्यादिभिर्वरैः।।7।।
पूजोपहारैः सकलैर्भक्त्या परमया युतः।
एकाग्रमानसो भूत्वा तमेव मनसा स्मरन्।।8।।
नम आचार्यवर्याय रामानन्दाय धीमते।
मोक्षमार्गप्रकाशाय चतुर्वर्गप्रदाय च।।9।।
इति मन्त्रविधानेन समर्चेद्विधिनार्चकः।
अर्घ्यपाद्यादिभिस्तैस्तैर्गन्धपुष्पाक्षतैः फलैः।।10।।
नैवेद्यैरुत्तमैः श्रेष्ठैः षड्रसैः सुमनोहरैः।
ताम्बूलैर्दक्षिणाभिस्तं तोषयेन्नृत्यगीतिभिः।।11।।
एवं दलेषु शिष्यांस्तान् पूजयेदमलात्मना।
प्रणवादिचतुर्थ्यन्तनाममन्त्रैर्विधानतः ।।12।।
स्तुवीत स्तुतिभिर्देवं सशिष्यं भक्तितत्परः।
ज्ञानविज्ञानदीपं तमुदारयशसं प्रभुम्।।13।।
जगद्गुरो! नमस्तेऽस्तु हरये विश्वबन्धवे।
मोक्षमार्गप्रकाशाय प्रणतार्तिहराय ते।।14।।

सपार्षदाय साङ्गाय सदा पावनकीर्तये।
नमस्तेऽगाधबोधाय प्रणताभीष्टदायिने।।15।।
सत्यव्रताय शान्ताय दान्ताय जगदात्मने।
नमोऽनन्ताय महते निर्जिताशेषविद्विषे।।16।।
विधृतज्ञानमुद्राय योगिने योगशालिने।
नमस्तेऽस्तु दयासिन्धो! जगज्जन्मादिहेतवे।।17।।
भीमे भवार्णवेऽनन्य: शरण: पतित: प्रभो।
पादपद्मद्वयं तेऽहं व्रजामि शरणं सदा।।18।।
इत्यभिष्टूय तं धीमान् दद्यात्पुष्पाञ्जलिं मुदा।
प्रणमेद् दण्डवद्भूमौ साष्टाङ्गं विधिवत्तत:।।19।।
अथ जन्मकथान् तस्य शृणुयात् पापनाशिनीम्।
गदतां शृण्वतामाशु विशदां तां शुभप्रदाम्।।20।।
एवं मुने! त्वं जानीहि तदर्चनविधिं महत्।
लोकेऽनेन विधानेन तमभ्यर्च्यमहामुनीम्।।21।।
प्राप्स्यन्ति च क्षितौ लोकावाच्छितार्थमसंशयम्।
नरास्तद्भावनायुक्ता: प्रणताविशदाशया:।।22।।
मुने! स भगवानित्थं सुतीक्ष्ण! जगदीश्वर:।
सत्यसन्धोहरिर्जातो विधास्यति शुभं नृणाम्।।23।।
चार्वाकादिमतारुढान् बहुधा दुर्मतीन् कलौ।
करिष्यति नरान् जित्वा रामभक्तिपरायणान्।।24।।
यत्प्रतापवशादेव भविष्यन्ति कलौ नरा:।
धर्मनिष्ठास्तपोनिष्ठा मोक्षमार्गरता: सदा।।25।।
तस्मिन् महीतलं याते नृणां किं वर्णयाम्यहम्।
भाग्यं साक्षाद्धरौ प्रीते सच्चिदानन्दविग्रहे।।26।।
धन्यास्तदातन्मुखपङ्कजं नरा
द्रक्ष्यन्ति ये तापहरं च पश्यताम्।
श्रोष्यन्ति वाचं परमामृतायनां
भूरिभाग्या वत निर्मलाशया:।।27।।

इति श्रीअगस्त्यसंहितायां सुतीक्ष्णागस्त्यसम्वादे भविष्यखण्डे साङ्गसशिष्यश्रीरामानन्दाचार्ययन्त्रार्चनप्रकारो नाम त्रयस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्याय: ।।१३३।।

अथ चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्यायः

शिष्यैर्द्वादशभिः श्रीमानथैतैरर्कसन्निभैः।
सूर्यैर्द्वादशभिर्नित्यं यथा विष्णुः प्रतापवान्॥1॥
विराजमानः सततं पर्यटन्नवनीमिमाम्।
द्वारकादिषु तीर्थेषु तत्र तत्र जगद्गुरुः॥2॥
विद्विषां जित्वरो वादैः श्रुतिस्मृतिसमुत्थितैः।
विपरीतान् वशीकुर्वन् कुर्वन् शिष्यांश्च तानथ॥3॥
षडक्षरं मन्त्रराजं तेभ्यश्चोपदिशन् मुनिः।
मन्त्रार्थं श्रावयन्नित्यं मन्त्रज्ञैस्तैरुपासितः॥4॥
आसमुद्रं चतुर्दिक्षु विचरन् धर्मतत्परः।
कर्ता वै बहुधा लोकं रामभिरतमुत्तमम्॥5॥
लेष्यन्ति नास्तिकास्तस्य प्रतापहततेजसः।
तमोपहे यथासूर्येऽभ्युदिते तारकागणः॥6॥
एवमेवात्र सुतीक्ष्ण! विचरन् सर्वतो मुनिः।
श्रेयः सम्पादयन् नृणां हरन्नज्ञानजं तमः॥7॥
राजिष्यते स्वयं स्वीयैर्भानुभिर्भानुमानिव।
असंख्येयैर्गुणैः शुभ्रैर्जगत्पालनतत्परः॥8॥
प्रकृत्या शीलसम्पन्नो दयारत्नकरो महान्।
धर्मत्राणाय लोकेऽस्मिन्नवतीर्णः परः पुमान्॥9॥
महाव्रतधरो धीमान् सर्वविद्याविशारदः।
निस्पृहः सर्वकामेभ्यः स्वात्मारामोमहामुनिः॥10॥

रामानन्द उदारकीर्तिरतुलः श्रीयोगिवर्याग्रणीः
पाखण्डाद्रिविभेदनाशनरहो धर्माभिसंवर्धनः।
श्रीमान् दिव्यगुणालयो निजयशःस्तोमाङ्कितक्ष्मातलः
सिद्धध्येयपदाम्बुजो विजयतेऽज्ञानान्धकारापहः॥11॥

वेदार्थसम्पादकसम्मुखाम्बुज-
स्त्रितापसंहारकचारुलोचनः।
भवाब्धिसन्तारकपादपङ्कजो
निजेष्टपूर्त्यार्पितकल्पपादपः॥12॥

विधूतशत्रुर्धृतिमान् धरातलं
यशस्समूहैर्विदधत् सुनिर्मलम्।
प्रकाशमानात्मविभूतिभूषित:
प्रभूतविद्याप्रभव: प्रभाववान्।।13।।
प्रतापसन्तापितशत्रुमण्डल:
सुसद्यशोऽलंकृतभूमिमण्डल:।
समीहिताशेषजगत्सुमङ्गल:
सदर्चनीयोऽखिलमङ्गलायन:।।14।।
सत्सम्प्रदायाम्बुजभास्करोऽग्रणी
विनीतनीताखिलवाञ्छितार्थक:।
निगूढवेदार्थविदीपनस्तै
रुदारवृत्तैर्महितो महात्मभि:।।15।।
गुणेन शीलेन श्रुतेन कर्मणा
प्रकाशमान: किरणैर्यथा रवि:।
हरंस्तमो नैशमुदारदीधिति-
र्विनिर्जिताशेषसपत्नसंहति:।।16।।
करोतु नोऽदभ्रदयोधिमङ्गलं
सपार्षदो दर्शितभूर्यनुग्रह:।
गृहीतधर्मायतनाकृति: कृती
कृतार्थयंल्लोकमिमं चराचरम्।।17।।
उपप्लुतं धर्मविरोधिभिर्जगत्-
सनाथमाद्योविदधत्कृपानिधि:।
विधत्सुरस्याघनिवर्हणं यश-
स्तनोतु नोऽजस्रमसौ सुमङ्गलम्।।18।।
जगत्प्रतीपानभितोनिरस्य-
श्चकार धर्माभिरतं सतां प्रभु:।
अशेषसत्पूजितपादपङ्कज:
सुमङ्गलं नो वितनोतु सर्वदा।।19।।

इति श्रीअगस्त्यसंहितायां भविष्यखण्डे श्रीरामानन्दाचार्य-दिग्विजयवर्णनं नाम चतुस्त्रिंशदुत्तरशततमोऽध्याय:।।१३४।।

अथ पञ्चत्रिंशोत्तरशततमोऽध्यायः

रामानन्दमहं वन्दे योगिध्येयाङ्घ्रिपङ्कजम्।
उदारयशसं देवं शान्तमूर्तिं शुभप्रदम्॥1॥
अष्टोत्तरशतं वक्ष्ये नाम्नां यस्य महात्मनः।
यैरिज्यमानो भगवान् कामानाशु प्रदास्यति॥2॥
पठतां पठितैर्ध्यातैर्ध्यायतां शृण्वतां श्रुतैः।
शुभप्रदैः सतां ग्राह्यैर्महापापप्रणाशनैः॥3॥
रामानन्दो रामरूपो राममन्त्रार्थवित्कविः।
राममन्त्रप्रदो रम्यो राममन्त्ररतः प्रभुः॥4॥
योगिवर्यो योगगम्यो योजगज्ञो योगसाधनः।
योगिसेव्यो योगनिष्ठो योगात्मा योगरूपधृक्॥5॥
सुशान्तः शास्त्रकृत् शास्ता शत्रुजिच्छान्तिरूपधृक्।
समयज्ञः शमी शुद्धः शुद्धधीः शुद्धवेषधृक्॥6॥
महान् महामतिर्मान्यो वदान्यो भीमदर्शनः।
भयहृद् भयकृद् भर्त्ता भव्यो भवभयापहः॥7॥
भगवान् भूतिदो भोक्ता भूतेज्यो भूतभृद् विभुः।
ज्ञातज्ञेयोऽतिगम्भीरो गुरुज्ञानप्रदो वशी॥8॥
अमोघोऽमोघदृग्दान्तोऽमोघभक्तिरमोघवाक् ।
सत्यः सत्यव्रतः सभ्यः सत्प्रियः सत्परायणः॥9॥
सुसिद्धः सिद्धिदः साधुः सिद्धिभृत् सिद्धिसाधनः।
सिद्धसेव्यः शुभकरः सामवित् सामगो मुनिः॥10॥
पूतात्मा पुण्यकृत् पुण्यः पूर्णः पूर्तिकरोऽघहा।
अर्च्योऽर्चकः कृती सौम्यः कृतज्ञः ऋतुकृत् ऋतुः॥11॥
अजय्यः शीलवान् जेता विनेता नीतिमान् स्वभूः।
वाग्मी श्रुतिधरः श्रीमान् श्रीदः श्रीनिधिरात्मदः॥12॥
सर्वज्ञः सर्वगः साक्षी समः समदृशिः सदृक्।
शुभज्ञः शुभदः शोभी शुभाचरः सुदर्शनः॥13॥
जगदीशो जगत्पूज्यो यशस्वी द्युतिमान् ध्रुवः।
इतीदं कीर्तिदं यस्य नाम्नामष्टोत्तरं शतम्॥14॥

अधीयताथ शृणुयाद्यश्चापि परिकीर्तयेत्।
अवाप्नुयच्छ्रियं लोके विपुलं श्रद्धया युत:।।15।।
अर्चेत् स्तवेन यो नित्यमुचारैः सुसम्भृतैः।
अनेन विधिवत्तस्य प्रसीदेत् स गुणाकर:।।16।।
तस्मिन् देवे प्रसन्ने तु न किञ्चित्तस्य दुर्लभम्।
इह लोके परत्रापि जगदीशे जगद्गुरौ।।17।।
श्रद्धया माघमासेऽर्चेत् सप्तम्यां तुं विशेषत:।
सम्वत्सरार्चनाज्जातमाप्नुयात् फलमुत्तमम्।।18।।
श्रद्धालवे सुशीलाय गुरुभक्तियुताय च।
प्रदिशेद् ब्रह्मनिष्ठाय वेदव्रतरताय च।।19।।
गोपनीयमिदं सद्भिः सदा सर्वप्रयत्नत:।
न देयं नास्तिकायाथ निन्दकाय गुरुद्रुहे।।20।।
सुपूजितेष्टप्रदपादपङ्कज:
समर्चकानां विदधातु मङ्गलम्।
सतामजस्रं जगदीश्वरो हरि-
र्यथाश्रितोऽसौ कलिकल्पपादप: ।।21।।
विराजतेऽयं तपसां प्रसूति-
र्गुणाकर: सच्चरितोद्विजार्यभू:।
ससज्जनाग्र्याभिश्रुतो वशँवदो
बृहद्व्रतश्चारुनृपावलीडित: ।।22।।

इति श्रीअगस्त्यसंहितायां भविष्यखण्डे अगस्त्यसुतीक्ष्णसंवादे श्रीरामानन्दाचार्याष्टोत्तरशतनामार्चनमाहात्म्यवर्णनं नाम पञ्चत्रिंशोत्तर शततमोऽध्याय:।।१३५।।